गांधी जी

खंड

ग्यारह

साम्प्रदायिक समस्या

प्रथम भाग

सम्पादक-मण्डल

मूल्य एक रुपया आठ आना मात्र

(*प्रथम संस्करण : फरवरी १९५०*)

मुद्रक तथा प्रकाशक

जयनाथ शर्मा

व्यवस्थापक

विद्यापीठ मुद्रणालय

बनारस छावनी

सूची

❀

प्रकाशकका वक्तव्य

'गांधीजी' ग्रन्थमालाका यह आठवाँ प्रकाशन ग्रन्थमालाके ग्यारहवें खंडका प्रथम भाग है। साम्प्रदायिक समस्यापर पूज्य बापूकी लेखनीसे जो अमूल्य विचार-धारा मानव जगत्‌को प्राप्त हुई है उसका यह प्रथम संग्रह है। आशा है कि और दो भागोंमें साम्प्रदायिक समस्या संबंधी लेख समाप्त होंगे। इस भागके संकलन तथा संपादनमें श्री विद्यारण्य शर्मासे बड़ी सहायता मिली है। हम इनके आभारी हैं।

काशीके प्रसिद्ध कांग्रेस कार्यकर्ता तथा गांधीभक्त श्री रामसूरत मिश्र, श्री कृष्णदेव उपाध्याय, स्वर्गीय श्री बैजनाथ केडिया, स्वर्गीय श्री कन्हैयालालजी शास्त्री तथा कार्माईकल पुस्तकालयके संग्रहोंसे हमें बड़ी सहायता मिली है। हम उनके भी आभारी हैं।

इस भागके प्रकाशनकी अनुमति देकर श्री जीवनजी डाह्याभाई देसाई, व्यवस्थापक ट्रस्टी, 'नवजीवन ट्रस्ट,' अहमदाबादने जो कृपा की है उसके लिए हम कृतज्ञ हैं।

'गांधीजी' ग्रन्थमालामें अबतक भारतीय नेताओंकी श्रद्धांजलियाँ दो भाग, कवियोंकी श्रद्धांजलियाँ एक भाग तथा बापूके अहिंसा संबंधी लेखोंका संग्रह चार भाग इस प्रकार सात भाग प्रकाशित हो चुके हैं। हमने यह क्रम रखा है कि जिस खंडकी सामग्री एकत्र होकर प्रकाशनके लिए तैयार हो जाती है वह खंड प्रकाशित कर दिया जाता है, इस कारण खंडोंके विज्ञापित क्रममें व्यतिक्रम तो पड़ता है किन्तु खंडोंकी क्रमसंख्या वही रहती है जो पहलेसे ही निश्चित हो चुकी है। क्रमशः सब खंड प्रकाशित किये जायँगे।

हमें हर्ष है कि ग्रन्थमालामें अबतकके प्रकाशित भागोंका प्रथम संस्करण बिलकुल समाप्त होगया है अब सब भागोंका द्वितीय संशोधित संस्करण प्रकाशित हो रहा है। भारतीय नेताओंकी श्रद्धांजलियोंका प्रथम भाग पुनः मुद्रित हो चुका है। अन्य भागोंका पुनः संस्करण तैयार हो रहा है। इस आशातीत प्रचारसे हमें जो बल उत्साह तथा साहस प्राप्त हो रहा है उससे पूर्ण विश्वास है कि हम गांधी-साहित्यके प्रसार तथा प्रचारके शुभ अनुष्ठानमें सफल होंगे।

❀

आमुख

ग्रन्थमालाके इस भागमें हम पाठकोंके सम्मुख गांधीजीके साम्प्रदायिक समस्या सम्बन्धी लेखोंका उपस्थित करना प्रारम्भ कर रहे हैं। गांधीजीने मानव जीवनका हर पक्ष अहिंसाकी कसौटीपर कसा है। अहिंसाके द्वारा जीवनकी सभी समस्याओंका सुलझाव उन्होंने किया है। इन लेखोंमें उन्होंने देशवासियोंमें व्याप्त साम्प्रदायिक तनातनीपर इसी दृष्टिसे विचारकर समाधान प्रस्तुत किया है। देशभरके स्त्री-पुरुष, संप्रदायभेदका बिना विचार किये, अपनी दिक्कतें पूज्य बापूके सम्मुख उपस्थित करते थे तथा वे उनका समाधान यंगइंडिया, नवजीवन, हरिजन सेवक आदि पत्रों द्वारा बराबर किया करते थे।

महात्माजीकी अहिंसा सम्बन्धी भावनाओंकी तरह ही साम्प्रदायिक समस्याके सुलझाव सम्बन्धी उनके भाव देखनेमें अव्यावहारिक और आदर्शरूप समझे जाते थे। लोग कहते थे कि पढ़ने और सुननेमें वह भले लगते हैं किन्तु दिन प्रतिदिनकी घटनाओंपर जब उसका उपयोग करना पड़ता था तब लोगोंको उसका प्रयोग कठिन तथा असम्भव सा लगता था। किन्तु बात ऐसी नहीं है। बापूके इन लेखोंके पढ़ने तथा ध्यानपूर्वक मनन करनेसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि मानव जीवनकी हर समस्यापर विचारकर समाधान निकालनेके लिए अहिंसाकी भावना परमावश्यक है तथा इस भावनाके पनपनेके लिए विशेष मनःस्थितिकी आवश्यकता है और जब वह मनःस्थिति उत्पन्न हो जाती है तब सभी कठिनाइयोंका सामना मनुष्य कर सकता है तथा उनपर विजय पाकर मानव समाजको अधिक सौम्य तथा सभ्य बना सकता है।

देशमें व्याप्त साम्प्रदायिक द्वेषका समाधान भी इसी तत्वपर उन्होंने सुझाया है। अहिंसात्मक मनःस्थितिमें मनुष्य-मनुष्यके बीच व्याप्त साम्प्रदायिक विद्वेषको मानव किस प्रकार दूर कर सकता है यह इन लेखों द्वारा ज्ञात हो सकता है। अनेक बार अनेकोंने इस समस्याके सुलझानेमें अहिंसात्मक पद्धतिमें उत्पन्न अपनी-अपनी कठिनाइयोंका उल्लेख किया है तथा ऐसी हालतमें गांधीजीने उनका मार्ग-प्रदर्शन किया है। उनका कहना है कि जबतक मनुष्य साम्प्रदायिक भावनाओंको द्वेषके मार्गसे प्रेमके मार्गपर नहीं लाता तब तक उसका सच्चा कल्याण नहीं हो सकता। इस मार्ग परिवर्तनमें अनेक कठिनाइयोंका सामना धैर्यके साथ करना पड़ता है तथा कष्ट सहन और त्यागके पश्चात वह अवश्य विजयी हो सकता है। उच्च भावनाओंको लेकर सच्चे तथा शुद्ध प्रेमपूर्ण कार्य व विचारपद्धति द्वारा समस्याओंके हल करनेसे

ही मनुष्य अपना सच्चा धर्म पालन कर सकता है। इसी विचार धाराका प्रतिपादन उन्होंने साम्प्रदायिक समस्याके समाधानके लिए भी किया है।

देशवासियोंमें जो साम्प्रदायिक मनोमालिन्य फैला था उसे दूर करनेका जो सत्प्रयत्न उन्होंने किया उसमें उन्हें भी अनेक प्रकारकी विघ्न बाधाओंका सामना करना पड़ा था लेकिन वे अपने मार्गसे कदापि विचलित नहीं हुए। साम्प्रदायिक मापदंड द्वारा देशका विभाजन हो जाने पर तथा तज्जनित भयंकर मारकाट तथा भगदड़ने भी उन्हें अपने पथसे विचलित नहीं किया। देशका इतिहास बताता है कि इस समस्याके हल करनेका एकमात्र मार्ग पूज्य महात्माजीका दिखाया मार्ग ही है तथा उनका सिद्धान्त व्यावहारिक तथा उपादेय है। यदि मानव समाज अपनी संस्कृतिको नष्ट होनेसे बचाना चाहता है तो उसका मार्ग लाठी, छूरा, तलवार, गंड़ासा, तोप, बंदूक, आदि नहीं है। बल्कि प्रेमपूर्ण मनःस्थिति उत्पन्न कर मनुष्य अन्य मनुष्यके साथ मनुष्यताका व्यवहार कर ही कर अपनी संस्कृतिको केवल बचा ही नहीं सकता अपितु समृद्ध भी कर सकता है। इसीमें मनुष्यताका कल्याण है। हमें पूर्ण आशा तथा विश्वास है कि इस ग्रन्थमालाके ये खंड देश तथा संसारके कल्याणमें सहायक होंगे।

❀

हिन्दू-मुस्लिम मेल

एकतामें असीम बल है। इस कहावतको चरितार्थ करनेके लिये अनेक तरहकी किस्से तथा कहानियाँ पुस्तकोंमें लिखी मिलती हैं। पर हिन्दू-मुसलिम एकताने इसे प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा चरितार्थ कर दिया। यदि हमलोग अलग-अलग रहना चाहते हैं, तो हमारा पतन अवश्यंभावी है। जबतक भारतके हिन्दू-मुसलमान एक दूसरेका गला काटनेके लिये तैयार बैठे रहेंगे तबतक कोई भी विदेशी शक्ति उन्हें अपना दास बनाकर अपने आधीन कर सकती है। हिन्दू-मुसलमान मेलका यह अभिप्राय नहीं है कि केवल भारतीय हिन्दू तथा मुसलमानोंमें परस्पर मेल हो जाय बल्कि भारतकी उन समग्र जातियोंमें परस्पर भ्रातृ-भावकी स्थापना हो जाय जो भारतको अपना घर समझती हैं और अनन्तकालसे उसमें रहती आ रही हैं। इस एकताकी स्थापनाके लिये धार्मिक भेद-भावका विचार कोई विघ्न-बाधा नहीं पहुँचा सकता।

इस बातको मैं अच्छी तरह समझता हूँ कि इस तरहकी मेलकी नींवको हमलोगोंने इतना दृढ़ नहीं कर दिया है कि वह हर तरहके भारको बर्दाश्त कर सके। मेलका यह पौधा अभी उगा है। इसकी डालियाँ बहुतही नर्म तथा मुलायम हैं। इसकी देख-रेखके लिये इसकी नितान्त आवश्यकता है। जिस समय नेलोरमें इसका प्रमाण मेरे सामने उपस्थित हुआ उस समय मुझे यह बात सूझी। मैंने उस समय देखा कि हिन्दू और मुसलमानोंका परस्पर संबन्ध संतोषजनक नहीं है। अभी दो वर्ष भी नहीं बीते हैं कि एक साधारणसी बातपर दोनों लड़ पड़े थे। कुछ हिन्दू बाजा बजाते हुये जा रहे थे। मार्गमें मस्जिद पड़ गई। उन्होंने बाजा बजाना बन्द नहीं किया। यह मुसलमानोंको असह्य था। बस, इसीको लेकर झगड़ा उठ खड़ा हुआ। हमलोगोंको उचित है कि इस तरहकी साधारण-साधारण बातोंको विकट धार्मिक प्रश्नोंमें न मिला लें। इसलिये यह आवश्यक नहीं है कि हिन्दू सदा बाजा बजाते ही चलें। इसके लिये यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि पुरानी नजीरोंसे प्रगट हो जायगा कि इस तरह यहाँ सदासे बाजा बजते चले आये हैं। मसजिदके समीपसे जाते हुये वे बाजा बजाना बन्द कर दे सकते हैं। मुसलमानोंके धार्मिक विश्वासके अनुसार मसजिदके चारों तरफ हर वक्त पूरी शान्ति रहनी चाहिये। इस शान्तिके लिये सबको प्रयास करना चाहिये। जो बात हिन्दूके लिये आवश्यक नहीं है वही एक मुसलमानके लिये आवश्यक हो सकती है और जो बातें हिन्दू धर्मके अनुसार आवश्यक नहीं हैं उनका त्याग कर देना—यदि ऐसा करनेकी प्रेरणा मुसलमानोंकी ओरसे हो—प्रत्येक हिन्दूका धर्म है। जरा-जरासी बातपर लड़ मरना अव्वल नम्बरकी बेवकूफीमें शामिल है। जिस मेल और एकताकी हमलोग आकांक्षा करते हैं वह तभी प्राप्त हो सकती है जब हमलोग एक दूसरेके प्रति उदारता तथा सद्भाव रखनेकी चेष्टा

करेंगे। गौ माता हिन्दुओंको प्राणोंसे भी प्यारी है। इसलिये मुसलमानोंको उचित है कि वे इस विषयमें हिन्दू भाइयोकी मर्यादा रखें। प्रार्थनाके समय मुसलमानोंके लिये अटल शान्तिकी आवश्यकता है, इसलिये हिन्दुओंको उचित है कि वे मुसलमानोंके इस भावकी रक्षा करें। यही पूर्णताकी कसौटी है। पर हिन्दू और मुसलमानोंमें बदमाशोंकी कमी नहीं है जो साधारणसी बातोंके लिये भी झगड़ जानेको तैयार रहेंगे। इस तरहके झगड़ोंके निपटाराके लिये हमें ऐसी पंचायतें बैठा देनी चाहिये जिनमें इस तरहके झगड़ोंपर विचार हो और उनके निर्णयको सर्वमान्य समझा जाय। इन पंचायतोंकी मर्यादाको स्वीकार करानेके लिये जनताका ध्यान उनकी तरफ आकृष्ट करना चाहिये जिसमें उनकी उपयोगितापर किसी तरहका विवाद न उठ खड़ा हो।

मैं यह भी जानता हूँ कि अभी तक एक दूसरेका परस्पर विश्वास नहीं जम सका है। कितने हिन्दू हैं जो मुसलमानोंकी विपतपर सन्देह प्रगट करते हैं कि स्वराज्यमें मुसलमानोंकी प्रधानता हो जायगी, मुसलमानोंका राज्य कायम हो जायगा। उनकी धारणा है कि ब्रिटिशका प्रभाव भारतसे उठ जाते ही यहाँके मुसलमान अन्य मुसलमान राज्योंकी सहायतासे भारतमें पुनः एकबार मुसलमानी राज्य स्थापित कर लेंगे। उधर मुसलमानोंके दिलमें यह चोर पैठा है कि हिन्दुओंकी संख्या हमसे कहीं अधिक है और इसका परिणाम यह होगा कि वे लोग हमें कुचल डालेंगे। इस तरहके भावोंने दोनोंका दिल दुर्बल बना डाला है। यदि और कुछ नहीं तो एक साथ रहनेकी अभिलाषा ही उन्हें शान्त और परस्पर विश्वासयुक्त रहने देनेके लिये प्रेरित करती। दोनों धर्मोंसे ऐसी कोई बात नहीं है जिससे दोनों अलग-अलग होकर रहें। वह जमाना बीत गया जब किसीपर बलात्कार करके उसे जबर्दस्ती मुसलमान बना लिया जाता था। गौका प्रश्न अलग कर दीजिये; मुसलमानोंके साथ हिन्दुओंके वैमनस्यका कोई कारण नहीं रह जाता। मुसलमान धर्मके अनुसार गोबध आवश्यक नहीं है। मुख्य बात यह है कि आज तक हमलोगोंने इस बातकी कभी चेष्टा नहीं की कि हमलोग आपसमें मिलकर समझौता कर लें और इस तरहके भेदभावको मिटाकर मेलसे रहना सीखें, और एक ही मातृ-भूमिके पुत्र बनकर प्रेम तथा सद्भावसे रहें। इस समय हम दोनोंके हाथमें एक अपूर्व सुअवसर आ उपस्थित हुआ है। खिलाफतका प्रश्न फिर नहीं उपस्थित होगा। यदि हमारे हिन्दू भाई मुसलमानोंका सद्भाव प्राप्त करना चाहते हैं तो उनके लिये यह सबसे उपयुक्त अवसर प्राप्त हुआ है। उन्हें उचित है कि इस्लामके लिये मुसलमानोंके साथ वे कट मरें।

यंग-इंडिया
११ मई, १९२०

हिन्दू-मुस्लिम मेल

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि असहयोगकी सफलता शान्ति तथा अहिंसापर जितनी निर्भर करती है, हिन्दू-मुसलिम एकतापर भी उतनी ही निर्भर करती है। इस संग्रामको चलानेके लिये दोनोंपर भीषण बोझ लादा जायगा और यदि इस भारको दोनोंने संभाल लिया तो विजय उसके सामने नाचती फिरेगी।

इसकी पहली परीक्षा आगरेमें हुई (जिस समय गोवधका प्रश्न लेकर दंगा हो गया था)। अपनी-अपनी रक्षा तथा न्यायके लिये जब दोनों दल अधिकारियोंके पास गये, उन्होंने उपहास करके कहा कि शौकत अलीके पास जाओ, गान्धीको खोजो। भाग्यवश उस समयके लिये उपयुक्त आदमी मिल गया। हकीम अजमलखाँ कट्टर मुसलमान हैं। साथ ही हिन्दुओंका भी उनपर अटल विश्वास रहता है। अपने साथियोंके साथ फौरन आगरा पहुंचे। समझौता करा दिया। इस समय दोनों दल पूर्ववत् मित्र बन गये हैं। इसी तरहकी दूसरी दुर्घटना दिल्लीके पास हुई। वहाँ भी हकीमजीके प्रभावने शान्ति स्थापित की। यदि हकीमजी वहाँ ठीक समय पर न पहुँच गये होते तो अनर्थ मच गया होता। पर अकेले हकीमजीके लिये कब सम्भव है कि शान्तिका झण्डा लिये सब जगह इस तरहके झगड़े मिटानेके लिये ठीक समय पर पहुँच सकें। और न मैं ही सब जगह पहुँच सकता हूँ, न मौलाना शौकत अली ही पहुँच सकते हैं। पर तो भी विच्छेद कराने के लिये जितने भी प्रयत्न किये जांय सबको विफल कर दोनों दलोंमें पूर्ण एकताकी स्थापना होनी चाहिये।

आगरेमें अधिकारियोंसे सहायताके लिये प्रार्थना क्यों की गई? यदि हमलोग असहयोग आन्दोलनको थोड़ा भी सफल बनाना चाहते हैं तो पहली आवश्यकता इस बातकी है कि परस्पर कलहके निपटारेके लिये हमें सरकारकी सहायताका ध्यान छोड़ देना चाहिये। यदि हमलोग अपने परस्पर झगड़ेके निपटारेके लिये ब्रुटिश सरकारकी सहायताकी अपेक्षा करते हैं, या किसी अभियुक्तको दण्ड देनेके लिये उसके पास जानेकी आवश्यकता समझते हैं तो हमारे असहयोगका सारा कार्यक्रम व्यर्थ और निष्फल समझिये। प्रत्येक गाँव या नगरमें कमसे कम एक हिन्दू और मुसलमान तो ऐसा अवश्य ही होना चाहिये जो दोनों दलोंको लड़नेसे रोक सके और वे यदि लड़ भी जाँय तो उनका निपटारा भी कर सकें। कभी-कभी तो सगे भाई ही लड़ पड़ते हैं। प्रारम्भिक अवस्थामें कहीं-कहीं इस तरहका प्रयत्न कर सकते हैं। हमें खेदके साथ लिखना पड़ता है कि हमलोगोंने—जिन्हें सार्वजनिक काम करनेका अभिमान है—जनताकी मानसिक स्थिति समझने तथा उनपर अपना प्रभाव डालनेका बहुत ही कम प्रयास किया है। उनमेंसे जो बदमिजाज या झगड़ालू हैं, उनका तो हमलोगोंने ख्याल ही नहीं किया है। जब तक हमलोग जनसाधारण पर अपना पूरा प्रभाव

नहीं डाल लेते और जब तक हमलोग उद्दंडोंको अपने वशमें नहीं कर लेते तबतक इस तरहकी बदमिजाजीकी घटनायें कभी-कभी अवश्य हुआ करेंगी। पर ऐसी शोक-जनक घटनाओंके उपस्थित हो जानेपर हमें सरकारका मुँह ताकना छोड़ देना चाहिये। हमलोगोंको इस समय क्या करना चाहिये यह हकीमजीने दो स्थलोंपर प्रत्यक्ष करके दिखला दिया है।

जिस एकताके लिये हम लोग चेष्टा कर रहे हैं वह एकता बनावटी एकता नहीं होनी चाहिये। बल्कि हिन्दू और मुसलमानोंका दिल एकमें मिल जाना चाहिये। उन्हें यह बात अच्छी तरहसे समझ लेनी चाहिये कि जब तक हिन्दू और मुसलमान एक ग्रन्थिमें सदाके लिये बँध नहीं जाते, एक रस्सीमें बट नहीं जाते, तबतक जिस स्वराज्यका सुख-स्वप्न देखा जा रहा है वह प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। केवल सन्धि या मेलसे यह काम नहीं सिद्ध हो सकता। जबतक दोनों एक दूसरेसे लड़ते रहेंगे यह संभव नहीं है। यह मेल दो बराबरी हैसियतवालोंका मेल होना चाहिये जिसमें दोनों बराबरी हैसियतसे मिलते हैं और एक दूसरेकी धार्मिक भावोंकी मर्यादा स्वीकार करते हैं और उसका समुचित आदर करते हैं।

यदि कुरान धर्ममें कोई ऐसी बात होती जिसके कारण मुसलमान लोग हिन्दुओंको अपना सहज बैरी समझते या हिन्दुओंके धर्मशास्त्रमें कोई बात होती जिसके कारण हिन्दू लोग मुसलमानोंको अपना जानी दुश्मन मानते तो मैं इस तरहके मेलको सर्वथा असंभव समझता और इस ओरसे सर्वथा निराश हो जाता।

यदि हमलोगोंकी यही धारणा है कि हमलोग अतीत कालसे आपसमें लड़ते आये हैं, एक दूसरेके लिये शत्रु ही बने रहे हैं, अवसर पानेपर एक दूसरेका गला काटनेके लिये सदा तैयार रहे हैं; इसीलिये भविष्यमें भी यदि ब्रिटेन हमलोगोंको अपनी शक्तिशाली बाहुओं द्वारा फासले पर रखनेका यत्न न करता रहेगा तो हम फिर भी आपसमें कट मरेंगे, तो हमें यही कहना पड़ेगा कि हमलोगोंने अपने इतिहासका ठीक तरहसे मनन नहीं किया है। हिन्दू-धर्मशास्त्र तथा मुसलमान धर्मका हमने जहाँ तक मनन किया है उससे हम इसी परिणाम पर पहुँचे हैं कि हिन्दू-धर्मशास्त्रमें ऐसी कोई बात नहीं, जिसके आधार पर हम इस तरहकी धारणा कर लें। यह बात सब कोई स्वीकार कर सकते हैं कि स्वार्थी पुरोहितों या धर्माध्यक्षोंने समय-समय पर हमें उभार कर एक दूसरेको लड़नेके लिये विवश किया है। यह भी स्वीकार किया जा सकता है कि ईसाई राजाओंकी तरह मुसलमान बादशाहोंने भी इस्लाम धर्मके प्रचारके लिये तलवारकी सहायता ली थी अर्थात् उन्होंने बलपूर्वक मुसलमान बनानेका यत्न किया था। पर अब वह समय नहीं रहा। यद्यपि वर्तमान युगके सिरपर अनेक तरहकी बुराइयोंका टीका लगा है तो भी वह इस समय धर्म प्रचारमें इस तरहका बलात्कार स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं है, जैसे वह बलात्कार दासताको देखना नहीं चाहता। वर्तमान युगके विकासवादके फेरमें पड़कर ईसाई तथा इस्लाम धर्मकी

अनेक भ्रमात्मक बातें दूर हो गईं। इस युगमें एक भी ऐसा मुसलमान नहीं दिखाई देता जो धर्म प्रचारके हेतु किसी तरहकी ज्यादती या बलात्कारका समर्थन करता हो। इस समय जिन बातोंका प्रभाव मनुष्य-हृदय पर पड़ सकता है उसके मुकाबिले तलवारका प्रभाव कुछ नहीं है।

यद्यपि पश्चिमीय जातियाँ रक्त-पात, धोखेबाजी, दगाबाजी आदिके प्रयोगमें अब भी प्रवीण हैं और उसका धड़ाधड़ प्रयोग करती हैं तो भी समस्त मानव समाज धीरे-धीरे उन्नतिके पथ पर आगे बढ़ता जा रहा है। भारत यदि आज हिन्दू-मुस्लिम एकताका प्रश्न हल करके अहिंसात्मक असहयोग द्वारा आत्म-त्यागके सहारे अपनी स्वतंत्रता स्थापित कर लेगा तो वह संसारको एक नया मार्ग दिखला देगा जिसकी सहायतासे लोग वर्तमान युगके पंकजसे बाहर निकलेंगे।

यंग-इंडिया
६ अक्टूबर, १९२०

हिन्दू-मुस्लिम मेल

कुछ दिन होते हैं कि मिस्टर कान्डलरने मुझसे पूछा था कि क्या आप हिन्दू-मुस्लिम एकताको चाहते हैं और आप यदि इसके लिये आतुर हों तो क्या आप उनके साथ खान-पान और ब्याह शादीका सम्बन्ध भी चला सकते हैं? इसी प्रश्नको दूसरे ढंगसे कुछ और मित्रोंने मुझसे पूछा है। उनका प्रश्न है कि क्या हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिये सहभोज और वैवाहिक सम्बन्ध भी आवश्यक होगा? यह प्रश्न करनेके बाद उन्होंने लिखा है यदि वास्तवमें हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिये सहभोज और असवर्ण विवाह भी आवश्यक है तो यह एकता हर तरहसे असम्भव है। क्योंकि करोड़ों सनातन धर्मावलम्बी हिन्दू इसके लिये तैयार नहीं हो सकते। वे लोग तो सहभोजके लिये भी तैयार नहीं हो सकते, असवर्ण विवाहका तो प्रश्न विचारके एकदम बाहर है।

मेरा विचार उन लोगोंके साथ है जो जाति-पांतिके विभागको अनुचित या हानिकारक नहीं मानते हैं। वर्ण व्यवस्थाका नाम बड़े ही उदार सिद्धान्तोंके अनुसार दिया गया था और इससे राष्ट्रीय उन्नतिमें बड़ी सहायता मिलती थी। जिन लोगोंका कहना है कि राष्ट्रीय विकासके लिये सहभोज और असवर्ण विवाह आवश्यक है, वे भ्रममें हैं और पाश्चात्यके संसर्गसे उनके हृदयमें इस तरहके भाव उदय हुये हैं। जीवनकी शुद्धताके लिये अन्य स्वास्थ्य-सम्बन्धी जितनी बातें आवश्यक हैं, भोजनकी शुद्धता भी उतनी ही आवश्यक है और यदि मानव समाजने भोजन पर

इतना जोर न डाल दिया होता तो आज हमलोग जीवनकी अन्य बातोंकी तरह भोजनको भी एकलामें ही करते होते। हिन्दुओंका सदाचार कमसे कम यही शिक्षा देता है और आज भी हजारों हिन्दू ऐसे पाये जांयगे जो अपना भोजन किसीके सामने करना पसन्द नहीं करेंगे। मुझे ऐसे अनेक पुरुष तथा स्त्रियोंके नाम याद हैं जो भोजन एकदम एकान्तमें करते थे पर जिन्हें किसीसे किसी प्रकारका घृणा या राग-द्वेष नहीं था, बल्कि वे पूर्ण मैत्रीके साथ रहते थे।

विवाहका सवाल और भी टेढ़ा है पर मेरा तो यह कहना है कि यदि एक भाई और बहिन परस्पर पूर्ण मेलके साथ रह सकते हैं तो हमें इसमें कोई भी आपत्ति नहीं दिखाई देती कि मेरी पुत्री मुसलमानको अपना भाई समझकर और उसी तरह किसी मुसलमानकी पुत्री मुझे अपना भाई समझकर पूर्ण मेलके साथ न रहें। धर्म और विवाहके सम्बन्धमें मेरे विचार बड़े ही कट्टर हैं। खान-पान या विवाह आदिके सम्बन्धमें अपने मतपर जितना अधिक अधिकार रख सकेंगे धार्मिक दृष्टिसे हम उतने ही ऊँचे रहेंगे। यदि आज यह सम्भावना हो जाय कि प्रत्येक नवयुवकको मेरी लड़कीके साथ विवाह करनेका पूरा अधिकार है या मुझे संसारकी सभी जातियों-के साथ सहभोजमें खाना पड़ेगा तो मैं यहींसे निराश हो जाऊँगा कि इस संसारमें पुनः एकता स्थापित नहीं हो सकती। मैं इस बातको दावेके साथ कह सकता हूँ कि मैं संसारकी सभी जातियों और प्राणियोंके साथ मेलसे रहता हूँ। आज तक मैंने किसी मुसलमानसे क्रोध तक नहीं किया है। फिर भी वर्षोंसे मैंने इनके साथ सिवा फल आदिके और कुछ नहीं खाया है। जिस बर्तनमें मेरे लड़केने भोजन किया है और जिस गिलासमें पानी पिया है वह जबतक माँजा न जाय मैं प्रयोगमें नहीं ला सकता। पर इस तरहके व्यवहारसे मैंने आज तक न तो किसी मुसलमानका जी दुखाया न किसी ईसाईका जी दुखाया है और न इसके लिये मेरा लड़का ही कभी मुझसे असन्तुष्ट हुआ है। इसके अतिरिक्त सहभोज या असवर्ण विवाहसे कलह, बैर और विरोधकी रुकावट होते नहीं दिखाई दी है। भारतवर्षका इतिहास इस तरहके प्रमाणोंसे भरा है। कौरवों और पाण्डवोंको ही ले लीजिये। दोनों चचेरे भाई थे। खान-पान और ब्याह-शादी सब एक था। तो भी वे एक दूसरेका गला काटनेको उतारू हो गये। यही बात वर्तमान सभ्य संसारमें भी देखनेको आ रही है। अंग्रेज और जर्मन एक ही खूनके हैं। एक ही वंशका रक्त एक दोनोंकी धमनियोंमें बह रहा है, वैवाहिक सम्बन्ध भी बहुत ही नजदीक रहा है। पर तिसपर भी दोनों एक दूसरेका गला काटनेके लिये तैयार हो गये और वह वैमनस्य आज भी उसी तरह वर्तमान है।

इससे यह भाव निकला कि एकताके लिये विवाह या सहभोज आवश्यक पदार्थ नहीं है। यद्यपि इसका प्रतिरूप अवश्य है। पर यदि हम व्यर्थका दबाव या जोर एक दूसरे पर देने लगें तो वह मार्गका कंटक सहजमें हो सकता है, जैसे आजकल हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिये हो रहा है। यदि हम लोग इस धारणाको हृदयांगम

कर लेते हैं कि हिन्दू-मुस्लिम एकता तबतक स्थापित नहीं हो सकती जबतक हिन्दू मुसलमानोंमें खान-पान, ब्याह-शादी भी न प्रचलित हो जाय तो हम लोग अपने बीचमें एक बनावटी बांध खड़ा कर देते हैं जो शायद जन्म-जन्मान्तरमें भी नहीं तोड़ा जा सकता और यदि आज मुसलमान नवयुवकोंके हृदयमें यह भाव आ जाय कि हिन्दू लड़कियोंके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना जायज है तो इस बढ़ती हिन्दू-मुसलिम एकतामें घोर बाधा पड़नेकी संभावना है। यदि इस तरहकी निर्मूल आशंका भी हिन्दुओंके हृदयमें उत्पन्न हो गई तो वे मुसलमानोंको अपने घरमें घुसने तक न देंगे, सम्मानके साथ बैठाना तो दूर रहा जैसा कि अब शनैः शनैः होने लगा है। मेरी समझमें प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान नवयुवकको यह बात भलिभांति समझ लेनी चाहिये कि जहाँ तक संबंध है उसके अधिकार बहुत ही नियंत्रित है।

मेरी समझमें वैवाहिक और खान-पानका सम्बन्ध स्थापित कर लेने पर न तो मुसलमान ही अपना धर्म बचा सकेंगे और न हिन्दू ही। पर सच्चा मेल वही होगा जिसमें एकता और सद्भावकी पूर्ण स्थापनाके साथ ही साथ अपनी-अपनी धार्मिक मर्यादा पर भी उतना ही ख्याल हो क्योंकि हम लोग इस बातकी चेष्टा कर रहे हैं कि कट्टरसे कट्टर हिन्दू और मुसलमान भी परस्पर मेलसे रहें और पुराने वैर-भावको भूल जाँय।

इतना कहनेके बाद यह प्रश्न उठता है कि हिन्दू-मुस्लिम एकताका मर्म क्या है और उसकी स्थापना किस प्रकार हो सकती है? इसका उत्तर बहुत ही सहज है। इसका आधार है—एक आदर्श, एक ध्येय और एक भाव। इसकी उन्नतिका मूल्य है—उस एक आदर्शको लेकर पूर्ण मेलके साथ-साथ चलना, सहनशीलताका भाव प्रगट करना और एक दूसरेके दुःख-सुखमें साथी बने रहना और यथासाध्य सहायता करना। इस समय हमारे सामने एक आदर्श उपस्थित है। हम सभी चाहते हैं कि यह देश स्वतंत्र हो जाय और अपना शासन आपसे आप करने लगे। विपत्ति भी हम-लोगोंके ऊपर घहराती है। इस समय हम देख रहे हैं कि खिलाफतके साथ अन्याय करके ब्रिटेनने मुसलमानोंके हृदयों पर मर्माघात किया है। हमलोग जानते हैं कि खिलाफतकी मांग न्यायपूर्ण है तो इसके लिये हमें दत्तचित्तसे मुसलमानोंके साथ हो जाना चाहिये। मुसलमान की सच्ची मैत्री प्राप्त करनेके लिये इससे उत्तम कोई भी तरीका नहीं हो सकता। इस उपायसे आप मुसलमानोंके सद्भावको जितना खरीद सकते हैं उतना हजारों बारका सहभोज और विवाह काम नहीं कर सकता।

परस्पर सहनशीलता प्रत्येक जातिके लिये प्रत्येक अवस्थामें लाभदायक होती है। यदि हिन्दू मुसलमानोंकी उपासनाके कायदे-कानून तथा तरीकेको नापसन्द करें; उनके रस्म-रिवाज तथा चाल-चलनके ढंगसे घृणा करें, तथा उसी तरह मुसलमान भी हिन्दुओंकी मूर्ति-पूजाको घृणाकी दृष्टिसे देखें अथवा उनके रस्म-रिवाजको नापसन्द

करें तो फिर दोनोंमें मेल नहीं हो सकता और हमलोग शान्तिसे नहीं रह सकते। जो कुछ हम बरदाश्त करते हैं उसे ही बर्दाश्त करनेमें किसी तरहकी असुविधा नहीं है। बरदाश्त तो उसे करना चाहिये। जो विरोधी बातें हैं, जैसे मैं शराबसे परहेज करता हूँ और सदा यही भाव रखता हूँ कि लोग इससे अलग हो जाँय पर यदि कोई हिन्दू-मुसलमान या ईसाई इसे पीता है तो मैं उससे घृणा नहीं करता। उसी तरह मैं भी उन लोगोंसे आशा करता हूँ वे भी मेरे परहेजपनेकी मर्यादा रखेंगे। आजतक हिन्दू-मुसलमानोंके कलहका प्रधान कारण यही रहा है कि दोनोंमेंसे एकमें भी सहनशीलता नहीं रही और दोनों अपना-अपना मन एक-दूसरेपर जबरदस्ती लाद देना चाहते थे।

यंग-इंडिया
२५ फरवरी, १६२१

हिन्दुओं सावधान !

बिहार असहयोगके लिये सबसे उत्तम भूमि है। बिहारका हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य आदर्श है। इसलिये यह देख कर खेद हुआ कि उस ऐक्यपर आघात पहुंचनेकी आशंका है। जितने उदार प्रकृतिके हिन्दू-मुस्लिम नेता मुझसे मिले, सभोंने एक स्वरसे मुझसे कहा कि हिन्दू-मुसलमानोंमें मतभेदकी आशंका उठ गई है। इससे हम लोग बड़े ही चिन्तित हैं और उसे रोकनेके लिये हर तरहकी चेष्टायें कर रहे हैं। लोगोंने मुझसे कहा कि चन्द हिन्दुओंने यह अफवाह फैला दी है कि मैंने हिन्दू और मुसलमान दोनोंको मांसके प्रयोगसे रोक दिया है और मांस खाना निषेध कर दिया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि कुछ अतिशय कट्टर शाकाहारियोंने लोगोंके घरोंसे जबरदस्ती मछली और मांस निकालकर फेंक दिया। मैं जानता हूँ कि अनेक स्थानों पर मेरे नामपर अन्याय किया जा रहा है। पर यह घटना मुझे विचित्र प्रतीत हुई। लोग जानते हैं कि मैं कट्टर निरामिषभोजी सुधारक हूँ। पर सब लोग इस बातको नहीं समझते कि अहिंसाका भाव सबके लिये बराबर है और इसलिये मैं मांसाहारियोंसे भी बिना किसी असद्भावसे मिलता जुलता रहता हूँ। न तो गौ-रक्षाके लिये मैं किसी मनुष्यका बध कर सकता हूँ और न किसी मनुष्यकी रक्षाके लिये गो-बध कर सकता हूँ, चाहे दोनोंका महत्व कितना ही प्रबल क्यों न हो। मैं यहीं पर यह कह देना चाहता हूँ कि निरामिषभोजी होना हमारे असहयोग कार्यक्रमका अङ्ग नहीं है और न मैंने इस प्रकारकी मंत्रणा दी है। जिन लोगोंने मेरे नाम पर इस तरहकी कार्यवाई की है मैं उन्हें जानता भी नहीं। मैं पक्का विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि यदि हमने कहींसे भी हिंसाका भाव प्रगट किया और शान्ति भङ्ग हुई तो हमारा सारा उद्देश्य विफल हो जायगा। हिन्दुओंको यह कभी भी उचित नहीं है कि वे मुसल-

मानोंको मांस—गो-मांस तक—खानेसे रोकें। इसी प्रकार निरामिषभोजी हिन्दुओंको भी मांस-मछली खानेवाले हिन्दुओं पर किसी तरहका दबाव नहीं डालना चाहिये। मैं तलवारके बलपर भारतको परहेजी नहीं बनाना चाहता। हिंसासे राष्ट्रका सदाचारिक ह्रास सबसे अधिक हुआ है। हम लोगोंके हृदयमें भयने सबसे प्रबल स्थान जमा लिया है। यदि असहयोगी लोगोंको अपने दलमें लानेके लिये बल प्रयोग करेंगे तो इससे बढ़कर दूसरी कोई भी भूल वे नहीं कर सकते। इस तरह वे नौकरशाहीके हाथके खिलौने बन जायेंगे। असहयोगके प्रचारमें लेश-मात्र भी बलात्कार मार्गमें भीषण बाधा उपस्थित कर देगी।

गो-रक्षाका प्रश्न बड़ा विकट प्रश्न है। इसका महत्व हिन्दुओंकी दृष्टिमें सबसे अधिक है। गो-माताके लिये मेरे हृदयमें जो सम्मान है उसमें जरा भी कमी नहीं आ सकती। जब तक हिन्दुओंमें गो-रक्षाकी योग्यता नहीं हो जाती, वे अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर सकते। इस योग्यताको प्राप्त करनेका दो मार्ग है—आत्मबल और पशुबल। और गो-रक्षाके लिये बल प्रयोग करना हिन्दू-शास्त्रको शैतानके हाथमें सौंप देना है और गो-रक्षाके मूल कारणको कलुषित तथा निन्दनीय बना देना है। किसी मुसलमानने लिखा है—"गो-मांसका प्रयोग इस्लाम धर्मके अनुसार अभी केवल जायज समझा जाता है, पर जिस दिन हिन्दू लोग इसके लिये बल प्रयोग करना आरंभ कर देंगे उसी दिनसे यह मुसलमानोंका परम धार्मिक कर्तव्य हो जायगा।" केवल आत्मत्यागसे ही हिन्दू लोग गोमाताकी रक्षा कर सकते हैं। मेरी समझमें गोरक्षाके लिये हिन्दूओंके हाथमें एक ही उपाय है और वह यह है कि इन्हें इस संकट या आपत्तिके समय मुसलमानोंका साथ देना चाहिये और उनकी सहायता कर उनका सद्भाव प्राप्त करना चाहिये। इतना करके उन्हें इस विश्वास पर चुपचाप बैठ रहना चाहिये कि इसका बदला मुसलमान भाई अवश्य मर्यादाके साथ चुकावेंगे अर्थात् अपने हिन्दू-भाइयोंकी इज्जत और मर्यादाका ख्याल रखकर वे गौकी रक्षा अवश्य करेंगे। इसके लिये हिन्दुओंको सबसे पहले मुसलमानोंके प्रति हिंसाका भाव छोड़ देना चाहिये। आत्म-त्याग और विश्वास आत्म-बलके गुण हैं। हमने सुना है कि बड़े-बड़े मेलोंमें यदि मुसलमानके हाथमें गाय या बछड़े या बकरियाँ देखी जाती हैं तो लोग उन्हें बलात् उनसे छीन लेते हैं। जो हिन्दु इस तरहका आचरण करते हैं वे हिन्दू और गोवंश दोनोंके शत्रु हैं। गोवंशके रक्षाका सबसे उत्तम और बढ़कर उपाय खिलाफतकी रक्षा करना है। इसलिये मुझे पूर्ण आशा है कि प्रत्येक हिंदू हिंसा या जोर-जुल्मका जरा भी भाव नहीं दिखावेगा और न किसी मुसलमानपर हाथ छोड़कर अपने हाथको कलंकित करेगा चाहे वह गोरक्षाके लिये हो, अन्य जीवकी रक्षाके लिये हो अथवा किसी अन्य प्रयोजनसे हो।

यंग-इंडिया
१९ मई, १९२१

हिन्दू-मुस्लिम मेल

यह बात अब सबपर प्रगट हो गई है कि जबतक हिन्दू तथा मुसलमानोंमें मैत्री नहीं स्थापित हो जाती, देश उन्नतिके पथपर अग्रसर नहीं हो सकता। यह भी सबको विदित है कि जिस सिमेन्टसे ये दोनों जोड़े गये हैं वह सूखकर कड़ी नहीं हो गई है, वह अभी सर्द है और उखड़ सकती है। परस्पर अविश्वास अबतक बना है। राष्ट्रके नेताओंको यह बात भली-भांति विदित हो गई है कि जबतक दोनोंका परस्पर विश्वास दृढ़ नहीं हो जाता, तथा साथ काम करनेके लिये दोनों तैयार नहीं हो जाते, भारत उन्नतिके पथपर अग्रसर नहीं हो सकता और न सच्ची उन्नति ही कर सकता है। जनताकी परिस्थितिमें परिवर्तन अवश्य हो गया है, पर स्थायी सुधार अभी तक आशाजनक नहीं हुआ है। अभी तक मुसलमान जन-साधारण स्वराज्यकी आवश्यकता पर वही प्रधानता देनेको तैयार नहीं है जो हिन्दु देते हैं। सार्वजनिक सभाओंको ही ले लीजिये, मुसलमानोंकी संख्या उतनी देखने में नहीं आती जितनी हिन्दुओंको रहती है। यह काम जबर्दस्ती या दबाव डाल कर नहीं कराया जा सकता। पर अभी इसमें विलम्ब नहीं हुआ है। मुसलमानोंमें राजनैतिक स्पर्धा उठानेके लिये जितने समयकी आवश्यकता है उतना समय अभी तक नहीं बीता है। इस थोड़ेसे समयमें जो कुछ हुआ है उसका अनुमान करके हताश होनेका कोई कारण नहीं है। इसके थोड़े ही दिन पहले मुसलमान जनता कांग्रेसके नाम तकको नहीं जानती थी, उसके प्रति सर्वथा उदासीन थी—उसकी कार्यवाहीमें भाग लेना तो दूरकी बात थी। पर आज वही मुसलमान जनता सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें कांग्रेसका सदस्य बन रही है। इसे साधारण बात नहीं कह सकते।

पर इतनेसे ही काम नहीं चल सकता। इस कामको सफल बनानेका कार्य हिन्दुओं पर है। जहाँ कहीं वे मुसलमानोंको उदासीन,देखें उन्हें प्रोत्साहन देकर मैदानमें ले आवें। हिन्दुओंके मुँहसे बहुधा इस बातकी शिकायत सुननेमें आती है कि मुसलमान जनता न तो कांग्रेस संगठनमें भाग लेती है और न तिलक स्वराज्य फण्डके लिये चन्दा देने तथा बटोरनेमें उत्साह दिखाती है। पर क्या इसके लिये उन्हें उत्साहित किया गया है? क्या उन्हें अभी भी शामिल होनेके लिये बुलाया गया है? प्रत्येक जिलेमें, नगरमें तथा गाँवमें हिन्दू जनताका यह धर्म होना चाहिये कि वह मुसलमान जनताके पास जाती और उन्हें मैदानमें आनेके लिये प्रोत्साहित करती। जबतक हम लोगोंमें ऊंच-नीच, बड़े-छोटेका भाव बना रहेगा तबतक हम लोगोंमें सच्ची समता कभी भी स्थापित नहीं हो सकती। जहाँ दो बराबरीके मनुष्य काम कर रहे हैं वहाँ संरक्षता या इस तरहके प्रश्नको हम लोगोंने अपने मनमें यही समझ लिया है कि इनसे मैत्री करके इस प्रश्नको हल करना असंभव है।

पर इस समय वे संकटमें हैं। हमलोग उनकी सहायताके लिये उनका साथ दे रहे हैं। यह काम हमलोग जानबूझकर कर रहे हैं। पर इसके लिये हमें इनसे किसी बदलेकी आकांक्षा नहीं रखनी चाहिये। यदि हमने किसी प्रतिदानके भावसे प्रेरित होकर उनकी सहायता की तो फिर उस सहायताका कोई मूल्य नहीं रह जाता। मैत्री लेन-देनके व्यवहारसे नहीं चल सकती। मैत्रीमें किसी भेद-भावका विचार नहीं रहता। सेवा एक तरहका धर्म है और धर्म एक तरहका ऋण है, और उस ऋणका प्रतिशोध न करना पाप और महापाप है। यदि हमलोग वास्तवमें मुसलमानोंके साथ मैत्री स्थापित करना चाहते हैं तो हमें उनकी सहायता अवश्य करनी चाहिये, इसे हमें जतलानेकी आवश्यकता नहीं है। इस भारको हम उनके ही मत्थे छोड़ देते हैं। हमलोग जो सहायता दे रहे हैं उसके बदलेमें हमें किसी तरहके उपकारकी मांग उनके सामने रखनेकी आवश्यकता नहीं है। इस तरहका उपकार तो खरीदा हुआ उपकार समझा जायगा और मुसलमान लोग इसे लेना स्वीकार न करें तो, उन्हें किसी तरहका दोष नहीं देना चाहिये। इन कारणोंसे मुझे पूरी आशा है कि बिहार तथा अन्य प्रान्तके हिन्दू सावधान हो जायंगे और अव्वल दर्जेकी सहनशीलता प्रगट करने की चेष्टा करेंगे। चाहे इस बकरीदके अवसरपर मुसलमान लोग कुछ भी क्यों न करें, हमें उन्हें पूरी स्वतंत्रता दे देनी चाहिये कि वे क्या करते हैं।

हमलोग मुसलमानोंपर जितना दबाव डालनेकी चेष्टा करेंगे उतना ही अधिक गोवध बढ़ता जायगा। इसलिये इस संबन्धमें हमें यही उचित है कि हम कुछ न बोलें और सारी बात मुसलमानोंकी मर्यादा और कर्तव्य-ज्ञानपर छोड़ दें। यदि पूर्ण संयमके साथ इस कामको निष्पन्न करलें तो हम गो-रक्षाके लिये आवश्यकता-से अधिक प्रयास कर चुकेंगे।

गो-रक्षाका उपाय मुसलमानोंके साथ लड़ने या उन्हें मार डालनेमें नहीं हो सकता। इसके लिये मेरी समझमें एक ही बात दिखाई देता है और वह यह है कि हम लोग खिलाफतके साथ न्याय करानेके लिये मुसलमानोंके साथ प्राण देनेके लिये तैयार हो जायें और यदि आवश्यकता आ पड़े तो मर मिटें, पर गो-रक्षाका नाम न लें, उसकी चर्चा तक न करें। गो-रक्षा भी एक तरहकी आत्म-शुद्धि है। इसे एक तरह-की तपस्या समझनी चाहिये। जिस समय हम बिना प्रयोजनके प्राण देनेको तैयार हो जाते हैं और उस बलिदानसे किसी तरहकी आकांक्षा नहीं रखते उस समय हमारी यातनाकी चर्चा ईश्वर तक पहुंचती है और उसका सिंहासन हिल उठता है। ईश्वर उसकी रक्षाके लिये तुरंत तैयार हो जाता है। यही धर्मका मर्म है और यदि एक मनुष्य भी इस योजनाके अनुसार काम करता है तो उसका फल अवश्य प्राप्त होता है। एक बात और है कि मैं इस बातको पूर्ण दृढ़ता तथा साहसके साथ कह सकता हूँ कि हिन्दू धर्म-शास्त्रके मर्यादाके अनुसार यह कहींसे भी सिद्ध नहीं होता कि हम केवल मात्र गो-रक्षाके लिये किसी मनुष्यका प्राण लेलें। इस तरह-

के आचरणको हिन्दू धर्मके अनुसार है नहीं कह सकते। इस समय प्रश्न यह उपस्थित है कि कितने हिन्दू, मुसलमानोंका साथ देनेको तैयार हैं? कौन लोग बिना किसी बदलेके ख्यालसे मुसलमानोंकी धार्मिक रक्षाके लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर देनेके लिये तैयार हैं? यदि हिन्दुओंकी ओरसे इस प्रश्नका उत्तर धार्मिक उत्साहके साथ निकला तो इससे हम केवल मुसलमानोंकी स्थायी मैत्री ही नहीं प्राप्त कर लेंगे, बल्कि हम गो-रक्षाके प्रश्नको सदाके लिये हल कर लेंगे। पर हमें इन मुसलमान भाइयोंके बड़े-से-बड़े नेताओंसे भी कोई खास आशा नहीं करनी चाहिये। वे हमारी सहायता मात्र कर सकते हैं। जो लोग परम्परासे गो-वध करते आ रहे हैं और ऐसा करते समय जिन्होंने हिन्दुओंके चित्तकी प्रवृत्ति पर जरा भी ध्यान नहीं दिया है, उनके हृदय-के भाव इस तरह एकाएक नहीं पलट सकते, पर ईश्वरकी प्रेरणा अपरम्पार है। एक क्षणमें न जाने वह क्या से क्या कर सकता है, वह क्षणभरमें उनकी चित्तकी वृत्ति बदल सकता है और उसमें दयाका भाव भर सकता है। यदि प्रार्थनाके साथ ही साथ तपस्या भी की जाय तो उसका महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। ईश्वर केवल उसी तरहकी प्रार्थनाको सुनता है।

अब मैं अपने मुसलमान भाइयोंसे दो शब्द कहना चाहता हूँ। यदि उद्दण्ड और उद्धत प्रकृतिका कोई जिद्दी हिन्दू कोई काम कर दे तो उन्हें उससे उत्तेजित नहीं होना चाहिये। उत्तेजित किये जाने पर जो आत्म-संयम नहीं खोता, अन्तिम विजय उसीकी होती है। उन लोगोंको यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि जिन हिन्दुओंमें जरा भी विचार है वे इस समय मुसलमानोंके साथ किसी लाभके भावसे प्रेरित होकर नहीं गये हैं। प्रत्येक हिन्दूका यह विश्वास है कि मुसलमानोंकी मांग न्यायोचित है, खिलाफतके साथ अन्याय किया गया है और इस तरहके न्यायोचित काममें मुसलमानोंकी सहायता करना भारतकी सेवा करना है, क्योंकि दोनों एक ही भूमिसे पैदा हुये हैं, एक ही जलवायुमें रहते हैं, एक ही भारत-माताका पयपान करते हैं और अन्न खाते हैं।

यंग-इंडिया
२८ जुलाई १९२१

राज-भक्तिमें दस्तन्दाजी

कुछ समय पहले बम्बईके लाट साहबने लोगोंको चेतावनी दी थी कि अब हमको गम्भीरतासे काम लेनी है और हम अधिक समय तक जिस तर्जके भाषण किये जा रहे हैं उन्हें गंवारा नहीं कर सकते। अब अली-भाइयोंके सम्बन्धमें जो प्रेस-नोट उन्होंने जाहिर किया है, उसमें उन्होंने अपनी गम्भीरताके मतलबको साफ किया है। अलीभाइयों पर यह जुर्म लगाये जानेवाला है कि उन्होंने फौजके सिपाहियोंकी राजभक्तिको डिगानेका प्रयत्न किया है और राजद्रोही भाषण किये हैं। लेकिन कहना पड़ेगा कि मुझे यह ख्याल तक नहीं होता था कि बम्बईके लाट साहब इस विषयमें इतनी बुरी तरहसे अज्ञान होंगे। इससे यह साफ जाहिर होता है कि उन्होंने इस बात पर ध्यान ही नहीं रखा कि इन पिछले बारह महीनोंमें हिन्दुस्तानके अन्दर क्या-क्या घटनाएं हुई। मालूम होता है कि उन्हें पता तक नहीं है कि राष्ट्रीय महासभाने तो पिछले साल सितम्बरमें ही फौजी सिपाहियोंकी राजभक्तिमें हाथ डाल दिया है और सेन्ट्रल खिलाफत कमेटीने तो उससे भी पहले तथा खुद मैंने तो इन सबके पहले इस विषय पर अपनी आवाज उठाई! क्योंकि यह सुझानेका श्रेय या निन्दाका पात्र तो मैं ही हूँ कि हिन्दुस्तानको यह पूरा हक है कि वह सिपाहियोंसे, तथा सरकारके हर एक नौकरसे, फिर चाहे वह किसी जगह पर क्यों न काम करता हो, यह कहे कि इस सरकारने जो जो अत्याचार किये हैं उनके पापके भागी तुम भी हो। करांचीमें जो खिलाफत कान्फ्रेन्स हुई थी उसने तो सिर्फ कांग्रेसकी इसी आवाजकी प्रतिध्वनि, इस्लामके भाषामें की थी। इस्लामके सम्बन्धमें मुसलमानोंके धर्म-गुरु ही कुछ कहनेके अधिकारी हैं। लेकिन हिन्दू-धर्म और राष्ट्रीय-धर्मकी तरफसे यह कहनेमें मुझे तनिक भी संकोच नहीं होता कि जिस सरकारने हिन्दुस्तानके मुसलमानोंके साथ दगाबाजी की है और जो पंजाबके अमानुषिक अत्याचारोंकी अपराधिनी है उसके यहाँ सिपाही बनकर नौकरी करना महापाप है। यह बात मैं कितनी ही जगह खुद सिपाहियोंकी मौजूदगीमें कह चुका हूँ और अगर आज तक मैंने हरएक सिपाहीसे अलग अलग यह बात नहीं कही है तो इसका सबब यह नहीं है कि हम ऐसा चाहते नहीं हैं बल्कि यह है कि हममें उनकी जीविका चलानेका सामार्थ्य अभी नहीं आया है। लेकिन मैं सिपाहियोंसे यह कहते हुये कभी नहीं हिचका हूँ कि यदि तुम कांग्रेस या खिलाफतके भरोसे न रहकर, खुद ही अपनी गुजरका जरिया पैदा कर सकते हो तो तुम तुरंत इस्तीफा दे दो। और मैं वादा करता हूँ कि ज्यों ही चरखा हरएक घरमें स्थायी हो जायगा और ज्योंही हिन्दुस्तानी यह महसूस करने लगेंगे कि बुनाईके द्वारा कोई भी आदमी किसी भी दिन अपनी गुजर बामिजाज और इज्जतके साथ कर सकता है, त्यों ही मैं हरएक हिन्दुस्तानी सिपाहीसे अलग-अलग यह कहते हुये जरा भी आगा-पीछा न करूंगा कि तुम अपनी नौकरी छोड़ दो, जुलाहेका काम करने लगो, फिर

ऐसा करनेके लिये मुझे गोली भी मार दी जाय तो मुझे परवाह नहीं। क्योंकि क्या हिन्दुस्तानको पराधीन रखनेमें इन सिपाहियोंका प्रयोग नहीं किया गया है ? क्या जालियांवाला बागके बेगुनाह लोगोंके हत्याकाण्डके लिये उनका उपयोग नहीं किया गया है ? क्या चांदपुरमें उस खौफनाक रातमें बेकसूर मर्दों, औरतों और बच्चोंको घरसे बाहर निकालनेमें उनका उपयोग नहीं किया गया ? क्या मेसोपोतामियाके मानो-धनी अरबोंको अपने अधीन करनेके लिये इन सिपाहियोंका उपयोग नहीं किया गया है ? क्या मिश्रवालोंको पददलित करनेमें इनका उपयोग नहीं किया गया है ? ऐसी हालतमें कोई भी हिन्दुस्तानी जिसमें मनुष्यताका कुछ भी तेज है और कोई भी मुसलमान जिसे अपने मजहबका कुछ भी फक्र है किसी तरह वही बात महसूस किये बिना नहीं रह सकता जो कि अली भाइयोंने की है ? इन फौजके सिपाहियोंका उपयोग किसी शूरवीरकी तरह, जिसका धर्म यही है कि दीन दुर्बल लोगोंकी आजादी और इज्जतकी रक्षा करे, करनेके बजाय ज्यादातर भड़ैत जल्लादोंकी तरह किया गया है। लाट साहबने हमलोगोंको कहकर कि अगर गोरे सोल्जर और सिपाही न होते तो मलाबारमें क्या हो जाता, हमारी अधमसे अधम वृत्तिका सहारा ढूँढ़ा है। मैं लाट साहबको बतला देना चाहता हूँ कि मलाबारके हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलकर मोपलाओंको शान्त कर दिये होते। अगर खिलाफतका सवाल दरपेश न होता तो मुमकिन होता कि मोपलाका उत्पात बिल्कुल हुआ ही न होता और इससे भी गये गुजरे अगर मान लें कि मुसलमान और मोपला आपसमें मिल जाते तो हिन्दू-धर्म अहिंसाके ही सिद्धान्तका अवलम्बन करके हरएक मुसलमानको अपना दोस्त बना लेता या हिन्दूओंके शौर्यकी परीक्षा और आजमाइश हो जाती। हिन्दू और मुसलमानके भेदको उत्तेजना देकर बम्बईके लाटने खुद अपना और अपने कार्यका (फिर वह चाहे जो हो) बड़ा बिगाड़ कर लिया है और अपने उस नोटके द्वारा हिन्दुओंको अनुमान करने का मौका देकर उनका बड़ा अपमान किया है कि हम बेकस और बेबस प्राणी हैं। हममें न तो अपने बाल-बच्चोंकी, न अपने देशकी या अपने धर्मकी रक्षा करनेकी शक्ति है और न उनपर मर-मिटनेकी ही जुर्रत है। परन्तु अगर लाट साहबका यह ख्याल सही है तो हिन्दू लोग जितनी ही जल्दी मर-मिटें, इन्सानियतके लिये उतना ही बेहतर होगा। लेकिन इस जगह मैं लाट साहबको यह याद दिलाना चाहता हूँ कि यह कहना कि आज अंग्रेजी राज्यमें हिन्दुस्तानी इतने पौरुषहीन हैं कि वे लुटेरोंसे—फिर वह चाहे मोपला मुसलमान हों और चाहे आराके क्रोधोन्मत्त हिन्दू हों—अपनी रक्षा नहीं कर सकते। यह तो अंग्रेजी राज्य पर बड़ेसे बड़ा कलंक लगाना है।

हाँ, लाट साहबने अली भाइयोंका जो उल्लेख किया है वह उनके राजभक्तिमें दस्तन्दाजी करनेके उल्लेखसे तो कम अक्षम्य है, क्योंकि वे यह बात जरूर जानते होंगे कि राजद्रोह तो कांग्रेसका रूप ही हो गया है इस 'कानून द्वारा संस्थापित सरकार' के प्रति अप्रीति पैदा करनेका व्रत तो प्रत्येक असहयोगियोंने धारण कर लिया है।

असहयोग आन्दोलन तो एक धार्मिक और पूर्ण आन्दोलन है और वह इस सरकारका उच्छेद करनेके उद्देश्यसे ही, बहुत विचारके उपरान्त उठाया गया है। इसलिये यह कानूनकी रूहसे, ताजीरात-हिन्दकी भाषामें जरूरही राजद्रोहात्मक है। लेकिन यह आविष्कार कोई नया नहीं है। लार्ड चेम्सफोर्ड इस बातको जानते थे, लार्ड रीडिंग भी जानते हैं। अब यह ख्यालमें नहीं आ सकता कि बम्बईकी सरकार इस बातको नहीं जानती हो। यह बात आपसमें तय हो चुकी थी कि जबतक यह आन्दोलन हिंसाका अवलम्बन न करेगा तबतक इसमें किसी तरहका खलल नहीं डाला जायगा।

पर इसपर यह कहा जा सकता है कि सरकारको यह अख्तियार है कि जब यह देखे कि अब तो यह आन्दोलन वाकई अपने तर्जे-अमलकी हस्तीको ही डांवाँडोल करने लगा है तब वह अपनी नीति बदल दे। मैं उसके अधिकारको नामंजूर नहीं करता। एतराज तो लाट साहबके उस नोटपर है। उसका मजमून इस तरहसे लिखा गया है कि जिससे अनजान लोग यह ख्याल करें कि सिपाहियोंको राजभक्तिसे हटाना और राजद्रोह करना मानों कोई नये जुर्म हैं जो अली भाइयोंने इस वक्त किये हैं और मानों यह पहला ही मौका है जो लाट साहबका ध्यान इस ओर गया है।

जो हो, अब तो यह साफ जाहिर है कि कांग्रेस और खिलाफतके कार्यकर्त्ताओंका क्या कर्त्तव्य है। हमें दयाकी भीख नहीं मांगनी है। हम सरकारसे इसकी उम्मीद भी नहीं करते। हमने कभी यह प्रार्थना तक नहीं की कि जबतक हम अहिंसाका अवलम्बन कर रहे हैं तबतक हम जेलसे मुक्त रहें। अगर हम राजद्रोहके लिये भी जेल भेजे गये तो अब किसी तरहकी शिकायत न करेंगे। इसीलिये अब हमारा आत्म-सम्मान और आत्मव्रत यह चाहता है कि हम शान्त, स्थिर और अहिंसाके पाबन्द रहें। हमें तो अपने उसी निश्चित राहपर चलना है। हमें उसी बातको हजारों जगहोंमें दुहराना चाहिये जो अली भाइयोंने सिपाहियोंके संबन्धमें कहा है और हमें खुल्लम-खुल्ला परन्तु तरतीबके साथ इस सरकारके प्रति अप्रीतिका प्रचार करना चाहिये। यह तबतक करते रहना चाहिये जबतक कि सरकार हमें गिरफ्तार न कर ले। परन्तु यह काम हमें क्रोधित होकर "जैसाको तैसा" की रीतिसे नहीं बल्कि अपना धर्म समझकर करना चाहिये। हमें अली भाइयोंकी तरह खादी पहनना चाहिये और 'स्वदेशी' के मंत्रका प्रचार करना चाहिये, मुसलमानोंकी स्मर्ना और अंगोरा सरकारके लिये चन्दा जमा करना चाहिये। हमें स्वराजकी प्राप्तिके लिये और खिलाफत तथा पंजाबके अत्याचारोंके निपटाराके लिये, अली भाइयोंकी तरह हिन्दू-मुसलमानकी एकताके लिये और अहिंसाके मंत्रका प्रचार करना चाहिये।

सब जोखोंका समय आ पहुँचा है। परन्तु जिस रोगीमें पार कर जानेका सामर्थ्य है उसके लिये तो यह अच्छा ही अवसर है। अगर खतरेको सामने देखते हुये भी एक ओर तो हम चट्टानकी तरह मजबूत रहें और दूसरी तरफ अधिक आत्म-संयम रखें तो हम निश्चय ही इसी साल अपने मंजिले-मक़सूदको पहुँच जायँगे।

यंग-इंडिया
२९ सितम्बर, १९२१

हिन्दू-मुसलिम मेल बनावटी

'माडर्न रिव्यू' के वर्त्तमान अंकमें हिन्दू-मुस्लिम मेलपर एक नोट निकला है। इसका उत्तर देना आवश्यक है। चतुर सम्पादकने "बनावटी" शीर्षक देकर लिखा है कि यह मेल या एकता केवल ऊपरी या दिखौवा है, इसकी तहमें कुछ नहीं है। मेरी समझमें ऐसी बात नहीं है। यह मेल बनावटी या दिखौआ न होकर स्थायी रूप ग्रहण कर रहा है। यह बात अवश्य है और मैंने पिछले लेखोंमें यह बात स्वीकार भी की है कि यह मेल अभी नया है, पक नहीं गया है, इसीलिये इसको सावधानीसे पकड़ना होगा। पर यदि दोनों एक ही तरहकी विपत्ति या आशंकाकी सम्भावनाको भलीभांति समझते हैं तो इसे बनावटी या दिखौवा कहनेका कोई अवसर उपस्थित नहीं होता।

मुझे यह बात खेदके साथ लिखनी पड़ती है कि अभीतक हमलोगोंके चित्तमें से आत्माभिमान या पक्षपात दूर नहीं हो गया है। परस्पर एक दूसरेको आशंकाकी दृष्टिसे देखते हैं। प्राचीन समयमें जो-जो अत्याचार किये गये हैं, उनकी अशुभ स्मृति अभी भी दूर नहीं हुई है। आज भी हमलोग निर्वाचन आदिमें योग्यताकी परवाह नहीं करते, केवल धार्मिक धारणा या विश्वासके सहारे ही चलते हैं। इन बातोंपर विचार करना है। जब दोनों दल इस बातको जानते हैं और इन कारणोंके रहते भी जब परस्परमें मेल करनेकी चेष्टा कर रहे हैं तो मेलको दिखौवा या बनावटी कहना तो उचित नहीं प्रतीत होता।

यह कहना भी उचित नहीं है और साथ ही सच भी नहीं है कि खिलाफत कमेटीने गो-हत्या रोकनेके लिये जो अपील की है उसपर मुसलमानोंने ध्यान नहीं दिया है। सबसे बढ़कर हर्षकी बात तो यह होनी चाहिये कि खिलाफत कमेटीके लोग—जो स्वयं मुसलमान हैं—गो-हत्या बन्द करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। इसके अलावे 'माडर्न रिव्यू'के सम्पादकको मैं इस बातका विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि खिलाफत कमेटीकी अपीलका बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा है। क्या यह साधारण बात है कि गो-रक्षाका समस्त भार मुसलमानोंने अपने ऊपर ले लिया है। क्या वह दृश्य साधारण था जिस समय मियां छोटानी और खत्री अपने मुसलमान भाइयोंसे गायें लेकर हिन्दुओंके हाथों सौंप रहे थे? क्या उस दृश्यको देखकर हृदय उमंगसे नहीं भर जाता था?

यह बात मैं स्वीकार करता हूं कि मैं और मुहम्मदअली दोनों इस बातकी सदा चेष्टा करते हैं कि किसी तरह एक दूसरेको धार्मिक आघात नहीं पहुंचा सकें। पर यदि न्यायसे काम लिया जाय, सच्ची बात कही जाय तो इसके लिये हम लोगोंको

नोवा भी नहीं दिखा सकता। हम लोगोंके लिये मेल—बनावटी नहीं है, दिखौवा नहीं है, बल्कि इसका महत्व हम लोगोंकी दृष्टिमें इतना अधिक है कि इसको चरितार्थ करनेके लिये हमलोग अपना प्राणतक निछावर कर सकते हैं। मैं इतना संतोषके साथ लिख सकता हूँ कि हमारे दौरेमें एक बार भी यह अवसर उपस्थित नहीं हुआ है जब हमलोगोंके मनमें किसी तरहका क्षोभ या रोष उत्पन्न हुआ हो या एक दूसरेकी कार्यवाईसे हम दुःखी हुये हों। सम्पादक महोदयने अपने निम्नलिखित वाक्यका वज्र-प्रहार बहुतही बुरी तरह किया। इसके मर्माघातसे हृदय विदीर्ण हो गया है। उन्होंने लिखा है:—"दोनों भाषणोंके पढ़नेसे स्पष्ट हो जाता है कि एककी चेष्टामें तो सुदूर खिलाफतके साथ न्याय कराने तथा तुर्कोंको उनके विजित प्रदेशोंको लौटा देनेके लिये और दूसरेकी सारी चेष्टामें भारतको पूर्ण स्वाधीन बना देने के लिये लक्ष्य है खिलाफतके साथ न्याय करना। मुहम्मद अली मुसलमान हैं। मुसलमान धर्मके अनुसार खिलाफत प्रश्नके साथ न्याय करना उनका प्रधान कर्तव्य है और मैं खिलाफतके प्रश्नमें इसलिये तन-मनसे लगा हूँ कि इस संकटके समय मुसलमानों-का साथ देकर हम उनकी मैत्री प्राप्त करते हैं। इस तरह मुसलमानके तेज छुरेसे गो-माताकी रक्षा होजाती है। हिन्दूका कर्तव्य गो—माताकी रक्षा करना है। साथ ही हम दोनों स्वराज्यके लिये उतने ही उत्सुक हैं। क्योंकि हम दोनों इस बातको समझते और जानते हैं कि स्वराज्यसे ही हमारे धर्मकी रक्षा हो सकती है। इसे लोग संकीर्ण विचार भले ही कहें पर इसके छिपानेकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। यदि भारत अपनी शक्तिके प्रयोगसे खिलाफतके साथ न्याय कर देता है तो हम उसे स्वराज्य प्राप्ति समझते हैं। हमारे मैत्री तथा धर्मका आधार प्रेम है। मैं प्रेमके द्वारा ही मुसल-मानोंकी मैत्री प्राप्त करना चाहता हूँ। यदि एकतरफा भी प्रेम काम करेगा तो हमारी एकता दृढ़ समझिये। मौलाना मुहम्मद अलीके बारेमें यह कहना कि वे जिस उर्दूका प्रयोग करते हैं, उसे अधिकांश बंगाली नहीं समझ सकते, अनर्गल है। मैं इस बातको भलिभांति जानता हूँ कि अपने भाषणोंमें मौलाना मुहम्मद अली यथासम्भव सरल उर्दूका ही प्रयोग करते हैं।

इस बातको मैं भी अत्यन्त खेदके साथ स्वीकार करता हूँ कि इस समय भी ऐसे हिन्दू—मुसलमान हैं जो परस्पर विश्वास न रखनेके कारण विदेशी शक्तियोंका प्रभुत्व आवश्यक समझते हैं। यही सब कारण हम सबके मार्गमें अतिशय कठिनाई उपस्थित कर रहे हैं और हमलोग अपने ध्येय तक नहीं पहुंच सकते हैं। दुःख तो इस-बातका है कि हम लोग अभीतक इस बातको समझ नहीं सके हैं कि स्वतंत्र होकर हम लोगोंमें परस्पर कलहकी संभावना, विदेशी शक्तिके पञ्जेके तले रहनेसे कहीं उत्तम और श्रेयस्कर है। यदि हम लोगोंकी यही धारणा है कि वृटिश सरकारने अपने बलिष्ठ हाथके प्रयोगसे हम लोगोंको अलग कर रखा है और हमलोग आपसमें लड़ नहीं रहे हैं तो हमारी यही हार्दिक इच्छा है कि हम लोग इस तरहके युद्धके लिये जितने शीघ्र मुक्त कर दिये जायँ उतना ही अच्छा है, क्योंकि इससे हममें साहस

होगा, धैर्य आवेगा, बल-वीर्य बढ़ेगा और हम अपनी तथा अपने धर्मकी रक्षा करने योग्य हो जाँयगे। यदि हमलोग जान-बूझकर आपसमें लड़ें तो यह कोई नई बात नहीं होगी। कदाचित इसी तरहके युद्धसे हम अपना होश सँभाल लें। ब्रिटेनका इतिहास यही बतलाता है। ये लोग प्रायः २१ वर्षोंतक आपसमें लड़ते रहे और इतने वर्षोंतक लड़नेके बादही वे शान्त होकर रहने लगे। फ्रांसका इतिहास भी इस तरहके उदाहरणोंसे भरा है। फ्रांसमें जो परस्पर संग्राम चला था, जिस क्रूरताके साथ फ्रांसवाले आपसमें लड़ रहे थे जो-जो अत्याचार उन्होंने एक दूसरे पर किया था उसका संसारका इतिहास मुकाबिला ही नहीं कर सकता। अमेरिकाको ही ले लीजिये, स्वतंत्रता प्राप्त हो जानेपर उसे भी इसी तरहके संग्राममें प्रवृत्ति होना पड़ा था इसलिये केवलमात्र इस आशंकासे कि हमलोग आपसमें लड़ मरेंगे हमें अपना बल, अपना पौरुष तथा अपना साहस किसी भी तरह घटाना नहीं चाहिये। चतुर सम्पादक भी इस एकताकी अभिलाषा उसी तरह रखते हैं जिस तरह हममें से कोई भी व्यक्ति रखता है, क्योंकि उन्होंने लिखा है कि इस एकताके लिये आदिसे अन्त तककी परिवर्तनकी आवश्यकता है। जड़से लेकर पत्ते तक नया भाव लानेकी आवश्यकता है। पर उन्होंने इस समूल परिवर्तनके लिये कोई उपाय नहीं बताया है। उन्होंने यह समझ लिया है कि इस लेख (सम्पादकीय) को पढ़नेवाले उसे स्वयं ढूँढ़ निकालेंगे। उचित तो यह था कि उन्होंने इसका उपाय भी बतला दिया होता और उसके व्यवहारकी विधि भी लिख दी होती। उनकी अभिलाषा शायद यह है कि हम लोग खान-पान और शादी-विवाहका विचार आरंभसे ही छेड़ दें। अर्थात् असवर्ण विवाह और खान-पान भी आरंभ करें। यदि उनका यही भाव है और यदि वास्तवमें समझते हैं कि स्वराज्य इसी तरह प्राप्त होसकता है तो मुझे खेदके साथ लिखना पड़ता है कि उस विधिसे स्वराज्य पानेके लिये हमें सदियों प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इसका अभिप्राय यह हुआ कि हिन्दू लोग अपना सनातनधर्म छोड़ दें। मैं यह नहीं कहता कि यह करना अच्छा है या बुरा। पर इस तरहका सुधार व्यावहारिक और राजनीतिके दायरेके बाहर है। यदि कोई दिन ऐसा भी आया कि लोगोंके विचारमें इस तरहके परिवर्तन आगये और इसके द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकताकी स्थापना हुई तो हम इसे हिन्दू-मुस्लिम एकता कह भी नहीं सकते। वर्तमान आन्दोलनका क्या अभिप्राय है ? वर्तमान आन्दोलन यह चाहता है कि हिन्दू-मुस्लिमका पूर्ण एकता हो जाय। परन्तु इसके लिये न तो हिन्दू ही अपना धर्म छोड़ें न मुसलमान ही अपने धर्मसे अलग हों। यही कारण है कि मैं बहुधा अपने भाषणोंमें उपस्थित जनतासे यह बात कहा करता हूँ कि हिन्दू-मुस्लिम एकता किस तरह होनी चाहिये इसका अनुमान मुझे और मुहम्मद अलीको देखकर आपलोग कर लीजिये। मैं इस बातको अभिमानके साथ कहता हूँ कि हम दोनों अपने धर्मके कट्टर पक्षपाती हैं। चाहे मेरे हृदयमें अली-बन्धुओंके लिये कितना भी प्रगाढ़ प्रेम क्यों न हो पर मैं उनके लड़केके साथ अपनी लड़कीकी शादी करनेके लिये कभी भी तैयार नहीं हो सकता। और न वे ही इसके लिये तैयार हो सकते

हैं। यद्यपि वे इस बातको समझते और जानते हैं कि मेरा लड़का इतना सुधारक हो गया है कि वह उनकी पुत्रीका पाणिग्रहण करनेके सर्वथा योग्य होगया है। मैं उनका भोजन कभी भी ग्रहण नहीं करता और मेरे धार्मिक कट्टरपनकी वे पर्याप्त मर्यादा रखते हैं, उसका समुचित आदर करते हैं। इतने पर भी मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि जो मैत्री हमलोगोंमें है, जिस तरहके दृढ़ बन्धनमें हम लोगोंका दिल बंधा हुआ है उसका मुकाबिला करनेवाला कोई भी उदाहरण नहीं मिल सकता और सर्व-साधारणको इस बातका विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि हम लोगोंकी यह मैत्री दिखावटी या बनावटी नहीं है, बल्कि इसका दृढ़ आधार है, यह स्थायी है और इसमें हम लोगोंकी भावनाओंके पूर्ण मर्यादाका भार भरा हुआ है, और मुझे इस बातकी आशंका कहींसे भी प्रतीत नहीं होती कि यदि आज–ब्रिटिश सरकार हम लोगों पर कृपा करके यहाँसे चली जाय तो अली-बन्धु या उनके साथी अन्य मुसलमान मेरी स्वतंत्रता अपहरण करेंगे या मेरे धर्मपर प्रहार करेंगे। मुझे इस तरहकी आशंका नहीं है, क्योंकि एक तो मैं जानता हूँ कि मैं ईश्वरसे डरता हूँ और उसने कह रखा है कि जो मुझसे डरता है उसकी रक्षाकी मैं सदा चेष्टा किया करता हूँ। इससे मुझे पक्का विश्वास है कि आवश्यकताके समय वह हमारी रक्षा अवश्य करेगा। दूसरा कारण अली-बन्धुओंकी मर्यादाका है। वे इतने गिर नहीं गये हैं कि ईश्वरके नियमोंको इस तरह कुचल डालेंगे। यद्यपि मैं जानता हूँ कि ताकतमें वे मुझसे इतना बढ़े-चढ़े हुए हैं कि मेरे तरह दस या बारह आदमी भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। वे अकेले एकको एक साथ ही परास्त कर सकते हैं। इसलिये व्यक्तिगत उदाहरणके आधार पर मैं समस्त भारतके लिये इसी धारणा पर पहुंचता हूँ और इसी धारणाके अनुसार मैंने यह दिखलानेकी चेष्टा की है कि हिन्दू मुस्लिम एकता तभी स्थापित हो सकती है जब हम लोगोंके दिलमें एक दूसरेके लिये सहन-शीलता हो और अपनेमें दृढ़ विश्वास हो। इससे हम यह भी प्रगट करते हैं कि मानव प्रकृतिकी सौम्यताको हम भली-भांति स्वीकार करते हैं।

यंग–इंडिया
२० अक्टूबर, १९२१

❋

मोपला-उत्पातका अर्थ

स्काटलैन्डसे एक सज्जन मुझसे जवाब तलब करते हैं कि अभी तक आप अपने अखबारमें मोपला-उत्पातके संबन्ध अपने विचार क्यों नहीं प्रगट किये। इसका फल यह हुआ है कि इंगलैन्डमें जो लोग भारतीय प्रश्नोंके मनन करने के प्रेमी हैं उनका यह ख्याल होता चला है कि हिन्दुस्तानमें मुसलमानोंकी बादशाहत कायम हो गई है। हाँ, यह फटकार बिल्कुल ही बेजा नहीं है, लेकिन मैंने अपनी तरफसे फर्ज अदा करनेमें किसी तरह मुँह नहीं मोड़ा है। मेरा तो इसमें कोई चारा ही नहीं रहा। मैंने खुद कालीकट जाकर इस उपद्रवकी असलियतको जानना चाहा था और मुझे विश्वास था कि मैं उसमें अवश्य सफल होता। लेकिन सरकारकी इच्छा कुछ और ही थी। मुझे यह विश्वास करते दुःख होता है किन्तु यह मेरा विश्वास है कि वहाँके अधिकारी इस उपद्रवका अन्त करना नहीं चाहते और यह तो उन्हें अवश्य ही अभीष्ट नहीं है कि इस उपद्रवका अन्त शान्तिके साथ करनेका श्रेय असहयोगियोंको मिले। वे तो फिर एक बार दिखाने के लिये लालायित हो रहे हैं कि केवल अंग्रेजी फौज ही हिन्दुस्तानमें शान्ति कायम रख सकती है। इस दशामें सरकारके इस फरमानकी अवज्ञा करके कि आप मलाबार न जाइये सरकारसे मुठभेड़ न कर सका।

मैं वहाँके हाकिमोंकी निस्बत अपना ख्याल अच्छा बनाना पसन्द करता हूं। यह मानना तो मेरे स्वभावके विपरीत है कि मनुष्य जाति स्वभावतः नीचा है। किन्तु नौकरीशाहीकी नीचताके तो इतने सबूत मेरे आस-पास हैं कि वह अपना मतलब गाँठनेके लिये चाहे जो कर बैठनेमें कभी न हिचकिचायेगी। मेरे चम्पारन जानेके पहले चम्पारनके किसानों पर किये गये अत्याचारोंकी जो कथाएँ मैंने सुनीं थीं, उनपर मुझे विश्वास नहीं होता था। मेरा यह कथन अक्षरशः सत्य है। परन्तु जब मैं वहाँ पहुंचा तो मैंने देखा कि वहाँकी हालत जो मैंने सुनी थी उससे भी अधिक खराब थी। मैं इस बातको नहीं मानता था कि जालियांवाला बागकी तरह बेगुनाह लोग कहीं बिना हिदायत दिये ही जान-बूझकर कत्ल किये जाते होंगे। मुझे यह विश्वास ही नहीं होता था कि मनुष्य भी कहीं जबरदस्ती पेटके बल रेंगाया जाता होगा। किन्तु मैं जब पंजाब पहुंचा तब मैं वहाँकी हालत देखकर भौंचक रह गया कि ओफ! इतना तो मैंने सुना भी नहीं था। और यह सब किया तो गया कहनेके लिये शान्ति और व्यवस्थाके नामपर परन्तु दरअसल एक झूठी प्रतिष्ठाकी दोषमय शासन-प्रणालीकी और अस्वाभाविक विचारकी जड़ मजबूत करने के लिये। हाँ, यह सब सच है कि बिहारके तत्कालीन छोटे-लाट तीव्र विरोधका सामना करते हुये भी न्याय कर पाये थे। परन्तु वास्तवमें वह एक अपवाद ही था और उसके कारण मैं भी अपवादात्मक ही था और इसलिये मुझे मालूम होता है कि यह मोपला-उत्पात तो अपने पापोंके बोझके कारण रसातलको जानेवाली इस शासन प्रणालीके लिये एक खास आशीर्वाद ही है।

यह मोपला उपद्रव हिन्दू और मुसलमानोंके जांचके लिये एक कसौटी है। क्या इस आघातको सहते हुये हिन्दुओंकी मित्रता टिक सकेगी? और क्या मुसलमान लोग मोपलाओंकी करतूतोंको अपने दिलके भीतरीसे भीतरी हिस्सेमें भी पसन्द कर सकते हैं? केवल समय ही असली बातको बता सकता है। किसी न टाली जा सकनेवाली बातको विवश होकर तात्विक रीतिसे या जबानी कबूल करना हिन्दुओंकी मित्रताका लक्षण नहीं है। हिन्दुओंके दिलमें यह विश्वास और साहस होना चाहिये कि हम ऐसे धर्मान्धतासे उत्पन्न होनेवाले उत्पातोंके होते हुये भी अपने धर्मकी रक्षा कर सकते हैं। मोपलाओंकी इस उन्मत्ततापर कोरी जबानी नापसंदगी प्रगट करना ही मुसलमानोंकी मित्रताका लक्षण नहीं है। मोपलाओंने जो लोगोंको जबरदस्ती धर्म-भ्रष्ट कर दिया है और लूटमारकी है उससे स्वभावतः ही मुसलमानोंको शर्म आनी चाहिये। उनका सिर नीचा होजाना चाहिये और उन्हें इस तरह चुपचाप और कारगर ढंगसे काम करना चाहिये कि जिससे आयन्दा उनकेसे कट्टरसे कट्टर लोग भी ऐसा न कर सकें। मेरा तो यह मत है कि मोपलाओंकी उन्मत्ततापर हिन्दू समाज शान्त है और सुसंस्कृत मुसलमानोंको इस बातपर सच्चे दिलसे अफसोस हुआ है कि मोपलाओंने उनके धर्मकी आज्ञाओंका उल्लंघन किया है।

मोपला उत्पातसे एक और शिक्षा मिलती है। वह यह है कि प्रत्येक व्यक्तिको आत्म-रक्षा करनेकी विद्या सिखाई जानी चाहिये। इसके लिये हमारे शरीरको प्रतिकार करनेकी शिक्षा देनेके बजाय हमारे मनको ही अधिक तैयार करने की जरूरत है। अबतक हमारे मनको अपनेको दीन समझनेकी शिक्षा मिलती रही है। बहादुरी शरीरका गुण नहीं। मैंने ऐसे कायरोंको देखा है, जो बड़े मोटे-ताजे थे और ऐसे अद्वितीय साहसी लोगोंको भी देखा है जिनका बदन बिल्कुल दुबला-पतला था। मैंने बड़े लम्बे-चौड़े, मोटे-ताजे और हृट्टे-कट्टे अफ्रीकाके 'जुलू' लोगोंको एक अंग्रेज लड़केके सामने गऊ बन जाते और जहाँ अपनी ओर तमंचेका मुँह देखा कि दुम दबाते हुये देखा है। मैंने एमिली हाबहास नामकी एक बोअर-रमणीको देखा है, जिसका शरीर लकवेसे बेकार होगया है। लेकिन उसमें हद दर्जेका साहस था। उस अकेली कुलीन स्त्रीने वीर बोअर सेना-नायकोंके और उसी तरह बोअर स्त्रियोंके गिरते हुये जोशको जीवित रखा है। हमें कमजोरसे कमजोर आदमियोंको भी संकटोंका सामना करने और अपने पराक्रमका परिचय देने की विद्या सीखानी चाहिये। अधिक निन्दनीय बात कौनसी थी? नादान मोपला भाइयोंकी धर्मान्धता या उन हिन्दू भाइयोंकी कायरता जिन्होंने बकरी बन कर कलमा पढ़ लिया, चुटिया कटवाली और पैजामा पहन लिया? कहीं मेरे कथनका उल्टा अर्थ न लगा लीजियेगा। मैं तो हिन्दू और मुसलमान दोनोंमें यह शान्त साहस पैदा करना चाहता हूँ कि बिना दूसरेकी जानपर हाथ उठाये खुद ही अपनी जान देने के लिये तैयार रहें। अगर किसीमें इतना साहस नहीं है तो उस हालतमें मैं यह चाहता हूँ कि कायरकी तरह दुम दबाकर भागनेकी अपेक्षा, वह मरने व मारनेकी विद्याको प्राप्त करे।

क्योंकि इस तरह कायरता दिखानेवाला आदमी भाग जाने पर भी मानसिक हिंसा करता है। उसके भाग जानेका कारण यही है कि मारनेका कार्य करते हुये उसमें मरनेका साहस नहीं था।

इस मोपला-उत्पातसे हमें एक और भी सबक मिलता है। हम अपने देशकी किसी भी जातिको गहरे अन्धकारमें न रहने दें। और न हम अपनेको उसके पंजेमें फँसने दें। हमारे अंग्रेज 'भाग्य-विधाताओं'का तो मोपलाके सभ्य नागरिक बननेमें, सहिष्णुता धारण करनेमें और इस्लामके रहस्य समझनेमें कोई हित नहीं था। परन्तु हमने भी इस अज्ञान देश-भाइयोंकी ओर सदियोंसे ध्यान नहीं दिया। हमारे हृदयमें अभी इतना प्रेम जाग्रत नहीं हुआ है कि जिससे हम कहीं भी किसीको दयालुताकी आवश्यकताके विषयमें अज्ञान या बिना किसी अपराधके अन्न-वस्त्रहीन न देखें। अगर हम समयपर ही न जगे तो हमे तमाम छोटी-छोटी दबी हुई जातियोंमें ऐसाही दुःखान्त नाटक दिखाई देगा। इस वर्तमान जाग्रतिका असर तमाम जातियोंपर हो रहा है। अगर हम अपने कियेका प्रायश्चित न करें और उनके साथ पूरा न्याय न करें तो ये 'अछूत' और नोम-हबसी कहलानेवाली जातियाँ अपने प्रति किये गये हमारे अत्याचारोंकी गाथा सारे संसारको सुनावेंगी।

यंग-इंडिया
२० अक्तूबर, १६२१

हिन्दू और मोपला

मौलाना हसरत मोहानी हमलोगोंमें बड़े जीवटके आदमी हैं। वे जितने धीर हैं उतने ही दृढ़ भी हैं और स्पष्टवादी भी वे उसी तरह हैं। बृटिश सरकारके प्रति तथा अंग्रेजोंके प्रति उनके हृदयमें घृणाके जो भाव भरे हैं, उसके सामने उन्हें मोपलोंके आचरणमें कोई दोष दिखाई नहीं देता। मौलाना साहबका कहना है कि युद्धके समय जो कुछ कहा जाय वह सब ठीक और उचित है। उनका पक्का विश्वास है कि मोपलोंने धर्मके लिये ही संग्राम किया है। इसलिये मोपलोंके ऊपर किसी तरहका दोषारोपण नहीं किया जा सकता। धर्म और सदाचारका यह परिच्छिन्न रूप है। पर मौलाना हसरत मोहानीकी दृष्टिमें धर्मके नामपर अधर्माचरण भी धार्मिक है। जहाँतक मैं जानता हूं इस्लाम-धर्म इस तरहकी बातोंका प्रतिपादक नहीं है। इस सम्बन्धमें मैंने अनेक मुसलमानोंसे बातचीत भी की है। वे भी मौलाना साहबके मतसे सहमत नहीं हैं।

मैं अपने मलाबारके साथियोंसे यही कहूंगा कि वे मौलानाकी बात न सुनें। यद्यपि धर्मके बारेमें उनका इस तरहका विचित्र मत है तथापि मैं जानता हूँ

कि हिन्दू-मुस्लिम एकता और राष्ट्रीयताका उनसे बढ़कर कट्टर समर्थक दूसरा नहीं है। उनका हृदय उनकी बुद्धिसे कहीं उत्तम है पर इस समय वह गलत मार्गपर जा रहा है।

मलाबारवालोंकी यह धारणा भ्रान्त है कि मोपलोंके अत्याचारको निन्दा भारतके अन्य मुसलमानोंने नहीं की है और उलटा उसका प्रतिपादन किया है। इस्लाम-धर्मका कहना है कि संग्राममें भी औरतें, बच्चे और बूढ़ोंकी रक्षा करो। उन्हें किसी तरहका संकट सहना न पड़े। इस्लाम-धर्म प्रतिकूल अवस्थामें जेहादका समर्थन नहीं करता। इस्लाम-धर्मकी जो जानकारी मुझे है उसके अनुसार तो मैं यहीं कह सकता हूँ कि अपनी प्रेरणासे मोपले जेहाद कभी भी नहीं कर सकते थे। मौलाना अब्दुल बारीने मोपलोंके अत्याचारोंकी कड़ी निन्दा की है।

पर यदि मुसलमान उन अत्याचारोंकी निन्दा न भी करें तो? हिन्दुओंने सौदेके तौरपर तो मुसलमानोंके साथ मैत्री की नहीं है? मैत्री शब्दसे ही प्रगट होता है कि इस तरहकी कोई बात नहीं है। यदि हमलोगोंने राष्ट्रीय आदतें प्राप्त की होती तो मोपला भी हिन्दू ही हो सकते हैं। मोपलोंकी कट्टरतापर हिन्दुओंको उतना विचार नहीं करना चाहिये जब कि वे अपनी कट्टरतापर उतना विचार नहीं करते। यदि मोपलोंके बजाय आज हिन्दुओंने हिन्दुओंको लूटा होता तो क्या उनके ऊपर मुकदमा चलाया जाता? इस तरहके घटनाओंके प्रतिकारके ढूंढ़ निकालने की जितनी जिम्मेदारी हिन्दुओंके ऊपर है उतनी ही मुसलमानोंके ऊपर है। यदि कोई मुसलमान हिन्दूके ऊपर या हिन्दू मुसलमानके ऊपर अत्याचार करता तो वह अत्याचार एक भारतीय द्वारा दूसरे भारतीयपर समझना चाहिये और उसकी जिम्मेदारी हम सबको ओढ़नी चाहिये तथा उस बुराईको दूर करने के लिये यत्न करना चाहिये। हिन्दू-मुस्लिम एकताका यही अभिप्राय है। जिस राष्ट्रीयतामें यह भाव नहीं वह राष्ट्रीयता किसी कामकी नहीं। राष्ट्रीयता-क्षेत्र जातीयताके क्षेत्रसे विस्तृत है। इस अभिप्रायसे हमलोग प्रथम भारतीय हैं और पीछे हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई हैं।

इसलिये मोपलोंके अत्याचारोंके विषयमें मौलाना हसरत मोहनीने जो मत प्रगट किया उसके लिये खेद प्रगट करते हुये भी हमें समस्त मुसलमानोंके ऊपर दोषारोपण नहीं करना चाहिये और न मौलानाको मुसलमानोंकी हैसियतसे दोष देना चाहिये। हमें यह भाव रखकर दुःख प्रगट करना चाहिये कि हमारा एक हिन्दुस्तानी भाई यह नहीं देखता कि हमारा दूसरा हिन्दुस्तानी भाई अत्याचार कर रहा है। अगर हमलोग इस तरहकी घटनाओंका सम्बन्ध किसी जातिसे रखेंगे तो हममें एकता नहीं स्थापित हो सकती।

हमारे विरोधी कह सकते हैं कि ये सब वाहियात बातें हैं क्योंकि इनमें वास्तविकता नहीं है। ये केवल ख्याली हैं। पर मेरा कहना है कि जबतक सिद्धान्तोंके

अनुकूल अवस्था न बनालेंगे और जबतक सिद्धान्तोंको वर्तमान अवस्थाके उपयुक्त नहीं बनालेंगे हममें दृढ़ता नहीं आसकती।

भारतीय हैसियतसे हिन्दू भारतीय मोपलोंकी बुराई दूर करनेकी चेष्टा करें तो इसमें असम्भव बात क्या है? यदि हिन्दुओंसे कहा जाय कि आप साहस ग्रहण कीजिये, दृढ़ बनिये और मरते दमतक जबर्दस्ती किसी मतको स्वीकार न कीजिये तो इसमें हानि क्या है? मुझे यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि अनेक हिन्दू ऐसे थे जिन्होंने मोपलोंकी जबरदस्तीके बनिस्बत प्राण देना ही उचित समझा। यदि ये लोग बिना किसी राग या द्वेषके मरे हैं तो उन्होंने सच्चे हिन्दूकी हैसियतसे प्राण दिया है। क्योंकि उन्होंनेको अपनेको उस कुलके सच्चे भारतीय अथवा सच्चा मनुष्य होनेका परिचय दिया है। यदि इनके प्राण लेनेवाले मुसलमान न होकर हिन्दू ही होते तो भी वे इसी तरह प्राण दे दिये होते। यदि हिन्दू-मुस्लिम एकता परस्परके बदलौन या सौदेपर ही ठहर सकती है तो वह वाहियात चीज है। क्या पति-पत्नीका सम्बन्ध केवल दोनोंके सद्भावपर ही निर्भर करता है? क्या पति खराब है या पत्नी बुरी है इसलिये दोनोंका सम्बन्ध नहीं रह सकता। यदि पत्नी-पति वैवाहिक सम्बन्धोंको इसी तरह बदलौन समझने लगेंगे तो विवाहकी कोई मर्यादा नहीं रह जायगी। यदि पत्नीका आचरण उसे पतनकी ओर ले जाता है तो पतिका कर्तव्य है कि वह उसे और नजदीक घसीट ले। उस समय पतिका स्नेह दूना हो जाना चाहिये। इसलिये जिस समय मुसलमान या मोपलोंसे विपत्तिकी अधिक सम्भावना हो या विपत्ति आ चुकी हो उस समय हिन्दूको उनके प्रति और भी घनिष्टता दिखलानी चाहिये। यदि मेल सच्चा है तो कड़े-से कड़े आघातपर भी उसे नहीं टूटना चाहिये। यह बन्धन अटूट होना चाहिये।

जो कुछ मैंने ऊपर कहा है सब स्वार्थसे भरा है। क्या एक हिन्दू अपने शरीरसे अपने धर्म और देशकी अधिक परवाह करता है। यदि इसका उत्तर 'हाँ' है तो उस हिन्दूको उस मूर्ख तथा अनजानकार मुसलमानसे कभी नहीं लड़ना चाहिये, जिसे न देशका ख्याल है न धर्मका। ये सब बातें ठीक उस सौतकी सी हैं जिसने लड़केके दो टुकड़े करके साराका सारा अपनी सौतको दे दिया।

थोड़ी देरके लिये मान लीजिये—यद्यपि यह सब सच नहीं है—कि मोपलोंके अत्याचारोंका सभी मुसलमान समर्थन करते हैं तो क्या इससे हिन्दू-मुस्लिम एकता टूट जायगी? यदि यह एकता इस तरह टूट गई तो क्या इससे हिन्दुओंकी अवस्था किसी भी तरह अच्छी हो सकती है या सुधर सकती है। क्या वे लोग अपने शत्रु मोपलों और मुसलमानोंसे बदला लेनेके लिये विदेशी शक्तियोंकी सहायता लेंगे और इस तरह उनका नाश कराकर अपनी दासताकी बेड़ी और भी मजबूत करावेंगे?

असहयोगका सिद्धान्त सर्वव्यापी है। जिस तरह यह एक वंशके लिये पूरी

तरहसे लागू है। शक्ति और आत्मसंयम प्राप्त करनेका यह एक तरीका है। हिन्दू और मुसलमानोंको आपसमें मिल जानेके पहले संसारभरके मुकाबिलेमें अकेले खड़ा होनेकी शक्ति और योग्यता प्राप्त कर लेनी चाहिये। यह मेल कमजोर शक्तियोंके बीच नहीं होना चाहिये। बल्कि उन लोगोंके बीच होना चाहिये जिन्हें अपनी शक्तिपर भरोसा है। मुसलमानों या हिन्दुओंकी यह दुर्बलता होगी यदि वे उन स्थानोंमें जहाँ उनकी संख्या नितान्त कम है—अपने धर्मकी रक्षाके लिये हिन्दू या मुसलमानोंपर भरोसा करेंगे। असहयोग आत्म-विकासका सिद्धान्त है।

पर यदि बलिष्ठ शक्ति पशुवत आचरण करे और दुर्बलोंको सतावे तो यह सिद्धान्त किसी भी तरह उपयोगी नहीं हो सकता। क्योंकि उस अवस्थामें जो उनसे बलवान होगा वह उन्हें भी कुचल देगा। इसलिये यदि मुसलमान धार्मिक जीव बनकर रहना चाहते हैं तो उन्हें अपने भीतर शक्तिका संचय करना चाहिये। उन्हें शक्तिवान साथ ही नम्र होना चाहिये। हिन्दुओंको उचित है कि वे मोपलोंकी इस क्रूरताका पता लगावें। उस समय उन्हें विदित होगा कि वे निर्दोष नहीं हैं। आज तक उन्होंने मोपलोंकी फिकर नहीं की थी। आजतक या तो वे कृषक उन्हें दास समझते रहे या उनसे भय खाते रहे। उन्होंने मित्र अथवा पड़ोसीकी तरह उन्हें नहीं देखा और न उनका सुधार किया और न उनकी मर्यादा रखी है। इस समय मोपलों या मुसलमानोंको दोष देना उचित नहीं है। यह मैं स्वीकार करता हूँ कि प्रत्येक हिन्दू मुसलमानोंकी सहायता और सहानुभूतिकी आशा करता है फिर भी उसे अपने अन्दर शक्तिका समुच्चय कर अपने आप अपनी सहायता करनी चाहिये। यदि मुसलमान खिलाफतकी रक्षाके लिये हिन्दुओंकी मददका भरोसा करें तो इस्लामके लिये इससे दुःखद बात और क्या हो सकती है। हिन्दुओंसे मुसलमानोंको इसलिये सहायता मिल रही है क्योंकि हिन्दुओंका यह धर्म है। मुसलमान बिना किसी बाधाके हिन्दुओंकी सहायता स्वीकार करें पर उनका अन्तिम विश्वास ईश्वरके सहारे ही रहना चाहिये। क्योंकि निःसहायोंका वही एक मात्र सहायक है। मालाबारके हिन्दुओंको भी यही भाव ग्रहण करना चाहिये।

यंग-इंडिया
२६ जनवरी, १९२२

मौलाना मुहम्मद अलीपर इल्जाम

एक सज्जन लिखते हैं कि मौलाना मुहम्मद अलीने अपने एक भाषणमें कहा है कि गान्धीजी एक महा-अधम मुसलमानसे भी हीन हैं। गुजराती अखबारोंमें इस किस्माके लेख आ रहे हैं। वे साहब लिखते हैं कि मौलाना साहब ऐसा कभी नहीं कह सकते। तथापि 'नवजीवन'के पाठकोंको यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिये कि बात दरअसल क्या है, जिससे गलतफहमी दूर हो जाय।

मुझे बड़े अफसोसके साथ लिखना पड़ता है कि महज गुजरातीमें ही नहीं बल्कि अंग्रेजी अखबारोंमें भी यह बात फैली है और उसके विषयमें चर्चा भी खूब हुई है।

भगवान जाने हुआ क्या, पर हिन्दू-मुसलमानके दरम्यान आजकल गलत-फहमीकी हवा बहुत बढ़ रही है। एक दूसरेके अन्दर अविश्वास फैल गया है। मैं जानता हूँ कि इसके कुछ कारण हैं। उनकी चर्चा करनेकी यहाँ जरूरत नहीं मालूम देती। उत्तर-भारतमें हिन्दी-उर्दू अखबारोंने तो हद कर दी है। डा० अनसारी लिखते हैं कि मानों ऐसा मालूम होता है कि दूसरोंपर इल्जाम लगाना, झूठी अफवाहें फैलाना, एक दूसरेके मजहबको बदनाम करना और इस प्रकार एक दूसरेको बदनाम करना ही उन अखबारोंने अपना कर्त्तव्य ठान लिया है और जान पड़ता है कि यही उनके रोजगार बढ़ानेका जरिया हो गया है। इस बीमारीको किस तरह रोकें, यह समस्या विकट हो गई है। उसको हल करना मेरी समझमें धारा-सभा-प्रवेशकी बनिस्बत ज्यादह जरूरी और मार्केकी है। मुझे निश्चय है कि इसको हल करनेपर ही राज-तंत्र संचालनकी हमारी क्षमता अवलंबित है। यदि हम देशके सम्मुख उपस्थित प्रश्नोंको हल कर सकें तो आज ही स्वराज्य हमारे हाथोंमें रखा है। जबतक हम इन गुत्थियोंको न सुलझा सकेंगे, तबतक स्वराज्य असंभव है। इन उलझनोंको दूर करनेमें धारासभा असमर्थ हैं।

पर इस लेखमें मैं इन कठिनाइयोंकी छान-बीन करना नहीं चाहता। यहाँ तो मैं मौलाना साहबपर किये गये एतराजकी जांच करना चाहता हूँ।

मौलाना साहबके मूल कारणपर—लखनऊकी एक सभामें उनसे एक सवाल पूछा गया। उसका जवाब उन्होंने दिया। 'महात्मा गान्धीके धर्म-सिद्धान्तकी बनिस्बत एक व्यभिचारी मुसलमानके धर्म-सिद्धान्तको मैं ज्यादा अच्छा समझता हूँ। इसमें मौलाना साहबने व्यभिचारी मुसलमान और महात्मा गान्धीजीकी तुलना नहीं की, बल्कि दोनोंके धार्मिक मतकी तुलना की है। अब जरा यह भी देखें कि यह तुलना उन्हें क्यों करनी पड़ी ? मौलाना तो गान्धी-परस्त या गान्धी-पूजक हो गये हैं। गान्धी-परस्त होना यानी गान्धीको मूर्ति मान लेना अर्थात् यह मान लेना कि

दुनियांमें उनके ऐसा कोई नहीं। ऐसा करना मानों गान्धीका धर्म कबूल करना है। यह है मौलाना साहबपरका इल्जाम। कितने ही मुसलमानोंके इस इल्जामका जवाब मौलानाने पूर्वोक्त वाक्योंमें दिया है। तो क्या इसका यह अर्थ हुआ कि मुसलमानोंको संतुष्ट करते हुए उन्होंने हिन्दुओंका दिल दुखाया ? पूर्वोक्त बचन यदि मौलाना किसी दूसरी जगह कहे होते तो उसपर बिल्कुल टीका-टिप्पणी नहीं होती। हिन्दू अखबारोंने उनके भाषणका बिल्कुल उलटा अर्थ किया। उन्होंने लिखा कि मौलाना व्यभिचारी मुसलमानको 'महात्मा' गान्धीसे अच्छा समझते हैं। हमने देखा कि मौलानाने ऐसी बात नहीं कही। इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्दके नाम पत्र भेजे जिसमें महात्मा गान्धीको सर्वोत्तम मनुष्य माना है।

पर हाँ, उन्होंने 'महात्मा'के धर्म-सिद्धान्तको व्यभिचारी मुसलमानसे कनिष्ठ माना है, उसमें विरोध जरा भी नहीं, उलटा लगभग सारा संसार सिद्धान्त और सिद्धान्तीमें यह भेद मान रहा है।

मेरे कितने ही ईसाई मित्र मुझे अच्छा आदमी मानते हैं। फिर भी इसलिये कि वे अपने धर्मको मेरे धर्मसे श्रेष्ठ मानते हैं हमेशा ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि मैं ईसाई हो जाऊँ। दक्षिण अफ्रीकाके एक ऐसे मित्रका पत्र दो-तीन सप्ताह पहले मिला, जिसमें वे लिखते हैं—'आपके छुटकारेका समाचार जानकर मुझे बड़ी खुशी हुई। आपके लिये मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको सुबुद्धि दे कि जिससे आप ईसामसीहको और मुक्ति देनेकी उसकी शक्तिको मानने लगें। यदि आप यह कर सकें तो आपके काम तुरंत फलीभूत हो जायें।' इस तरह अनेक ईसाई मित्र चाहते हैं कि मैं ईसाई हो जाऊँ।

अच्छा, अधिकांश हिन्दू भी क्या करते हैं ? क्या अच्छेसे अच्छे ईसाई या मुसलमान-धर्म-सिद्धान्तसे वे अपने धर्म-सिद्धान्तको सर्वोत्तम नहीं मानते ? यदि वे ऐसा न मानते हों, तो वे क्या अपने कन्याकी शादी अच्छेसे अच्छे मुसलमान या ईसाईसे करेंगे ? यही क्यों, हिन्दुओंमें भी किसी अच्छेसे अच्छे शख्सको नहीं, बल्कि अपने सम्प्रदायके या जातिके सर्वोत्तम मनुष्यको देंगे। इससे क्या सूचित होता है ? यही कि पर-धर्मसे स्वधर्मको वे श्रेष्ठ मानते हैं।

मेरी नाकिस रायमें मौलानाने अपनी राय जाहिर करके अपने दिलकी सफाई और धर्म-श्रद्धाको सिद्ध कर दिया है। मेरी तो उन्होंने दूनी इज्जत की। एक तो मित्रके रूपमें दूसरा मनुष्यके रूपमें। मित्रके रूपमें मेरी इज्जत इस तरह की कि उन्होंने मेरे सम्बन्धमें अपनी यह धारणा करली कि वे मेरे सम्बन्धमें जो चाहें कहें, पर मैं उसमें अपना अपमान न मानूँगा और मैं उनके भावको गलत न मानूँगा। मनुष्यके रूपमें मेरी इज्जत इस तरह की कि हम दोनोंके धर्म भिन्न होते हुए भी, अपने धर्मको मेरे धर्मसे श्रेष्ठ मानते हुए भी मुझे सर्वोत्कृष्ट मनुष्य मानते हैं। यह कितनी श्रद्धा ! यदि संसार मुझे अच्छा मानता है तो उसके इस वहमको

मैं समझ सकता हूँ। परन्तु मेरे निकट रहनेवाले मेरे मित्र, मेरे अनेक छिद्रोंको देखते हुये मुझे सर्वोत्तम मानें, यह कितनी अजीब बात है ?

किसी भी मनुष्यको सर्वोत्कृष्ट मानना, मुझे तो बड़ा खतरनाक मालूम होता है। उसके दिलको ईश्वरके सिवा कौन बड़ा जान सकता है ? उस मनुष्यके बनिस्बत जिसके दिलकी गन्दगी प्रकट होती रहती है उस मनुष्यका मिलान होना चाहिये जो अपनी गन्दगीको छिपा कर रखता है। पहले मनुष्यको तो मुक्ति मिलनेकी संभावना है, क्योंकि उसकी गन्दगी प्रकट हो गई, अर्थात् उसके निकलनेका रास्ता खुल गया। दूसरे मनुष्यकी जिसने अपने दिलकी गन्दगीको मुहरबन्द करके रखा है, गन्दगी अन्दरकी अन्दर ही पड़ी रहती है और वह जहरीले जन्तुकी तरह उसे नोच खायगी। उसका छुटकारा इस जन्ममें असंभव है और इसीसे शास्त्रोंने सत्यको सर्वोपरि माना है। इसीसे शास्त्रोंने पापको छिपाना मना किया है। यदि हम किसी भी मनुष्यको सर्वोपरि मान सकते हों तो यह निश्चय उनकी मृत्युके बाद ही किया जा सकता है।

मैं खुद तो अपना विश्वास नहीं करता, दूसरोंका विश्वास करना मुझे बहुत आसान मालूम होता है। ऐसा करते हुये यदि मुझे धोखा होगा, तो इसमें मेरी कुछ आर्थिक हानि हो सकती है। दुनियां मुझे सीधा भोला कह सकती है, पर यदि मैं अपना विश्वास करके गाफिल रहूँ तो मेरा नाश हो जाय। पाठकों ! इस मौकेपर मैं यह भी कह देता हूँ कि एक बार मैं अपना विश्वास करके ईश्वर-कृपासे डूबते-डूबते बचा हूँ। दूसरी बार अपने एक व्यभिचारी मित्रने मुझे बचाया। वे तो खुद बचनेकी हालतमें नहीं थे, परन्तु वे मुझे निर्मल समझते थे। अतएव यह समझकर कि इसे तो इस पापमें हरगिज नहीं पड़ना चाहिये उन्होंने मुझे मोह-निद्रासे जाग्रत किया। हम एक दूसरेकी चौकसी करें तो खुद हमारी भी रक्षा हो और संसारको भी अपने दुखसे बचा सकें। इसीसे स्वराज्यकी सच्ची व्याख्या यह है "स्वराज्य उस राज्यको कहते हैं जो खुद अपनेपर किया जाता है।" 'आप भला तो जग भला' इस कहावतमें बहुतेरा अर्थ भरा हुआ है।

अपने विषयको छोड़कर मैं गूढ़ चर्चामें नहीं चला गया था। बल्कि यह बात इसी विषयसे सम्बन्ध रखती है। मित्र लोग जब मुझे सर्वोत्कृष्ट मानते हैं तब मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यदि मैं खुद ऐसा मानने लगूँ तो मेरा पतन हुये बिना न रहे। क्योंकि मुझे तो अभी बहुत ऊँचा चढ़ना बाकी है। मेरे लोभकी सीमा नहीं। मुझे अभी असंख्य शत्रुओंको जीतना है। ज्यों-ज्यों मैं गहरा विचार करता हूँ त्यों-त्यों मुझे अपनी त्रुटियाँ दिखाई देती हैं। जब यह सोचता हूँ तब मेरे मनमें यह विचार उठता है कि सचमुच सर्वोत्कृष्ट मनुष्य कैसा होगा ? यह विचार करते हुए मेरे मनमें मोक्षाकी और उसके द्वारा मिलनेवाली अति आनन्दकी कुछ-कुछ कल्पना होती है कि ईश्वर-तत्व सिद्ध हो सकता है ?

अब पाठक शायद यह समझ सकें कि मौलाना साहबने मुझे सर्वोत्कृष्ट मानकर मेरी कितनी इज्जत की है। उसके इस कथनका अर्थ क्या है, यह बात पाठकको उनके पत्र पढ़नेसे अधिक अच्छी तरह मालूम होगी।

स्वामीजीने मौलानाके इस खतका स्वागत किया और उनके दिलकी सफाई-पर उन्हें धन्यवाद दिया। मौलानाको हिन्दुओंका मित्र माना और जिन लोगोंने मौलानापर इल्जाम लगाकर महासभासे इस्तीफा देनेका नोटिस दिया था उन्हें नोटिस वापस लेनेकी सिफारिश की। परन्तु साथ ही उन्हें यह भी बताया कि मेरे धर्मके अनुसार तो अकेले सिद्धान्तकी कोई कीमत नहीं। मनुष्यके शील और आचार-पर उसकी कीमत आंकी जाती है। इसका जवाब देकर मौलानाने स्वामीजीके लेखकी शंका भी दूर की। मौलाना यह बात नहीं मानते कि सिद्धान्तीको अपने सिद्धान्तके अनुसार आचरण करनेकी जरूरत नहीं। उन्होंने तो सिर्फ दो कायदोंकी तुलनाकी और बताया कि उसमें ऊंचा कौन है। अच्छेसे अच्छा कानून—हाँ, यदि उसके अनुसार न चलें तो उसे कुछ फल नहीं मिलता—यह बात उन्होंने अपने दूसरे पत्रमें प्रकट की है।

इसलिये मौलाना मुहम्मद अलीके कथनका तात्पर्य सिर्फ इतना ही निकलता है कि सबको अपना-अपना धर्म अच्छा मालूम होता है। इस वचनका विरोध कौन हिन्दू कर सकता है? यह राईका पर्वत किस प्रकार हुआ और इसके न होने देनेका उपाय क्या है, इसका विचार फिर कभी करेंगे।

नव-जीवन
१३ अप्रैल, १९२४

हिन्दू-मुसलमान

हिन्दू-मुसलमानोंमें जो तनाजा पड़ गया है उसके सम्बन्धमें मैं अपने विचारोंको प्रगट करनेके लिये तैयार न था और न हूँ। मेरे विचार तो निश्चित हो चुके हैं; परन्तु मित्रोंके सुभीतेके लिये मैंने उन्हें प्रकट नहीं किया है। वे अभी विचार कर रहे हैं। इसीसे ढिलाई हो रही है। परन्तु बीसनगर (गुजरात) में जो घटना घटी है उसके संबंधमें मैं बिल्कुल चुप नहीं रह सकता। यदि मुझे पत्र-संचालन करना है तो मौका पेश आनेपर मुझे अपने विचार अवश्य प्रकट करने चाहिये।

बीसनगर जाकर अब्बास तैयबजी साहब और श्री महादेव देसाईने समझौता करानेका प्रयत्न किया और वह किस प्रकार बेकार हुआ उसका हृदय-भेदी चित्र श्री महादेव देसाईने मुझे भेजा है। उससे मालूम होता है कि हिन्दुओंने रामनवमीके दिन रामजीका जुलूस निकाला। बाजा बजते जा रहे थे। वह जब मसजिदके नजदीक आया तब नंगी तलवारवाले मुसलमान मुकाबिला करनेके लिये तैयार नजर आये। जुलूस कोई २४ घन्टे बाद पुलिसके रखवालीमें वहाँसे गुजरने लगा।

तफसीलकी बातें मैं छोड़े देता हूँ। हिन्दू अपना बाजा बजानेका हक नहीं छोड़ते थे और मुसलमान बाजा बजाने देना नहीं चाहते थे। फिर भी ज्यों-त्यों करके हुल्लड़ तो रुका, पर इसका श्रेय उनमेंसे किसी भी पक्षको नहीं मिल सकता। श्रेयको पात्र तो अकेले पुलिस है।

अब फिर ऐसी खबर मिली है कि कितने ही पशुओंको तलवारसे किसीने लुक-छिपकर जखमी कर दिया है और मालूम हुआ है कि एक पशु तो मर भी गया है। हिन्दुओंने मुसलमानोंके साथ अपना सम्बन्ध तोड़ दिया है।

जुलूसकी घटना हो चुकनेके बाद बीसनगरके एक प्रख्यात सज्जन श्री महा-सुखलाल चुन्नीलालने एक तेज व्याख्यान दिया। उसमें उन्होंने सफेद टोपीवालोंको संबोधन करके कहा कि आप जो भी यत्न कीजिये, पर हिन्दू-मुस्लिम-एकता नहीं हो सकती। श्री महासुखलालने हिन्दुओंको असहयोगकी सलाह दी है।

बीसनगरके हिन्दुओंकी संख्या मुसलमानोंसे बहुत ज्यादह है। फिर भी वे मुसलमानोंसे बहुत डरते हैं। मुसलमान अपनी तलवारको म्यानमें रखना नहीं चाहते।

मैं मानता हूँ कि ऐसा कोई अचल धार्मिक नियम नहीं है कि धार्मिक जुलूसके बाजे जहाँ एक दफा बजने शुरु हुये कि वे लगातार बजते हुए ही रहें। मैं यह भी मानता हूँ कि मुसलमान भाइयोंके भावोंको आघात न पहुँचे। इसलिये कुछ खास मौकोंपर बाजा बजाना बन्द कर देना हिन्दुओंका फर्ज है। पर मैं यह भी उतनी ही दृढ़ताके साथ मानता हूँ कि मुसलमानोंकी तलवारसे डरकर बाजे बन्द करना

अधर्म है। जिस प्रकार हिन्दू-मुसलमानोंको दबाकर उन्हें गो-वध करनेसे नहीं रोक सकते उसी प्रकार मुसलमान भी जब्रन हिन्दुओंके बाजे बन्द नहीं कर सकते। यदि दोनोंकी मित्रता प्यारी हो तो दोनों अपनी-अपनी गरजसे गो-वध और बाजे बजाना बंद कर दें। मैं यह भी मानता हूँ कि यदि एक अपना फर्ज न अदा करे तो दूसरेको अपने फर्जसे न चूकना चाहिये। पर दोमेंसे एक भी तहस-नहस हो जानेपर भी तलवारके सामने सिर झुकावें, नहीं झुका सकते, न झुकाना चाहिये।

मौका पड़नेपर शान्त असहयोग करना हर शख्सका हक है। यह नहीं कि सरकारके साथ असहयोग हो सकता है, पर आपसमें नहीं। यह भी नहीं कि हिन्दू-मुसलमानके ही साथ करें और एक हिन्दू दूसरे हिन्दूके साथ या एक मुसलमान दूसरे मुसलमानके साथ न कर सके। सिद्धान्तकी बातमें तो संभव है कि बाप-बेटेमें भी असहयोग करना पड़े।

पर सवाल यह है कि ऐसा मौका बीसनगरके हिन्दुओंके सामने आ खड़ा हुआ है या नहीं? मेरी नाकिस रायके मुताबिक ऐसा मौका खड़ा नहीं हुआ है। गूढ़ और पेचीदा सवालका फैसला हर गाँवके हिन्दू-मुसलमान खुद-मुख्तार होकर नहीं कर सकते। जीता पक्ष भले ही यह मानें कि इसका नतीजा अच्छा हुआ। परन्तु इसका स्थायी परिणाम बुरा ही होगा। फिर यह भी माननेका कोई कारण नहीं कि एक पक्षकी जीत होनेसे उसके सहधर्मियोंको लाभ होगा। बीसनगरमें हिन्दू संख्या-बल, राज-बल अथवा असहयोग-बलसे मुसलमानोंको झुका लें तो इसे क्या हुआ? दूसरे गाँवमें जहाँ मुसलमानोंके लिये अनुकूल अवसर होगा वहाँ वे हिन्दुओंको दबावेंगे—क्या यह बात बीसनगरके हिन्दुओंको अच्छी लगेगी? बीसनगरके हिन्दुओंका रास्ता आरम्भमें चाहे भले ही मीठा हो, पर परिणाममें वह जहरीला है। अतएव गीता-मतके अनुसार त्याज्य है।

मुझे याद दिलानेकी जरूरत नहीं है कि बीसनगरके हिन्दुओंको मैं यह नहीं कहता कि दबकर बाजा बजानेका हक छोड़ दें। मैं यह भी नहीं कहता कि वे कभी असहयोग न करें। किन्तु यह राय जरूर नम्रताके साथ देता हूँ जो ब्योरा मुझे मिला है वह यदि ठीक हो तो हिन्दुओंके इस असहयोगमें जल्दीबाजी हो रही है। इसके पहले जो-जो काम उन्हें करना चाहिये वे कर नहीं पाये हैं। यदि उनमें समझदारी हो तो राज-सत्ताकी सहायता कमसे कम लें। सुनता हूँ कि बीस नगरमें सत्ताधिकारियोंने 'अपना काम शान्ति और चतुराईके साथ निष्पक्ष हो कर' किया। तटस्थ हिन्दुओंके द्वारा मिले समाचारोंके आधारपर यह लिख रहा हूँ। तटस्थ मुसलमानके दिलपर क्या असर हो रहा है यह मैं नहीं जानता।

परन्तु हम तो राज-सत्ताकी सहायता कमसे कम लेना चाहते हैं। हम चार सालसे इस सिद्धान्तकी पुष्टि कर रहे हैं। अतएव हमें यह विचार करनेकी जरूरत है कि राज-सत्ताकी बिचवाईके अतिरिक्त हम क्या करें? बीसनगरके हिन्दुओंको

फिलहाल मुसलमानोंकी तलवारका भय नहीं। सत्ताधिकारियोंने उन्हें इस भयसे बचाया है और बचा रहे हैं। इसलिये अब उन्हें सुलहके रास्ते खोजनेकी जरूरत है। क्या उन्होंने बीसनगरके बाहरके हिन्दू-मुसलमानोंकी सलाह और सहायता ली है? उन्होंने अली भाइयोंको कुछ लिखा है? हकीमजीको लिखा है? संभव है ये कुछ न कर सकें। पर हिन्दुओंका फर्ज है कि वे उनसे सहाता मांगें। हिन्दुओंने गुजरातके अग्रगण्य पुरुष वल्लभभाईकी सलाह ली? उन्होंने अब्बास साहबकी बात न सुनी—उनकी अवहेलना की—इसके लिये उनसे माफी मांग कर उनकी सलाह ली है?

परन्तु श्री सुखलाल कहते है कि दाढ़ी और चोटीकी कभी बन ही नहीं सकती। हिन्दू अपना निपटारा खुद करलें। यदि वे सफेद टोपीवालोंकी बात मानेंगे तो वे हिन्दू न रहकर मुसलमान हो जाँयगे। इस सज्जनसे मैं नम्रतापूर्वक पूछता हूँ कि यदि उनके विचार वैसे ही हैं जैसे मेरे पास पहुंचे हैं तो वे भूल करते हैं। सफेद टोपीवालोंमें हिन्दू और मुसलमान दोनों हैं। मैं उन्हें यकीन दिलाता हूँ कि सफेद टोपीवालोंमेंके हिन्दू अपना हिन्दूपन नहीं गवाँ देंगे। हमारा झगड़ा इस वक्त सफेद या काली टोपीका नहीं है। सफेद टोपीवाले बुरे हों तो होते रहें, मैं उनकी सफाई क्या दूँगा? सफाई तो सबका अपना-अपना आचार देता है। पर यह धारणा मुझे भयंकर मालूम होती है कि हिन्दू-मुसलमानोंमें एकता हो ही नहीं सकती। इस विचारमें धार्मिक दोष है। यह विचार हिन्दू संस्कृतिके विरुद्ध है। हिन्दू धर्ममें किसीका सर्वथा नाश नहीं है। अर्थात् सबके अन्दर एक ही आत्मा रम रहा है। हिन्दू यह कही नहीं सकता कि दूसरोंको स्वर्ग तभी मिलेगा जब वे भी उन्हींको मानें जिसे वह खुद मानता हो। मैं यह नहीं जानता कि मुसलमान ऐसा मानते हैं या नहीं। परन्तु मुसलमान शौकसे यह मानते रहें कि तमाम हिन्दू काफिर हैं और वे स्वर्गके अधिकारी नहीं हो सकते। पर हिन्दू-धर्म हमें यह शिक्षा देता है कि हम ऐसे पर भी प्रेम करें। और उन्हें प्रेमपाशमें बांध लें। क्योंकि हिन्दू-धर्म किसी अन्य धर्मकी अवहेलना नहीं करता। वह सबको कहता है—स्वधर्ममें ही श्रेय है।

व्यवहारकी दृष्टिसे भी यह मानना कि हिन्दू-मुसलमानोंकी एकता असंभव है, मानों हमेशाके लिये गुलामी कबूल करना है। जो हिन्दू यह मानते हो कि सात करोड़ मुसलमानको हिन्दुस्तानसे नेस्त-नाबूद कर सकते हैं, वे गहरी नींदकी खुर्राटें ले रहे हैं। यह कहते हुये मुझे जरा भी संकोच नहीं होता।

फिर इसीलिये कि बीसनगरमें हिन्दू-मुसलमान लड़ते है, यह क्यों मान लें कि हिन्दुस्तानके सात लाख गावोंमें भी जहाँ दोनों जातियाँ बसती है, दोनों लड़ते हैं? सारे हिन्दुस्तानमें ऐसे अनेक देहात हैं जहाँ हिन्दू-मुसलमान खुद सगे भाईकी तरह रहते हैं—इतना ही नहीं बल्कि वे यह भी नहीं जानते कि कितने ही शहरोंमें और उनके नजदीक गावोंमें हम लड़ रहे हैं।

अतएव धर्म और व्यवहार दोनोंकी दृष्टिसे विचार करते हुये बीसनगरके

इन समझदार हिन्दूको समझना चाहिये कि हिन्दू-मुसलमानमें इत्तफाक सम्भव और आवश्यक है। असहयोगकी सलाह देनेवाले इन सज्जनको यह भी सूचित कर देना चाहता हूँ कि असहयोगका ही अर्थ है पीछेसे सहयोग किया जाय। असहयोग मलीनताको धोनेकी क्रिया है। एक ही ईश्वरके इस जगतमें किसी भी जीवके साथ सर्वदा असहयोग नहीं हो सकता। यह विचार कल्पनाके बाहर है। क्योंकि यह कल्पना ईश्वरकी स्वभाविकताका विरोध करती है।

इसलिये मैं बीसनगरके हिन्दुओंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे वल्लभभाई तथा अब्बास साहबको बुलावें और उनसे कहें कि हमारा झगड़ा मिटा दीजिये। यदि उन्हें इन असहयोगियोंका विश्वास न हो तो वे शौकसे सहयोगियोंको बुलावें। गुजरातमें बहुतेरे ऐसे सहयोगी हिन्दू-मुसलमान हैं जो उन्हें मदद देंगे। जबतक बीसनगरके हिन्दू समझौतेके तमाम उपाय न आजमा लें, तबतक उन्हें असहयोग करनेका अधिकार प्राप्त नहीं होता। यह तो हिन्दू भाइयोंके लिये हुआ।

मुसलमान भाइयोंने गहरी भूल की है। मुसलमान तवारीखें कहती हैं कि इस्लामकी उज्वलता तलवारके जोरपर कायम नहीं रही है। इस्लामकी तलवारने इस्लामकी रक्षा भले ही की हो; इस्लामने इन्साफ और गैर-इन्साफका केवल फैसला नहीं किया। आजतक कोई धर्म जगतमें महज तलवारपर जीवित नहीं रह पाया है। जब-तब तलवार खींच लेनेकी आदत ही खराब है, धर्मका नाश करनेवाली है। विधर्मी होते हुये भी मैं बीसनगरके मुसलमानोंको यह बात अवश्य कहना चाहता हूँ। इस्लामको उज्वल किया है उसके फकीरों, सूफियों और तत्वज्ञानियोंने। उन्होंने अपनी या अपने मजहबकी रक्षा तलवारके बलपर नहीं की, बल्कि अपनी रूहानी ताकतपर की है। इस्लामकी तारीख यही साबित करती है।

बीसनगरके मुसलमानोंको चाहिये कि वे अपनी तलवारको अब म्यानमें रखें। तलवारके बलपर वे हिन्दुओंको मस्जिदके पास बाजे बजानेसे नहीं रोक सकते। तीस-चालीस वर्षसे हिन्दू बाजे बजाते आये हैं। उन्हें एकाएक बाजा बजानेसे रोकना कठिन काम है। तलवारसे यह काम नहीं हो सकता। दुनियाका यह कायदा है कि जैसा हमको मालूम होता है वैसा ही दूसरोंको मालूम होता है। यदि कोई हिन्दू किसी मुसलमानसे जबर्दस्ती कोई हक मांगे तो वे न देंगे। इसी प्रकार हिन्दुओंसे जबर्दस्ती कुछ भी नहीं ले सकते। यह बात बीसनगरके मुसलमान भाइयोंको शान्त चित्त विचारकर समझ लेनी चाहिये, जो उनके लिये हितकर होगी।

मैं यह नहीं कहता कि इसलिये कि हिन्दू चालीस वर्षसे बाजा बजाते आ रहे हैं, वह भूल हो तो भी, बाजे बन्द नहीं किये जा सकते। परन्तु बेजा बात तलवारके बलपर सुधारी नहीं जा सकती। उसका तो एक ही तरीका है, मेल-जोल, समझौता। बीसनगरके हिन्दुओंको यदि उनकी भूल हो तो दिखाना चाहिये। उन्हें समझा-बुझाकर काम लें। यदि वे न समझें और बाजा बजाते ही जाँय तो इससे मुसलमान-

को नमाज रुकी न रहेगी। नमाजका रुकना न रुकना नमाजीके दिलपर मुनहस्सर करता है। मैंने ऐसा पढ़ा है कि पैगम्बर साहब ऐसी हालतमें भी जब कि लड़ाई चल रही हो, तलवारोंकी चमचमाहट हो रही हो, घोड़े हिनहिना रहे हों, तीर सूँ-सूँ कर रहे हों, शान्त चित्तसे एकान्त होकर नमाज पढ़ सकते थे। उन्होंने मक्काके बुत-परस्तोंके दिल प्रेमके बलपर हर लिये थे। पैगम्बर साहब जो नमूना अपनी विरासतमें दे गये हैं उसे बीसनगरके मुसलमान क्यों भूलते हैं? नमाज पढ़ना उनका फर्ज है। यह तो कुरान-शरीफमें है। पर यह नहीं पढ़ा, न सुना कि यदि दूसरे लोग बाजा बजाते हों तो जबरन बन्द करा देनेका हक उन्हें है और उसे बन्द करा देना मुसलमानोंका फर्ज है। हिन्दुओंको वे प्रेमसे समझा सकते हैं। यदि हिन्दू न मानते हों तो बीसनगरके बाहरके हिन्दू-मुसलमानोंसे मदद ले सकते हैं। मेल-जोल और समझौतेके बिना न तो हिन्दुओंके लिये कोई रास्ता है न मुसलमानोंके लिये।

क्या बीसनगरके मुसलमान स्वराज्य नहीं चाहते? क्या उन्हें गुलामी ही पसन्द है? क्या मुसलमान खिलाफतके प्रति अपना फर्ज अदा कर चुके हैं? गुलामीमें रहनेवाले मुसलमान खिलाफतकी सच्ची सेवा कर सकते हैं? हिन्दुओंके साथ पक्की-दिली दोस्ती किये बिना खिलाफतको रोशनी दे सकेंगे? अच्छा, यह मान लें कि खिलाफतका सवाल उनके सामने नहीं है। तो क्या वे अपने वतन हिन्दुस्तानमें अपने हम-वतन हिन्दुओंके साथ हमेशा दुश्मनीके ही नाते रहना चाहते हैं?

हिन्दू-मुसलमान-संबंधी दूसरे कितने ही सवालोंका विचार हम 'नवजीवन' में करेंगे। पर झगड़ोंका फैसला या तो पंचायतकी मार्फत या अदालतकी मार्फत हो सकता है। एक दूसरेको धर्मके अथवा दूसरे किसी चीजके नामपर आपसमें तलवार चलाना हराम समझना चाहिये। मुसलमानोंसे हिन्दुओंका हमेशा डरते रहना जिस प्रकार हिन्दुओंको शोभा नहीं देता उसी प्रकार उन्हें डराना मुसलमानोंको भी शोभा नहीं देता। डरानेवाला और डरनेवाला दोनों भूल करते हैं। दोमें किसका दर्जा बड़ा है यह मैं नहीं कह सकता। पर यदि किसी एकको पसन्द ही करना पड़े तो मैं जरूर डरनेवालेके झुण्डमें जा बैठूँ और डरानेवालेके साथ पूरा-पूरा असहयोग करूँ। मुझे निश्चय है कि डरनेवालेपर तो खुदा रहम करेगा और डरानेवालेको उसकी तकब्बरीके लिये अपने पास खड़ा न रहने देगा।

हिन्दी-नवजीवन
४ मई, १९२४

❀

बोहराओंका डर

एक बोहरा सज्जन लिखते हैं:—

"आज हिन्दू-मुस्लिम एकताका सवाल बड़ा ही महत्व-पूर्ण हो रहा है। इस एकतासे हम ढाई लाख बोहरोंकी जाति डरती है।"

"आपकी यह राय है कि जबतक हिन्दू-मुस्लिम एकता दृढ़ न हो तबतक स्वराज्य मिलना असंभव है। मैं भी यही मानता हूँ।

"तब सवाल यह है कि क्या इस एकतामें हमारी जाति भी आ जाती है? यदि आती हो तो हिन्दू, मुसलमान, यहूदी, पारसी, ईसाई आदिके नामोंमें 'बोहरा' शब्द भी लिखते रहिये। दूसरे हमारी जाति जो इस एकतासे डरती है उसका डर दूर हो जायगा; क्योंकि पहले मुगल बादशाहतके जमानेमें हमारी जातिपर तरह-तरहके अत्याचार किये गये थे। उसका मुख्य कारण है हमारा मुसलमानोंके साथ धार्मिक मतभेद।

"यदि हिन्दू-मुसलमान एकता हो और कभी स्वराज्य मिले तो फिर इस बातका क्या यकीन कि मुसलमान लोग हमपर बलात्कार न करेंगे? ७ करोड़ मुसलमानोंमें हम ढाई लाख बोहरा किस खेतकी मूली हैं? यदि इस बातका यकीन हमारी कौमको हो जाय कि फिर से हमपर अत्याचार न हो और 'नवजीवन'में आप खास हमारी जातिके लिये ऐसे लेख लिखें कि जिससे हमारी धार्मिक स्वतंत्रता कायम रहे तो आपका बड़ा उपकार होगा और जो डरका वहम घुस गया है वह आपके लेखसे निर्मूल होगा। क्योंकि हमारी कौम यह मानती है कि वर्तमान राजतंत्रमें हम खुश हैं और हमारे धर्मपर अत्याचार नहीं होता। इसी प्रकार स्वराज्य मिलने पर भी हमारी कौम निर्भय रहनी चाहिये।"

इस पत्रसे ऐसी कितनी ही बातें मैंने निकाल डाली हैं जो जुल्मोंको साबित करनेके लिये लिखी गई थीं। भूतकालके झगड़ोंको ताजा करनेके लिये इससे किसीको लाभ नहीं। इन बोहरा भाईने जो प्रश्न उठाया है वह गूढ़ है। 'नवजीवन'में उसपर टीका-टिप्पणी करनेसे उसका फैसला नहीं होता। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदिके साथ जोड़ देनेसे भी संतोष नहीं मिलता। हिन्दू-मुस्लिम-एकताका नाम आज कितने ही वर्षोंसे सुनाई दे रहा है। पर आज वह ऐक्य नहीं है। यह ऐक्य व्याख्यानोंसे होनेवाला नहीं। बेचारी मेरी दुबली-पतली कलम और जबान भी क्या कर सकती है। हर कौमको यह समझ लेना चाहिये कि एकतामें प्रत्येक कौमका हित है, हर एक धर्मकी रक्षा है। आपसमें शुद्ध प्रेम रखना चाहिये। धर्मान्धताकी जगह सहनशीलता होनी चाहिये और सबसे बड़ी बात तो यह सीखनी चाहिये कि धर्मकी खातिर या धर्मके नामपर एक दल दूसरे दलपर बलात्कार न कर सके। यदि हिन्दू और मुसलमान इतनी ही बातका पालन करें तो दूसरी कौमें अपने आप निर्भय होजाती हैं। बोहराओंका नाम अलगसे लेनेकी

जरूरत मुल्क न होनी चाहिये । वे भी मुसलमान हैं । यदि मुसलमान हिन्दूके साथ लाठीसे लड़ना भूल जाय तो अपने आपसमें भी लड़ना भूल जायगा । अतएव हिन्दू-मुसलमानके बीच सच्ची यानी दिलकी सफाई हो जायगी तो एक धर्मके जुदे-जुदे फिरकोंमें भी हो जायगी और यदि उसमें सफलता न मिली और हर मौकेपर एक दूसरेसे लड़नेकी ही नौबत आती रही तो फिर हमें सदाके लिये गुलामी पसन्द करनी पड़ेगी । 'सरकार बहादुर चिरंजीव रहें और हमें एक दूसरेके गलेपर छुरी फेरेने से रोकते रहें' यह हिन्दू-मुसलमान सबका नया कलमा हुआ और यही नया धर्म । देखना चाहिये कि हिन्दू-मुसलमान दोमेंसे किसी एकमें अक्ल है या नहीं । आजकी हालतमें एक लाभ है, यह अधिक दिनों तक नहीं रह सकती । चार-छः महीनेमें जो निश्चय दोनों कौमें करेंगी उससे मालूम हो जायगा कि हिन्दुस्तानके भाग्यमें दूसरे पचास साल और गुलामी बदी है या थोड़े ही समयमें स्वराज्य लिखा है ।

हिन्दी-नवजीवन
११ मई, १६२४

हिन्दू-मुसलमानोंका तनाजा: उसका कारण और उपाय

हिन्दुओंका इल्जाम

पं० बनारसीदास चतुर्वेदीकी मार्फत टांगनिका (पूर्वी-अफरीका) में रहनेवाले एक हिन्दू सज्जनने मुझे एक संदेशा भेजा था:

"गान्धीजीसे कहना कि मुल्तानमें जो हिन्दुओंपर जोरो-जुल्म हुआ है उसके जिम्मेवार आप हैं।"

अबतक मैंने यह संदेशा नहीं छापा था। क्योंकि मैं इस आला मसलेपर अपने ख्यालात जाहिर करनेके लिये तैयार न था । परन्तु यह संदेश आनेके बाद मेरे पास रोज खतपर खत चले आ रहे हैं, जिनमें तो बहुतेरे मशहूर मित्रोंके हैं, कितने ही तो यहाँ तक कहते हैं कि मोपलाओंकी ज्यादतियोंके लिये भी मैं ही जिम्मेवार हूँ । परन्तु खिलाफतकी तहरीकके पैदा होने के बाद जितने हुल्लड़ हुए और जहाँ हिन्दुओंको जान-मालका नुकसान उठाना पड़ा, उनके लिये मैं ही जवाबदेह हूं ।

इनकी दलील इस किस्मकी है:—"आपने कहा है कि खिलाफतके मामलेमें मुसलमानोंका साथ दो । इससे खुद अपनेको इस मामलेके साथ एक कर दिया है । इससे इसको इतना रुतबा मिल गया कि जितना कभी न मिलता । आपकी इस कार्रवाई-से ही मुसलमान जाग पड़े और एक हो गये । इससे मौलवियोंको जो इज्जत मिली वह पहले कभी न मिली थी और अब खिलाफतका निपटारा हो गया तो जगे हुये मुसलमानोंने हिन्दुओंके खिलाफ एक प्रकारकी जेहाद छेड़ दी है । मेरे इस इल्जामका

कारण मैंने एक सीधी-सादी समझमें आने लायक जुबानमें यहाँ दिया है। कितने ही खतोंमें तो ऐसी-ऐसी गालियाँ दी गई हैं जिन्हें अखबारमें नहीं छाप सकता। यह तो हुई हिन्दुओंके इल्जामकी बात।

मुसलमानोंके इल्जाम

एक मुसलमान दोस्त लिखते हैं :—

"मुसलमान कौम बड़ी भोली-भाली और दीन-परस्त है। इससे उसने दिलमें ख्याल किया कि खिलाफतपर बड़ी आफत आ गुजरी और उसकी हिफाजत महज हिन्दू और मुसलमानकी मुत्तहिदा आवाजसे ही हो सकती है। इन सीधे-भोले लोगोंने आपकी फसीह तकरीरोंसे जोशमें आकर सरकारी मदरसों, अदालतों और धारा-सभाओंका बहिष्कार करनेमें सबसे पहले कदम बढ़ाया। अलीगढ़की सबसे नामी संस्थाको—सर सैयद अहमद जैसे शख्सकी सारी जिन्दगीकी तपस्याका बल कह सकते हैं, वह ऐसी तमाम-संस्थाकी नाक थी और यह ठीक थी—वह संस्था इसकी बदौलत मिट्टीमें मिल गई। क्या आप हिन्दुओंकी कोई ऐसी संस्था दिखा सकेंगे जो इस कदर बरबाद हुई हो। मैं बीसों तुल्बाको जानता हूँ जिनमें कहा गया है कि तुम्हें मजहबन पढ़ाई छोड़ देनी चाहिये और उनकी पढ़ाई बरबाद हो गई। ये लोग आसानीके साथ विश्व-विद्यालयकी ऊंची पदवियाँ और इनाम पा सकते थे। ऐसा करके वे अपनी और कौमकी नेकनामी करते। इसके खिलाफ हिन्दू तुलबाकी दुनियासे बहुत थोड़े लोगोंने स्कूल कालेज छोड़े और जिन्होंने छोड़े थे वे भी तहरीकको ठण्डा पड़ते हुये देखते ही फिर जाकर भरती हो गये। वकीलोंका भी यही हाल हुआ। उन दिनों आपने किया तो दोनों कौमोंमें एकदिली कायम करने जैसा कुछ ही काम, और सारी दुनियामें शोहरत मचा दी कि इत्तहादकी बुनियाद मजबूत हो गई। बेचारी भोली-भाली मुसलमान कौमने यह सब सच माना, जिसका फल यह मिला कि अजमेर, लखनऊ, मेरठ, आगरा, सहारनपुर, लाहौर तथा दूसरी जगह मानिन्द जानवरोंके वे पीटे गये। मि० मुहम्मद अली जैसे निहायत आला दरजेके पैदायशी, अखबार-नवीस जिनका गैर-मामूली 'कामरेड' अखबार मुसलमान कौमकी भारी खिदमत कर रहा था, आपकी तरफ कर लिये गये, और अब तो कौमके हिसाबसे गोया कहींके हुए ही नहीं। आपके हिन्दू-अगुआ लोग शुद्धि और संगठनके रास्ते मुसलमान कौमको कमजोर बनानेकी कोशिश कर रहे हैं। फिर आपके इस तंग-ख्याल फैसलेने कि धारा-सभाओंमें न जाना चाहिये मुसलमान कौमको बहुत बेजा धक्का पहुँचाया है। क्योंकि अच्छे कारन्दाज लोगोंका एक बहुत बड़ा हिस्सा धारा-सभाओंके मुतअल्लिक फतवेकी बदौलत धारा-सभामें न गया। इन तमाम वाकयातपर गौर करते हुये क्या आप यह सच्चे दिलसे नहीं महसूस करते कि आप चन्द मुसलमान अशखासको भी अपने दलमें रखकर मुसलमान कौमका गहरा नुकसान कर रहे हैं ?"

मैंने यह खत पूरा नहीं दिया है। लेकिन इन चन्द जुमलोंमें मुझपर मुसलमानोंकी तरफसे किये गये इल्जामका मतलब आ जाता है।

मैं बेकसूर हूँ

इन दोनों इल्जामोंके मुतअल्लिक मुझे यही कहना है कि मैं बे-कसूर हूँ। बल्कि मुझे इतना और कहना चाहिये कि यह जो कुछ हुआ है उसपर मुझे जरा भी अफसोस नहीं होता है। अगर मैं खुदाई फरिश्ता या पैगम्बर होता और जो कुछ वाकयात हुये हैं इन्हें पहलेसे देख पाता तो भी मैं खिलाफतकी तहरीकमें कूदे बिना नहीं रहता। मेरा तो मजबूत ख्याल है कि गो दोनों कौमोंमें चाहे आज कितना ही कड़वापन क्यों न फैल गया हो पिछली तहरीकसे दोनोंको फायदा ही पहुंचा है। हमारी कौमी तालीमके लिये आम-लोगोंमें रोशनी फैलाना और उनको अपनी हालतको समझाना जरूरी था। यह एक ही चीज हमारे नजदीक एक बड़ा फायदा है। मैं ऐसी कोई बात न करूंगा जिससे लोगोंकी खुली आँखे फिर मुँद जायें और वे लेट लगा जायें। हमारी होशियारी और लियाकत इसीमें है कि हम लोगोंकी कूवतको ठीक-ठीक रास्ता दिखावें। इस वक्त जो नजारा हम अपनी आखोंके सामने देख रहे हैं वह बेशक काबिल-रंज और अफसोस है, लेकिन हमें अगर अपनेपर पक्का एतबार हो तो इससे घबरा जानेकी मुतलक जरूरत नहीं है। मौजूदा तूफान आने-वाले अमन-अमानका निशान है। यह अमन हमारी कूवत और ताकतके ज्ञानका फल होगा, थकावट और ना-उम्मेदीकी वजहसे आनेवाली सुस्ती उसकी बायस न होगी।

लोग मुझसे यह न चाहेंगे कि मैं मुल्कमें जगह जगह हुये दंगों और लड़ाई-झगड़ोंके मुतअल्लिक फैसला दूँ। मैं मुतलक नहीं चाहता कि काजी बनूँ और यदि चाहूँ भी तो इन्साफ देने लायक मसाला मेरे नजदीक नहीं है।

मोपला लोग

मैं इन झगड़ोंकी वजूहातके मुतअल्लिक दो अल्फाज कहूँगा। मलाबारके मोपला-फसादसे हिन्दुओंका दिल जरूर खट्टा हो गया। इसमें सच बात क्या है, यह कोई नहीं जानता। हिन्दुओंका कहना है कि मोपलोंके जोरो-जब्रका बयान नहीं किया जा सकता। डाक्टर महमूदका बयान है कि इन ज्यादतियोंके बारेमें तिलको ताड़ बनाया गया है। हिन्दू लोग मोपलोंको बहुत तंग और परेशान करते थे और जब्रन मुसलमान बनानेकी अफवाहोंमें एक भी सच न साबित हुई। एक मिसाल बताई जाती थी। तहकीकात करनेपर वह सच साबित न हुई। डा० महमूद कहते हैं कि इस बातमें खुद हिन्दू लोग गवाह हैं। मोपला-बाबके ये दोनों रुख मैंने इसलिये पेश किये हैं कि लोग मेरे साथ इस बातमें मुत्तफिक राय हों कि दरअसल सच बातको खोज निकालना गैर-मुमकिन है और हमारे आयन्दा चलनेका कायदा बनानेके लिये यह जरूरी भी नहीं है।

मुलतान, आगरा, सहारनपुर, अजमेर वगैरह मुकामातपर हिन्दुओंके जानो-मालका सबसे ज्यादह नुकसान हुआ है। सब लोग इस बातको सही मानते हैं।

पलवलकी खबर है कि वहाँके हिन्दुओंने मुसलमानोंको एक खाम-मसजिदको पुख्ता बनानेसे रोका। कहा जाता है कि उन्होंने पक्की दीवारोंका एक हिस्सा भी गिरा दिया। मुसलमानोंको गाँवके बाहर निकाल भी दिया और जबतक मुसलमान इस बातपर राजी न हों कि यहाँ मुसलमान एक भी मसजिद खड़ी न करें और बांग न दें तबतक उन्हें गाँवमें रहने न देंगे। कहते हैं कि कोई एक सालसे ज्यादह अर्सेसे यह हालत वहाँ है। कहा जाता है कि जिन मुसलमानोंको उन्होंने निकाल दिया वह रोहतकके आस-पास कच्ची झोंपड़ियां बनाकर रहते हैं। एक और भी मुखबिर मुझे खबर करते हैं कि ब्याढह, जिला धारवाड़के मुसलमानोंने मसजिदके सामने बाजा बजानेपर एतराज किया, इसपर हिन्दुओंने मसजिदकी हतक की, मुसलमानोंको पीटा और पीछे उनको सताया भी।

इन मिसालोंको मैं बतौर साबित मामलेके पेश नहीं कर रहा हूँ; बल्कि महज यह दिखानेके लिये पेश कर रहा हूँ कि मुसलमानोंकी भी यह फरियाद है कि हिन्दुओंने हमें भी कम नहीं सताया।

परन्तु इतना तो जरूर कहा जा सकता है कि जहाँ मुसलमान लोग साफ तौरपर कमजोर थे और हिन्दू ताकतवर थे (जैसे कटारपुर और आरामें) वहाँ पड़ोसी हिन्दू-भाइयोंके हाथों बेरहमीसे पीटे गये। बात यह है कि जब इन्सान-का खून उबल उठता है और बदख्याली तथा बदगुमानीका बोल-बाला होता है तब इन्सान जानवर बन जाता है और मिस्ल जानवरके पेश आता है, फिर वह चाहे अपनेको हिन्दू कहलवाता हो या ईसाई या और कुछ कहलाता हो।

फसादोंका अड्डा

इन तमाम फसादोंका अड्डा पंजाब है। मुसलमानोंकी शिकायत है कि फजलुल हक साहबने डरते-डरते मुसलमानोंकी तादाद सरकारी मुलाजमतमें ठीक-ठीक रखनेकी कोशिश की। इसी बातपर हिन्दुओंने चारों तरफ शोरगुल मचा दिया। ऊपर मैंने जिस खतका हिस्सा नकल किया है उसके लेखक भारी शिकायत करते हैं कि जहाँ हिन्दू किसी मुहकमेका अफसर होता है वहाँ वह हमेशा मुसल-मानोंको सरकारी नौकरीमें न घुसने देनेकी बड़ी खबरदारी रखता है।

इस तरह हमारे झगड़ेकी वजूहात महज मजहब ही नहीं। मैंने जिन इल्जामोंका वर्णन किया है वे एक-एक शख्ससे ताल्लुक रखते हैं लेकिन आम-लोगोंका दिल व्यक्तिगत रायका प्रतिबिम्ब होता है।

अहिंसासे घबड़ा उठे

लेकिन इन सबका जो नजदीकी संबंध है वही सबसे ज्यादह खतरनाक है। ऐसा मालूम होता है कि दिमाग रखनेवाले लोग अहिंसा—अदम-तशद्दुद—से घबड़ा उठे हैं। इन लोगोंकी समझमें अभी अहमदाबाद तथा वीरमगाँवके दंगोंके बादके और उसके बाद बम्बई और आखिरको चौरी-चौराकांडके बाद मेरी सत्याग्रहको

मुल्तवी रखनेकी बात नहीं आई। आखिरी दंगेके वक्त मैंने जो किया वह आखिरी बात थी। बस दिमाग रखनेवाले लोगोंने समझा कि अब थोड़े दिनोंके अन्दर सत्याग्रहकी—और इसलिये स्वराज्यकी—भी तमाम उम्मीदें फजूल हैं। अहिंसापर उनका एतबार महज ऊपरी था। दो साल पहले एक मुसलमान दोस्तने मुझसे दिल खोलकर कहा था:—

"मैं आपके अहिंसा धर्मको नहीं मानता और अगर औरोंको नहीं तो कमसे कम अपने मुसलमान भाइयोंको तो मैं इसे सीखने देना नहीं चाहता। जिन्दगीका कानून तो हिंसा ही है। अहिंसा धर्मके मानी जो आप कहते हैं उससे यदि स्वराज्य मिलता हो तो मुझे दरकार नहीं। मैं तो अपने दुश्मनसे जरूर नफरत रखूंगा।"

ये एक इमानदार शख्स हैं। मैं उनकी बड़ी इज्जत करता हूँ। दूसरे एक बड़े भारी मुसलमान दोस्तकी भी ऐसी खबर आई है। मुमकिन है कि वह गलत हो; पर जिन्होंने लिखा है वे ऐसे नहीं हैं।

हिन्दुओंकी नफ़रत

अहिंसाकी यह नफरत अकेले मुसलमानोंमें देखी जाती सो बात नहीं। मेरे हिन्दू-दोस्तोंने भी भरसक ऐसी ही बातें बहुत जोशके साथ कही हैं। मैं हद दर्जे तकके अहिंसा-धर्मकी हिमायत करता हूं। इससे कितने ही ने मेरा अपनेको हिन्दू कहानेका हक भी छीन लिया है। उनका कहना है कि मैं प्रच्छन्न छिपा हुआ, ईसाई हूं। मुझसे बड़ी संजीदगीके साथ कहा गया है कि भगवद्-गीताका यह अर्थ करनेमें कि उसमें शुद्ध अव्यभिचार-अहिंसा-धर्मका उपदेश दिया गया है, मैं गीताके अर्थका सचमुच अनर्थ करता हूं। मेरे कितने ही हिन्दू मित्र मुझसे कहते हैं कि खास-खास मौकेपर हिंसाको भगवद्-गीताने मनुष्यका धर्म माना है और उसके लिये वह कर्तव्य बताया गया है। कुछ ही दिन पहले एक भारी विद्वान शास्त्रीजीने गीताके मेरे अर्थपर गुस्सा और नफरत जताते हुये कहा कि कितने ही टीकाकारोंने गीताका जो अर्थ निकाला है कि गीतामें दैवी और आसुरी संपत्तिके सनातन युद्धका वर्णन है और गीतामें आसुरी संपत्तिको बिना संकोच और बिना दया-माया निर्मूल करना हमारा कर्तव्य बताया गया है, उसको यथार्थ माननेका कोई भी आधार नहीं है।

अहिंसाके खिलाफ इन तमाम रायोंको इतने मुफस्सिल तौरपर यहाँ इसलिये देता हूं कि कौमी मामलेको जो तदबीरें मेरे पास हैं उसे समझनेके लिये इन ख्यालातोंको समझ लेने की जरूरत है।

इस तरह आजकल जो नजारा मैं अपने आस-पास देख रहा हूं वह अहिंसाके ख्यालके फैलावके खिलाफ एक जबरदस्त रुकावटी ख्याल है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि अहिंसाकी एक जबरदस्त लहर उठती चली आ रही है। हिन्दू मुसलमानोंका तनाजा अहिंसाके मुतअल्लिक फैली बेदिलीकी एक शकल है।

इस सवालका विचार करते वक्त मेरा ख्याल न करना चाहिये। मेरा मजहब तो मेरे और मेरे सिरजनहारके दरम्यानकी बात है। अगर मैं हिन्दू हूंगा तो सारी हिन्दू-दुनियाँके छोड़ देनेपर मेरा हिन्दूपन मिट नहीं सकता। फिर भी मैं इतना जरूर कहूंगा कि अहिंसा ही तमाम मजहबोंका आखिरी मकसद है।

एक हद तक अहिंसा

परन्तु हिन्दुस्तानसे तो मैंने यह कभी नहीं कहा कि वह उस हद दर्जे तक ही अहिंसाको कबूल करे जिसका कि इल्जाम मुझपर लगाया गया है, अगर किसी और वजहसे नहीं तो महज इसी वजहसे कि मैं अपनेको इस बातके लिए पूरा लायक नहीं मानता कि इस पुराने पैगामको फिर एक बार हालकी दुनियाको सुनाऊँ। मैं मानता हूं कि यह मेरे जहन-नशीन सोलहो आना हो गया है और मेरे दिलमें भी अच्छी तरह जम गया है। फिर भी अभी वह मेरे रगो-रेशोंमें जज्ब नहीं हो पाया है और मैं समझता हूं कि ऐसी बातको न पेश करनेमें ही मेरे कामकी मजबूती है जिसको मैंने अपनी जिन्दगीमें बार-बार न आजमा लिया हो। फिर अपने देश भाइयोंको अहिंसा-धर्म उनके आखिरी और सबसे बढ़कर धर्मके तौरपर नहीं, बल्कि जुदा-जुदा कौमोंके बाहमी ताल्लुकातमें अपना बर्ताव ठीक-ठीक रखनेके लिए और स्वराज्य हासिल करनेके लिये ही उसे मंजूर करनेकी बात मैं कह रहा हूं। हिन्दू मुसलमान, ईसाई, सिख, पारसी—किसी कौमको अपने बाहमी तफरकों और झगड़ोंका फैसला, एक दूसरेका सिर फोड़कर हरगिज न करना चाहिये। स्वराज्य हासिल करनेकी हमारी तदबीरें भी हिंसा-रहित होनी चाहिये। इसे मैं हिन्दुस्तानके सामने कमजोर हथियारके तौरपर नहीं बल्कि जोरावरके हथियारके तौरपर पेश करनेकी हिम्मत करता हूं। हम हिन्दू-मुसलमानोंको हमेशा यह पुकारते हुये सुनते हैं कि "मजहबकी बातमें जबरदस्ती न होनी चाहिये। लेकिन अगर कोई हिन्दू गायको बचानेके लिये एक मुसलमानकी जान लेनेको तैयार हो तो यह मजहबकी बातमें जबर्दस्ती नहीं तो क्या है? यह तो गोया किसी मुसलमानको जब्रन हिन्दू बनाना ही हुआ। उसी तरह अगर मुसलमान हिन्दुओंको मसजिदके सामने जब्रन बाजे बजानेसे रोकनेकी कोशिश करें तो वह भी जबर्दस्ती नहीं तो क्या है? मजहब तो वह चीज है कि चाहे कितना ही गोलमाल और गुल-गपाड़ा क्यों न होता रहे, इन्सान खुदाकी बन्दगीमें—ईश्वर-प्रार्थनामें-तल्लीन हो जाय। अगर हम अपनी मजहबी ख्वाहिशोंके मामलेमें एक दूसरेपर जबरदस्ती करके उससे अपना चाहा करानेकी फजूल कोशिश करना इसी तरह कायम रखेंगे तो हमारी आयन्दा नस्ल हम दोनों कौमोंको अधर्मी और जंगली ही समझेगी। एक लाख अंग्रेजोंको नस्ल ठिकाने लानेके लिये ३० करोड़ लोगोंको हाथ उठानेका इरादा करते हुये शर्मसे डूब मरना चाहिये। इन लाख लोगोंके दिलको बदल देना, अगर आप ऐसा न चाहते हों, तो उन्हें इस मुल्कसे बिदा कर देना, इस इतनेसे कामके लिये हमें तलवारकी नहीं, सिर्फ निश्चयका कस्द कर लेनेकी जरूरत है। अगर इस बातकी कमी होगी तो हमसे तलवार भी नहीं खिंच

सकेगी। फिर अगर हम निश्चय बल हासिल कर लेंगे तो हम देखेंगे कि हमें तलवार-की जरूरत ही न रही।

इस तरह ऊपरकी कही बातोंको ही हासिल करनेके लिये अहिंसा-तत्व-अदम-तशद्दुको अख्तयार करना हमारी कौमी हस्तीके लिये बिल्कुल कुदरती और उतनी ही जरूरी शर्त है। इसीके जरिये हम अपनी सामुदायिक जिस्मानी ताकतसे अच्छी तरह काम लेना सीखेंगे। अभी तो हम इस ताकतको लड़कर ही गवाँ रहे हैं और नतीजा यह होता है कि ऐसी हरएक लड़ाई झगड़ेके बाद हर फरीक ज्यादा ही ज्यादा कमजोर होता है। इसके अलावा तलवारकी ताकतपर की गई हर एक राज्यक्रान्ति भी, अगर उसकी हिमायतपर तमाम कौम न हो तो, महज पागलपन ही गाना जाना चाहिये। अगर मुल्क हिमायतपर है तो असहयोग-तर्के-मवालातके तकरीबन किसी भी हिस्सेके जरिये इस गरजको बिना एक बूंद लहू गिराये लोग पूरा कर सकते हैं।

मैं यह नहीं कहता कि चोरों और डाकुओंके साथ, या अगर विदेशी लोग आपपर हमला करें तो उनके साथ भी आप अदम तशद्दुदसे काम लें। परन्तु इसके लिये कि ऐसे खतरेके वक्त ज्यादा काबलियत और खूबीके साथ मुकाबिला करें हमें अपने जोशको अपने कब्जेमें रखनेकी आदत डालना जरूरी है। जरा जरासी बातोंमें तलवार खींच लेना ताकतका नहीं, कमजोरीका निशान है। आपसका जूता-पैजार जिस्मानी कूवतकी नहीं बल्कि नामर्दीकी तालीम है। जो अहिंसाका तरीका मैं बता-रहा हूँ, उसमें कमजोरीका जरा भी अन्देशा नहीं, बल्कि इसी तरीकेपर, अगर लोग चाहें तो, खतरेके समय बाकायदा और बातरतीब तलवार चला सकेंगे।

हमारी खाम-ख्याली

जो लोग यह मान रहे हैं कि अहिंसाकी तालीमसे हम प्रमादी और अकर्मण्य बन रहे हैं वे अगर एक लहमेके लिये भी सोचकर देखेंगे तो उन्हें मालूम होगा कि हम सच्चे मानीमें कभी अहिंसापरायण रहे ही नहीं। हाँ, यह बात सच है कि हमने प्रत्यक्ष शारीरिक-हिंसा-जिस्मानी तशद्दुद नहीं किया, किन्तु हमारे दिलमें तो हिंसा सुलगी रहती थी। अगर हमने सच्चे दिलसे अपने इरादे और जुबानपर इस तरह कब्जा रखा होता कि उनका और हमारी जिस्मानी हरकतका मेल पूरा-पूरा बना रहता तो आज हमको जो थकावट मालूम होती है वह हरगिज न होती। अगर हम अपनी अन्तरात्माके प्रति अपने दिलसे सच्चे बने रहते तो अबतक हमने बेमिसाल हेतु-बल और निश्चय बल हासिल कर लिया होता।

अटल-शर्त

अहिंसाके मुतअल्लिक इस खाम ख्यालीका इतना लम्बा चौड़ा जिक्र मैंने इसलिये किया कि मुझे यकीन है कि अगर हम एक बार अपने दिलसे अहिंसापर,

ऊपर वाले दो ही मकासिद हासिल करनेके लिये एतबार रख सकें (यदि पहले सचमुच ही एतबार रहा हो) तो आज जो तनाजा हिन्दू मुसलमानोंमें पड़ गया है वह जल्दी दूर हो जाय; क्योंकि मेरी रायमें दोनों कौमोंके बाहमी ताल्लुकातके लिये अहिंसाका इस्तेमाल एक ऐसी अटल शर्त है जो इस तनाजेका इलाज करने वाले किसी भी ठहरावकी पेशबन्दीके लिये जरूरी है। दोनों कौमोंमें इतना समझौता आमतौरपर जरूर होना चाहिये कि कुछ भी हो जाय लेकिन दोनोंसे एक भी फरीक मनमानी न करे, खुद ही कानून न बन बैठे; बल्कि जहाँ जहाँ और जब जब किसी जगह झगड़ा खड़ा हो जाय वहाँ झगड़ेकी तमाम बातोंका फैसला या तो पंचायतके मार्फत हो या फरीकैन चाहें तो अदालतसे फैसला करावें। जुदा जुदा कौमोंके बाहमी ताल्लुकातके लिये तो अहिंसाके मानी सिर्फ इतने ही हैं, इससे ज्यादह नहीं। दूसरे अल्फाजमें कहें तो जिस तरह मामूली दुनियादारीकी बातोंमें एक दूसरेके सिर फोड़नेपर आमादा नहीं हो जाते उसी तरह मजहबी मामलोंमें भी न हो। इतना एक ही इकरार होना तमाम फरीकोंमें इसी वक्त जरूरी है और इतना कर सकें तो मुझे यकीन है कि तमाम बातें अपने आप ठीक हो जायँगी।

जबतक यह पहली शर्त कायम और मंजूर न की जाये तबतक हम जुदा-जुदा कौमकी गलतफहमी दूर करनेके लिये न जरूरी जमीन तैयार कर सकेंगे और न कोई कायमी बाइज्जत समझौतेपर आ सकेंगे।

गुण्डे और नामर्द

अच्छा, मान लीजिये दोनों कौमें इस शुरुवाती शर्तको कबूल करनेमें एक राय हो जायँ, तो अब दोनों कौमोंमें तनाजा पैदा करने वाले जो हमेशाके कारण हैं उनका विचार करना चाहिये। मुझे रत्ती भर शक नहीं कि हिन्दू मुसलमानके झगड़ोंकी मिसालोंमें हिन्दू लोग भी ज्यादहतर ढीले साबित होते है। मेरा जाती तजरुबा इस ख्यालको मजबूत करता है कि मुसलमान अमूमन गुण्डे होते हैं और हिन्दू अमूमन नामर्द होते हैं। रेलगाड़ीमें, रास्तोंमें तथा ऐसे ही झगड़ोंका निपटारा करनेके जो मौके मुझे मिले हैं उनमें मैने यही देखा है। भला अपनी नामर्दीके लिये हिन्दुओंको मुसलमानोंको दोष देना मुनासिब है? जहाँ नामर्द रहते है वहाँ गुण्डे लोग जरूर ही रहेंगे। कहते हैं कि सहारनपुरमें मुसलमानोंने घर लूटे, तिजोरियाँ तोड़ डालीं और एक जगह एक हिन्दू औरतको बेइज्जत भी किया। इसमें गलती किसकी? यह सच है कि मुसलमान अपनी इन बुरी और वहशी करतूतोंकी सफाई किसी तरह नहीं दे सकते; पर मैं तो मुसलमानोंपर उनके गुण्डेपनके लिये गुस्सा होनेके बजाय बहैसियत एक हिन्दूके हिन्दुओंकी नामर्दीका ख्याल करके ज्यादा शरमिन्दा होता हूँ। जिनके घर लूटे गये वे अपने माल-असबाबकी हिफाजत करते हुये वहाँ मर क्यों न गये? जिन बहनोंकी बेइज्जती हुई नाते-रिश्तेदार उस वक्त कहाँ गये थे? क्या वे कुछ भी जवाब देनेके जिम्मेदार नहीं? मेरे अहिंसा-धर्ममें

खतरेके वक्त अपने अजीजोंको मुसीबतमें छोड़कर भाग खड़े होनेके लिये जगह नहीं है। मारना या नामर्दीके साथ भाग खड़ा होना—इनमेंसे यदि मुझे किसी बातको पसन्द करना पड़े तो मेरा वसूल कहता है कि मारनेका हिंसाका रास्ता पसन्द करो। क्योंकि अगर मैं अंधेको कुदरतका जौहर देखना सिखा सकूँ तो नामर्दको अहिंसाधर्म सिखा सकूँ। अहिंसा बहादुरीकी हद है और मुझे यह जाती तजरुबा है कि हिंसाके रास्तेमें तालीम पानेवाले लोगोंको अहिंसाकी श्रेष्ठता साबित करनेमें मुझे कठिनाई नहीं हुई। पहले जब मैं खुद डरपोक था, तो मैं भी हिंसाका भाव रखता था। लेकिन ज्यों-ज्यों मेरा डरपोकपन दूर होने लगा त्यों-त्यों मैं अहिंसाकी कीमत समझने लगा। जो हिन्दू अपने कर्तव्यकी जगह छोड़कर ऐसे समय भाग खड़े हुए, जब कि उसमें खतरेका सामना करना पड़ता था, तो वे इसलिये नहीं भागे कि वे अहिंसा-परायण थे, या वे मारनेसे डरते थे, बल्कि इसलिये कि वे मरना नहीं, अपनी जानको किसी किस्मकी तकलीफ पहुचाना नहीं चाहते थे। जब खरगोश शिकारी कुत्तेसे डरकर भागता है तब वह अहिंसाके ख्यालसे नहीं भागता है। बेचारा उसकी शक्ल ही देखकर घबड़ा जाता है और जान लेकर भाग खड़ा होता है। जो हिन्दू अपनी जान बचाकर भाग गये वे हँसते हुये अगर अपनी छाती खोलकर अपनी जगह खड़े रहे होते और वहाँ मर मिटते, तो वे सच्चे अहिंसा-परायण कहे जाते, उनका यश और गौरव छा जाता, उनका धर्म चमक उठता और उनपर हमला करनेवाले मुसलमान उनका दोस्त बन जाते। अगर वे अपनी जगह खड़े होकर दो-दो हाथ ही करते तो बेहतर था—हालांकि उनका यह काम उतना शरीफाना न होता। अगर हिन्दू लोग मुसलमान गुण्डोंको अपने कदरदां दोस्त बनाना चाहते हैं तो उनको भारीसे भारी खतरोंके सामने मजबूत होकर मरनेके लिये तैयार होना चाहिये।

रास्ता

लेकिन अखाड़े इनको तदबीर नहीं हैं। मैं अखाड़ोंको बुरा नहीं कहता। बल्कि मैं तो जिस्मानी तरक्कीके लिये उनकी जरूरत समझता हूँ। पर उस हालतमें वे सबके लिये होने चाहिये। अगर हिन्दू मुसलमानोंके झगड़ेके वक्त उनसे मदद लेनेके इरादेसे वे खोले जाते हों तो उनसे कुछ भी मतलब न निकलेगा। क्या मुसलमान ऐसा दाव नहीं खेल सकते? ऐसी छिपी या खुल्लम-खुल्ला पेशबन्दीसे सिवा बाहम शक बढ़ने और चिढ़ पैदा होनेके और कुछ पैदा नहीं हो सकता। इन झगड़ोंको तो कुछ थोड़े दिमागदार लोग ही गैर मुमकिन कर सकते हैं और उसके लिये पंचायतका तरीका फैलाना चाहिये और उसका फैसला लोगोंसे मनवाना चाहिये।

नामर्दीकी दवा जिस्मानी तालीम नहीं, बल्कि खतरोंका सामना बहादुरीसे करना है। जबतक मझले दर्जेके डरपोक हिन्दू अपने जवान लड़कों-बच्चोंके बदन-पर मुलायम कपड़े पहनाकर उनके अन्दर अपना डरपोकपन फैलाकर बाज न आवेंगे तबतक यह खतरेसे दुम दबानेकी और जोखिम सिरपर लेनेकी ख्वाहिश

बराबर बनी रहेगी। उन्हें अपने लड़कोंको अकेला छोड़नेका साहस करना चाहिये—वे उन्हें जोखिमोंमें पड़ने दें यदि उसमें वे मर भी जायँ तो हर्ज नहीं। एक छोटे बौने आदमीमें भी शेरका दिल हो सकता है, और बड़ा हट्टा-कट्टा जुलू भी अंग्रेज लोगोंके सामने बकरी बन जाता है। हर एक गाँववालोंको अपने गाँवसे ऐसे शेरदिल और जवाँमर्द खोज निकालने होंगे।

बुराईके बीज

गुण्डोंके सिर दोष लगाना भूल है। जबतक कि हमलोग उनके आस-पास वैसी हालत और सूरत न पैदा करें तबतक वे बदमाशी नहीं कर पाते। १९२१ में शाहजादेकी तशरीफ आवरीके दिन बम्बईमें जो वाकया हुआ उसमें मैंने खुद अपनी आँखों देखा। हमने उनके बीज बोये थे और गुण्डोंने उसकी फसल काट ली। हमारे आदमी उनकी पुश्तपर थे। मुल्तान, सहारनपुर और दूसरी जगह जहाँ-जहाँ वे काली करतूतें हुई हैं मैं बेखटके वहाँ-वहाँके इज्जतदार मुसलमानोंको (किसी एक ही मामलेमें सब लोग नहीं) उनका जिम्मेवार मानता हूँ। इसी तरह कटारपुर और आराके भी इज्जतदार हिन्दुओंको बिला हिचकिचाहट वहाँके कुकर्मोंका जिम्मेदार मानता हूँ। अगर यह बात सच है कि पलवलमें हिन्दुओंने कच्ची मसजिदकी जगह पक्की मसजिद बनवाना रोक दिया, तो यह काम गुण्डे लोग नहीं कर रहे हैं, वहाँके इज्जतदार हिन्दू ही उसके लिये जिम्मेदार माने जाने चाहिये। हमको अपनी यह चाल कि हमेशा आबरूदार लोगोंको दोपारोपणसे बचा लें, जरूर छोड़ देनी चाहिये।

इसलिये मैं यह मानता हूँ कि अगर हिन्दू लोग अपनी हिफाजतके लिये गुण्डोंका संगठन करेंगे तो भारी गलती करेंगे। उन्हें लेनेके देने पड़ जायँगे। या तो बनियों, ब्राह्मणोंको अगर अहिंसाके जरिये नहीं तो जिस्मानी ताकतके जरिये ही सही, अपनी हिफाजत खुद करनेका मुहावरा करना होगा या अपने जान-माल और औरतोंको गुण्डोंके हवाले करना पड़ेगा। गुण्डोंकी एक अलहदा जाति ही समझिये वे चाहे हिन्दू हों या मुसलमान हों।

अछूतोंका इस्तेमाल

एक जगह बड़े तपाकके साथ यह बात कही गयी थी कि एक गाँवमें अछूतोंकी हिफाजतमें (क्योंकि वे मौतसे नहीं डरते थे) हिन्दुओंका जलूस एक मसजिदके सामनेसे (धूम-धामसे गाते बजाते हुए) बिला खरखशे निकल गया।

पवित्र कामका यह एक निहायत बेजा दुनियावी इस्तेमाल है। अछूत भाइयोंके ऐसे बेजा इस्तेमालसे न तो आमतौरपर हिन्दू धर्मका फायदा है, न खासकर अछूतोंका। इस तरह कुछ मशकूक तौरपर महफूज जलूस भले ही कुछ मसजिदोंसे सही-सलामत निकल जायँ, पर इसका नतीजा यह होगा कि बढ़ता हुआ तनाजा ज्यादा बढ़ेगा और हिन्दू-धर्म नीचे गिरेगा। मझले दर्जेके लोग यदि मुखालिफ होते हुए भी गाते-बजाते निकलना चाहते हों तो उन्हें या तो पीटनेके लिए तैयार होना

चाहिये या एक इज्जत आबरूदार शख्सकी तरह उनसे दोस्ती करनेके लिए तैयार रहना चाहिये।

हिन्दुओंने पिछले जमानेमें दलित भाइयोंके साथ जो ज्यादतियाँ कीं और अब भी कर रहे हैं, उसके लिए जरूर प्रायश्चित करना होगा। ऐसी हालतमें हमें जो उनका कर्ज़ा चुकाना है, उसे अदा करनेके बदलेमें हम उनसे किसी चीजकी उम्मीद नहीं कर सकते। अगर हम अपनी नामर्दी छिपानेके लिए उनका इस्तेमाल करेंगे तो हम उनके दिलमें ऐसी आशाएँ पैदा करेंगे जिसे हम कभी पूरा नहीं कर पावेंगे और अगर ईश्वर उसका बदला हमसे ले तो वह हमारे उनके साथ किये गये अमानुषी बरतावकी ठीक-ठीक सजा मानी जायगी। अगर हिन्दू-जातिके पास मेरी किसी भी कद्र पहुँच हो तो मैं उससे प्रार्थना करूँगा कि वह मुसलमानोंके हमलोंसे बचानेके लिए उन्हें अपनी ढाल न बनावें।

बे-एतबारीका हंगामा

इस बढ़ते हुए तनाजेका एक और सबल प्रमाण है हमारे अच्छेसे अच्छे लोगोंके दरम्यान बढ़ती हुई बेएतबारी। मुझे पण्डित मालवीयके बारेमें चेतावनी दी गयी है! उनपर यह इल्जाम है कि उनकी घातें बड़ी गहरी-छिपी हुई होती हैं। कहा जाता है कि वे मुसलमानोंके खैरख्वाह नहीं हैं। यहाँ तक कि वे मेरे रुतबेकी हसद करने वाले बताये जाते हैं। जबसे १९१५ में हिन्दुस्तान आया, तबसे मेरा उनके साथ बहुत समागम है और मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूँ। मेरा उनके साथ गहरा परिचय रहता है। उन्हें मैं हिन्दू-संसारके श्रेष्ठ व्यक्तियोंमें मानता हूँ। कट्टर और पुराने ख्यालातके होते हुए भी बड़े उदार विचार रखते हैं। वे मुसलमानोंके दुश्मन नहीं हैं। उनके पास किसीकी हसद रखना गैर-मुमकिन है। उनकी दर्या-दिली ऐसी है कि उसमें उनके दुश्मनोंके लिए भी जगह है। उन्हें कभी हुकूमतकी चाह नहीं रही और जो हुकूमत आज उनके पास है वह उनकी मातृ-भूमिकी आजतककी लम्बी और अखण्ड सेवाका फल है। ऐसी सेवाका दावा हममेंसे बहुत कम लोग कर सकते हैं। उनकी और मेरी खासियत जुदी-जुदी है; लेकिन हम दोनों एक दूसरेको सगे भाईकासा प्यार करते हैं। मेरे और उनके बीच कभी जरा भी बिगाड़ न हुआ। हमारे रास्ते जुदे-जुदे हैं। इसलिए हमारे बीच स्पर्धा और डाहका सवाल पैदा ही नहीं हो सकता।

लालाजी

दूसरे शख्स जिनपर अविश्वास किया जाता है लालाजी हैं। मैंने तो लालाजी-को एक बच्चेके मानिन्द खुले दिल वाला पाया है। उनके त्यागकी जोड़ लगभग हुई नहीं। मेरी उनसे हिन्दू-मुसलमानके बारेमें एक बार नहीं अनेक बार बातें हुई हैं। वे मुसलमानोंके साथ मुतलक दुश्मनी नहीं रखते। लेकिन उन्हें जल्दी एकता हो जानेमें शक है। वे ईश्वरसे प्रकाश पानेके लिये प्रार्थना कर रहे हैं। खुद शंकित रहते

हुये भी वे हिन्दू-मुस्लिम एकताके कायल हैं। क्योंकि जैसा कि उन्होंने मुझे कहा है वे स्वराज्यके कायल हैं। वे मानते हैं कि ऐसी एकताके बिना स्वराज्य स्थापित नहीं हो सकता। तो भी वे यह नहीं जानते कि यह एकता किस तरह और कब होगी। मेरा उपाय उन्हें पसन्द है परन्तु उन्हें इस बातमें शक है कि हिन्दू लोग उसका मर्म समझ पायेंगे या नहीं और अगर समझ पायेंगे तो उसकी शराफतकी कदर करेंगे या नहीं। यहाँ इतना मैं कह देता हूँ कि मैं अपनी तदबीरको उदात्त—शरीफाना—नहीं कहता मेरे ख्यालमें तो यह बिलकुल ठीक और हो सकने लायक तदबीर है।

आर्य समाज

स्वामी श्रद्धानन्दजीपर भी लोग विश्वास नहीं करते हैं। मैं जानता हूँ कि उनकी तकरीरें ऐसी होती हैं जिनसे कई बार बहुतोंको गुस्सा आ जाता है, परन्तु वे भी हिन्दू-मुस्लिम एकताको जरूर चाहते हैं। पर बदकिस्मतीसे वे यह मानते हैं कि हरएक मुसलमान आर्य-समाजी बनाया जा सकता है। जैसे कि बहुतेरे मुसलमान मानते हैं कि हरएक गैर-मुस्लिम किसी न किसी दिन इस्लामको कुबूल कर लेगा। श्रद्धानन्दजी निडर और बहादुर आदमी हैं। अकेले हाथों उन्होंने गंगाजीके किनारे-पर तराईके जंगलको एक जगमगाते गुरुकुलके रूपमें बदल दिया। उन्हें अपने तथा अपने कामपर अच्छा एतबार है। पर वे जल्दबाज हैं और थोड़ीसी बातपर जोशमें आ जाते हैं। आर्य-समाजकी परम्पराकी विरासत उन्हें मिली है। स्वामी दयानन्द सरस्वतीको मैं बड़े आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ। मैं मानता हूँ कि उन्होंने हिन्दू-धर्मकी भारी सेवा की है। उनकी बहादुरीके संबन्धमें कोई सवाल ही नहीं उठ सकता। पर उन्होंने अपने हिन्दू-धर्मको संकुचित तथा तंग बना दिया है। आर्य-समाजकी बाइबिल 'सत्यार्थ प्रकाश'को मैंने दो बार पढ़ा है। जब यरोडा जेलमें मैं आराम कर रहा था तब उसकी तीन प्रतियाँ कुछ दोस्तोंने मुझे भेजी थीं। ऐसे महान सुधारकका लिखा इतना निराशाजनक ग्रन्थ-मायूस करनेवाली किताबमैंने नहीं पढ़ी। उन्होंने सत्यकी और बिलकुल सत्यकी ही हिमायत करनेका दावा किया है; पर ऐसा करते हुये उनसे अनजानमें जैन-धर्म, इस्लाम, ईसाई-मजहब और खुद हिन्दू-धर्मके अर्थका अनर्थ हो गया है। जिन्हें इन महान धर्मोंकी थोड़ी भी वाकफियत है वे सहज ही देख सकते हैं कि इन महान सुधारकसे किस तरह भूलें हो गई हैं। उन्होंने दुनियाके सबसे ज्यादा सहनशील और उदार धर्मको बिलकुल तंग बना डालनेकी कोशिश की है और खुद गो कि मूर्ति भंजक थे, तो भी उनकी कोशिशोंका फल हुआ है सूक्ष्मसे सूक्ष्म रूपमें मूर्ति-पूजाकी स्थापना होना। क्योंकि उन्होंने वेदके एक-एक अक्षरको ईश्वर स्वरूप बना दिया है और इस जमानेके विज्ञानके हरएक तथ्य वेदमें थे, यह साबित करनेकी कोशिश की है। आज आर्य-समाजकी जो इतनी इज्जत है, वह मेरी नाकिस रायमें, सत्यार्थ-प्रकाशकी शिक्षाके गुणके कारण नहीं बल्कि उसके संस्थापकके महान और उदात्त शीलकी बदौलत है। जहाँ-जहाँ आप आर्य-समाजको देखेंगे वहाँ-वहाँ चेतना और प्राण दिखाई देगा। ऐसा होते

हुए भी संकुचित दृष्टि और विवाद प्रिय स्वभाव होनेके कारण दूसरे फिरकेके लोगोंके साथ और जब वे न मिलें तो आपसमें झगड़ा करते हैं।

स्वामी श्रद्धानन्दजीमें इस जोशका बहुत कुछ अंश है। पर इन तमाम दोषोंके होते हुये भी मैं उन्हें ऐसा नहीं समझता जो समझाये न समझे। मुमकिन है कि आर्य-समाज और स्वामी श्रद्धानन्दजीका जो खाका मैंने यहां खींचा है, उससे वे नाराज हों। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि मेरे दिलमें उनका दिल दुखानेकी जरा भी इच्छा नहीं है। मैं आर्य-समाजियोंको चाहता हूं; क्योंकि मेरे कितने ही साथी आर्य-समाजियोंमें हैं। स्वामीजीको तो मैं उन्हीं दिनोंसे चाहने लगा हूँ, जब मैं दक्षिणी अफ्रीकामें था। हाँ, अब मैं उन्हें ज्यादा अच्छी तरह पहचानने लगा हूँ। पर इससे मेरा प्रेम उनके प्रति कम नहीं हो पाया है। मेरा प्रेम ही मुझसे यह कहलवा रहा है।

श्री जयरामदास

मुझे जिनके बारेमें चेतावनी दी गयी है उनमें सबसे आखिरी नम्बर है श्री जयरामदास और डा० चोइथरामका। जयरामदासके नामपर तो मैं कसम खा सकता हूँ। इनसे ज्यादा सच्चा आदमी मुझे जिन्दगीमें अभी नहीं मिला। जेलमें इनके चाल-चलनपर हम लोग लट्टू थे। इनकी नेकचलनीकी सीमा न थी। इनके दिलमें मुसलमानके खिलाफ रत्तीभर भाव नहीं। डा० चोइथरामसे मेरी जान-पहचान पहलेसे है, पर मैं उन्हें पूरी तरहसे नहीं जानता। परन्तु जितना मैं उन्हें जानता हूँ उतनेपरसे मैं उनका परिचय सिवा इसके दूसरी तरह देनेसे इन्कार करता हूँ कि वे हिन्दू-मुस्लिम एकताके हामी हैं। अभी यह फेहरिस्त खतम नहीं हुई है। जो कुछ महसूस होता वह यह है कि इन तमाम हिन्दुओं और आर्य-समाजियोंको अब भी हिन्दू-मुस्लिम एकताकी ओर जीत लेनेकी जरूरत रही हो तो फिर 'हिन्दू-मुस्लिम-एकता' इन लफ्जोंके मेरे लिये कुछ मानी नहीं रह जाते और मुझे अपनी इस जिन्दगीमें ऐसी एकता प्राप्त करनेके बारेमें नाउम्मेदी ही रखनी चाहिये।

मौ० अब्दुलबारी

पर इन मित्रोंपरके ये इल्जाम ही इसका सबसे बुरा हिस्सा नहीं है। जैसी हिन्दुओंके बारेमें चेतावनियाँ मुझे दी गई हैं वैसी ही मुसलमानोंके विषयमें भी मिली हैं। यहाँ मैं सिर्फ तीन ही नाम पेश करूँगा। मौलाना अब्दुल बारी साहब एक धर्मोन्मत्त हिन्दू-द्वेषीके रूपमें मेरे सामने पेश किये गये हैं। मुझे उनके कितने ही लेख दिखाये गये हैं, जिन्हें मैं समझ नहीं सकता। मैंने तो इस विषयमें उनसे पूछ-ताछ भी नहीं की क्योंकि वे तो खुदाके ऐसे भोले-भाले बच्चे हैं। मैंने उनके अन्दर किसी तरहका छल-कपट नहीं देखा है। बहुत बार वे बिना विचारे कह डालते हैं कि जिससे उनके दिलोजानी दोस्तोंको परेशानी उठानी पड़ती है। पर वे कड़वी बातें कह डालनेमें जितनी जल्दी करते हैं उतनी जल्दी अपनी भूलकी बातोंकी माफी

मांगनेके लिए भी तैयार रहते हैं। जिसवक्त जो बात बोलते है उसवक्त वे सच्चे दिलसे बोलते हैं। उनका गुस्सा और माफी दोनों सच्चे दिलसे होती है। एक बार वे मौलाना मुहम्मदअलीपर बिना योग्य कारणके बिगड़ बैठे। मैं उस वक्त उनका मेहमान था। उनके मनमें लगा कि मुझे भी कुछ सख्त शब्द कह डाला। उसी वक्त मौलाना मुहम्मदअली और मैं कानपुर जानेके लिए स्टेशन जानेकी तैयारीमें थे। हमारे बिदा हो जानेके बाद उन्हें पता लगा कि उन्होंने हमारे साथ बेजा बरताव किया। मौ० मुहम्मद अलीके साथ सचमुच बे-जाइयतकी थी, मेरे साथ नहीं। पर उन्होंने तो हम दोनोंके पास कानपुरमें अपनी तरफसे कुछ लोगोंको भेजकर हम लोगोंसे माफी मांगी। इस बातसे वे मेरी नजरोंमें ऊंचे उठ गये। ऐसा होते हुए भी मैं कबूल करता हूँ कि मौलाना साहब किसी वक्त एक खतरनाक दोस्तका काम दे सकते हैं। पर मेरा मतलब यह है कि ऐसा होते हुए भी वे दोस्त ही रहेंगे। उनके पास 'खानेके और दिखानेके और' यह बात नहीं। उनके दिलमें कोई दांव-पेंच नहीं। ऐसे दोस्तमें हजारों ऐब होते हुए भी मैं उनकी गोदीमें अपना सिर रखकर धामिजाज सोऊंगा। क्योंकि मैं जानता हूँ कि वे छिपकर वार कभी नहीं करेंगे।

अली-निरादर

ऐसी ही चेतावनी मुझे अली भाइयोंके बारेमें दी गयी है। मौ० शौकतअली तो बड़ेसे बड़े शूरवारोंमेंसे एक हैं, उनमें कुरबानीका अजीब माद्दा है और उसी तरह खुदाके मामूलीसे मामूली मखलूकको चाहनेकी उनका प्रेम-शक्ति भी अजीब है। वे खुद इस्लामपर फिदा हैं; पर दूसरे मजहबोंसे वे नफरत नहीं करते। मौ० मुहम्मदअली इनके दूसरे कालिब हैं। मौ० मुहम्मदअलीमें मैंने बड़े भाईके प्रति जितनी अन्योन्य निष्ठा देखी है उतनी कहीं नहीं देखी। उनकी बुद्धिने यह बात तय कर ली है कि हिन्दू-मुसलमान-एकताके सिवा हिन्दुस्तानके छुटकारेका दूसरा उपाय नहीं। उनका 'पान-इस्लाम-वाद' हिन्दू-विरोधी नहीं। इस्लाम भीतर और बाहरसे शुद्ध हो जाय और बाहरके हर किस्मके हमलोंसे संगठित होकर टक्करें ले सके ऐसी स्थिति देखनेकी तीव्र आकांक्षापर कोई कैसे एतराज कर सकता है। कोकोनाडाके उनके भाषणका एक हिस्सा बहुत ही काबिल-एतराज बतलाकार मुझे दिखाया गया था। मैंने मौलानाका ख्याल उसपर खींचा, उन्होंने उसी दम कबूल किया कि हाँ, वाकई यह भूल हुई। कुछ दोस्तोंने मुझे खबरकी है कि मौ० शौकतअलीके खिलाफत परिषद् वाले भाषणमें कितनी ही बातें काबिल एतराज हैं। यह भाषण मेरे पास है; परन्तु उसे पढ़नेका समय मुझे न मिल पाया। मैं यह जरूर जानता हूँ कि यदि उसमें कोई सचमुचमें ऐसी बात होगी जिससे किसीका दिल दुखित हो, तो मौ० शौकत-अली ऐसे लोगोंमें पहले शख्स हैं जो उसको दुरुस्त करनेके लिए तैयार हैं।

यह बात नहीं कि अली भाई दोषोंसे खाली हों। मैं खुद भी दोषोंसे भरपूर हूं। इससे इन भाइयोंकी दोस्तीकी खोज करने और उसकी कीमत समझनेमें मैं हिचकिचाता नहीं। अगर उनके अन्दर कुछ ऐब हैं तो उनसे ज्यादा गुण भी हैं

और मैं उनके ऐबोंके रहते हुए भी उन्हें चाहता हूँ। जिस प्रकार ऊपर बताए मित्रोंका त्याग करके मैं हिन्दुओंके अन्दर कोई पुख्ता काम नहीं कर सकता, उसी प्रकार मैं इन मुसलमान दोस्तोंके बिना एकताके लिए मुसलमानोंमें भी काम करनेकी आशा नहीं रख सकता। यदि हममेंसे बहुतेरे लोग पूर्णताको पहुँचते होते तो हमारे अन्दर झगड़े होते ही क्यों? पर हम सब अपूर्ण प्राणी हैं और इसीसे हम सबको एक दूसरेकी अनुकूल बातें खोजकर और ईश्वरका भरोसा रखकर एक ध्येयके लिए मरना चाहिये।

हमारे कितने ही उम्दासे उम्दा लोगोंके दिलमें वहम और अविश्वासका वायुमण्डल दूर करनेके लिए मुझे कुछ खास-खास व्यक्तियोंके बारेमें लिखना पड़ा। मुमकिन हो कि मेरा अन्दाज पाठकोंको न जंचा हो। जो कुछ हो; लेकिन यह जरूरी था कि मैं अपना अन्दाज पाठकोंके सामने पेश कर दूँ। भले ही उनका ख्याल मुझसे जुदा हो।

सिन्धकी मिसाल

ऐसा गहरा अविश्वास असली सत्यकी खोजको प्रायः गैर-मुमकिन कर देता है। डा० चोइथरामकी तरफसे मुझे खबर मिली है कि सिंधमें एक हिन्दूके धर्मान्तरकी जब्रन कोशिश की गयी। उस शख्सने जब धर्मान्तर करनेसे इन्कार किया तब उसके मुसलमान साथियोंने उसे जानसे मार डाला। यदि यह खबर सच हो तो सचमुच इसे सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यह खबर मिलते ही मैंने सेठ हाजी अब्दुल्ला हारूंको तार देकर हालत पूछी। उन्होंने बड़ी मुहब्बतके साथ तुरन्त जवाब दिया कि कहते हैं उस शख्सने खुदकशी की है। फिर भी वे ज्यादा तहकीकात कर रहे हैं। मुझे आशा है कि इस मामलेमें हमको सच्ची खबर मिलकर रहेगी। मैंने तो इस बातका जिक्र यहाँ इसलिए किया है कि जहाँ आस-पास अविश्वास फैल रहा हो वहाँ काम करते हुए कितनी दिक्कतोंका सामना करना पड़ता है। एक और वाकया भी है; लेकिन जबतक उसके मामलेमें ज्यादा एतबारके लायक तफसील न मिलेगी तबतक मैं उसका जिक्र नहीं करूँगा। मेरी दरख्वास्त इतनी ही है कि हिन्दू या मुसलमान किसीके भी खिलाफ अगर कोई बात लोग सुनें तो एक तो वे खुद शान्त रहें और दूसरे उसके संबन्धमें जब बात करें तो उतनी ही, वैसी ही करें जो साबित की जा सके। मैं अपनी तरफसे यह वादा करता हूँ कि ऐसी जो कुछ खबरें मुझे मिलेंगी उनकी फिर वे कितनी ही मामूली और फजूल क्यों न हों, मैं काफी तहकीकात करूँगा और उतना जरूर किये रहूंगा जितना एक शख्सके किये हो सकता है। मुझे उम्मीद है कि बहुत ही थोड़े समयमें हमारे पास काम करनेवालोंकी फौज तैयार हो जायगी, जिसके सभ्योंका फर्ज यह होगा कि ऐसी हर एक शिकायतकी जांच करें, फरियादीका इन्साफ करावें और ऐसी तजबीज करें कि जिससे आयन्दा ऐसे झगड़े खड़े होनेके कारण दूर हो जायँ।

बंगालमें अत्याचार

बंगालसे खबरें आ रही हैं कि वहाँ हिन्दू-स्त्रियोंपर ज्यादती हो रही है। वे अगर आधी सच हों तो भी उनसे क्षोभ पैदा होता है। यह जानना कठिन है कि आज कल चारों ओर ऐसे जरायम क्यों फूट निकले हैं। उसी तरह उन हिन्दुओंके संबन्धमें भी जबान सँभालकर बोलना कठिन है, जो उन भ्रष्ट की गयी बहनोंके नाते-रिश्तेदार हैं। और उन कामान्ध होकर बेकसूर औरतोंपर हैवानकी तरह ज्यादती करनेवालोंकी पशुताके बारेमें क्या कहें? वहाँके मुसलमानोंको लाजिमी है कि वे इन अत्याचारियोंको खोज निकालें खास तौरपर सजा दिलानेके लिए नहीं, बल्कि इसलिए कि भरसक फिर ऐसी ज्यादतियां न होने पावें। दो-चार बदमाशोंको किसी कोने-कुचरेसे खोजकर पुलिसके सिपुर्द कर देना कोई बड़ी बात नहीं है। परन्तु इससे समाजमें ऐसे जरायमका होना बन्द नहीं होता। इसके लिए तो पूरे सुधारका कोई उपाय अखतयार करके उसके असली कारणोंकी ही जड़ काट डालनेकी जरूरत है। क्या हिन्दुओंमें और क्या मुसलमानोंमें ऐसे लोग जरूर हैं जो खुद नेकचलन हैं और ऐसे लोगोंके अन्दर काम करना मंजूर करेंगे। यही बात काबुलियों और पठानोंके जुल्मके बारेमें कही जा सकती है। काबुलियोंका इस बातसे हिन्दू मुसलमानके सवालके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है; पर हम अगर यह न चाहते हों कि अकेले पुलिसकी दयापर ही जिन्दा रहें तो ऐसे सवालोंको भी हमें हाथमें लेना होगा और उसका निबटारा करना होगा।

शुद्धि और तबलीग

परन्तु वह बात जो इन झगड़ोंकी जड़को पानीसे सींच रही है शुद्धि या धर्मान्तर करनेका मौजूदा तरीका है। मेरी रायके मुताबिक तो ईसाइयोंकी तरह और सबसे कम इस्लामकी तरह दूसरे मजहबवालोंको भ्रष्ट करके अपने मजहबमें मिला लेनेकी विधि हिन्दू धर्ममें है ही नहीं। ऐसा मालूम होता है कि इस बातमें आर्य-समाजियोंने ईसाइयोंकी नकल की होगी यह आजकलका तरीका मुझे बिलकुल अच्छा नहीं मालूम होता। इससे अबतक श्रेयके बजाय अ-श्रेय ही ज्यादा हुआ है। धर्मान्तर महज अपने दिलसे संबन्ध रखनेवाली और इन्सान तथा उसके सिरजनहारसे संबन्ध रखनेवाली बात है। फिर भी यह इतनी बाजारू चीज बना दी गयी है इसके द्वारा खास करके स्वार्थ-भाव जागृत किया जाता है। आर्य-समाजी उपदेशक जब दूसरे धर्मोंका खन्डन करनेके लिए खड़ा होता है तब उसे जो मजा आता है वैसा शायद किसी बातमें न आता होगा। मेरा हिन्दू धर्मका भाव तो मुझे यह शिक्षा देता है कि तमाम धर्म थोड़े-बहुत अंशमें सच्चे हैं। सबकी उत्पत्ति एक ही ईश्वरसे है। फिर भी सब धर्म अपूर्ण हैं। क्योंकि वे हमें अपूर्ण मनुष्यके द्वारा मिले हैं। सच्चा शुद्धि-कार्य तो उसे कहें कि हर शख्स—स्त्री हो या पुरुष—अपने-अपने धर्ममें रहकर पूर्णत्व प्राप्त करनेकी कोशिश करे। ऐसी स्थितिमें शील ही मनुष्यकी कसौटी है। अगर मनुष्य नीति और सदाचारमें आगे न बढ़ता हो तो फिर एक घरसे निकलकर दूसरे घरमें

जाने से क्या फायदा ? जहाँ हमारे घरमें रहनेवाले लोग ही हरदम अपने चाल-चलनमें ईश्वरका सरेदस्त इन्कार करते हों वहाँ मैं उस ईश्वरकी सेवाके लिए बाहरके लोगोंको भ्रष्ट करके अपने घरमें लानेकी कोशिश करूं (क्योंकि शुद्धि या तबलीगके माने यही होता है) तो ऐसी कोशिशके क्या मानी हो सकते हैं ? पहले अपने घरकी आग बुझावो यही कहावत इस समय दुनियाकी बातोंकी बनिस्बत धार्मिक बातोंमें ज्यादा सच साबित होती है ।

परन्तु ये मेरे निजी ख्यालात हैं । अगर आर्य-समाजियोंका यह ख्याल हो कि उनकी अन्तरात्मा उन्हें उसके लिये प्रेरित कर रही है तो उन्हें इस हलचलको चलानेका पूरा हक है । ऐसा अन्तर्नाद किसी भी तरहकी समयकी मर्यादा या उपयोगिताकी कैदको कबूल न करेगा और इतनी ही बातसे कि कोई आर्य-समाजी उपदेशक या मुसलमान मौलवी अपनी अन्तरात्माकी प्रेरणासे अपने धर्मका प्रचार करता हो, हिन्दू-मुस्लिम एकताको धक्का पहुँचता हो तो पक्का समझना चाहिये कि ऐसी एकता कोरी जबानी होगी, क्यों हम इन कामोंसे इतना घबरावें ? हाँ, वे काम, सचाई, ईमानदारीके साथ किये जाने चाहिये । अगर मलकाना राजपूतोंको फिर हिन्दू-धर्ममें शामिल होना था तो जब वे चाहें उन्हें ऐसा करनेका पूरा-पूरा हक था । परन्तु अपने धर्मका प्रचार करनेके लिए दूसरे धर्मोंकी निन्दा करनेकी प्रवृत्ति नहीं चलने दी जा सकती । क्योंकि इससे सहिष्णुता लोप हो जायगी । ऐसे प्रचारका मुकाबला करनेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि आमतौरपर उसकी निन्दा करें । हरएक हलचल प्रतिष्ठित होनेका स्वांग बनाती है; परन्तु जिस दम लोक-मत इस ढोंगकी पोल खोल देगा उसी दिन प्रतिष्ठाके अभावसे वह लोप हो जायगा । मैं सुनता हूँ कि आर्य-समाजी और मुसलमान लोग औरतोंको सरेदस्त भगा ले जाकर धर्मान्तर करानेकी चेष्टा करते हैं । मेरे सामने आगा-खानी साहित्यका ढेर पड़ा हुआ है । उसे गौरके साथ पढ़नेकी फुरसत अभी मुझे न मिल सकी । पर मुझे यकीन दिलाया गया है कि उसमें हिन्दू धर्मकी टूटी-फूटी बातें भरी हुई हैं । मैं जितना कुछ पढ़ पाया हूँ उससे मैं इतना तो देख सका हूँ कि उसने श्रीमान आगाखानको हिन्दू अवतार बताया है यह जानना जरूर मजेदार होगा कि खुद श्रीमान आगाखान इसके बारेमें क्या ख्याल करते हैं । कितने ही खोजे लोग मेरे दोस्त हैं । उनसे मैं सिफारिश करता हूँ कि वे इस साहित्यको जरूर पढ़ जावें । एक महाशयने मुझसे कहा है कि आगाखानी—सम्प्रदायके कितने ही कर्त्ता बेपढ़े गरीब हिन्दुओंको रुपया उधार देते हैं और पीछेसे कहते हैं कि अगर तुम इस्लाममें मिल जाओ तो रुपया तुमसे न लिया जायगा । इसे मैं खिलाफ कानून लालच देकर धर्म-भ्रष्ट करनेका जुर्म कहूँगा । परन्तु सबसे ज्यादा बुरा तरीका तो देहलीके एक साहबका है इन्होंने एक छोटीसी पुस्तक बनाई है । उसे मैं शुरूसे आखिरतक देख गया हूँ । इसमें इस्लामके उपदेशकोंको इस बातकी मुफस्सिल हिदायतें दी गयी हैं कि वे किस तरह इस्लामका प्रचार करें । इसकी शुरुआत इस ऊंचे उसूलको लेकर की गयी है कि इस्लाम खुदाकी

एकताका प्रचारक है। इस महा-सिद्धान्तका प्रचार लेखकके कथनके अनुसार हर तरहके मुसलमानको बिना किसी ऊंच-नीचके भेद-भावके करना जरूरी है। जासूसों-का एक छिपा मुहकमा खोलनेकी हिमायत की गई है। उसके लोगोंका काम होगा कि वे गैरमुस्लिम आबादीमें किसी बहाने जरूर जावें। इस बातपर जोर दिया गया है कि वेश्यायें, गाने-बजानेका पेशा करनेवाली औरतें, फकीर, सरकारी नौकर, वकील, डाक्टर, कारीगर सब लोग इस मुहकमेमें शामिल हों। अगर इस प्रकारके धर्म-प्रचारकी इज्जत लोगोंमें होती रहे तो इस्लामके पैगम्बरके महान पैगामका अनर्थ करनेवाले ऐसे वेषधारी बक-उपदेशकों (उन्हें मैं सच्चा प्रचारक न कह सकूँगा) की छिपी करतूतोंसे एक भी हिन्दू-घर सही-सलामत न रह पावेगा। प्रतिष्ठित हिन्दुओंके मुँहसे मैंने यह सुना है कि यह किताब निजामके राज्यमें बहुत पढ़ी जाती है और उसमें सुझाये तरीकोंके मुताबिक वहाँ काम भी खूब हो रहा है।

एक हिन्दूकी हैसियतसे मुझे अफसोस होता है कि ऐसे तरीके जिनकी नैतिक श्रेष्ठतामें शक है, एक नामी उर्दू लेखककी तरफसे फैलाये जा रहे हैं जिनके पाठकोंकी संख्या बहुत बड़ी है। मेरे मुसलमान मित्र मुझे बताते हैं कि कोई प्रतिष्ठित मुसलमान उसमें बताये तरीकोंको पसन्द नहीं करता है। पर सवाल यह नहीं है कि प्रतिष्ठित और पढ़े-लिखे मुसलमान उस किताबके बारेमें क्या ख्याल करते हैं, बल्कि सवाल तो यह है कि मुस्लिम जनताका एक बहुत बड़ा हिस्सा उनको मानता और उनके मुताबिक चलता है कि नहीं।

पंजाबके अखबार

पंजाबके अखबारों एक हिस्सा तो बिल्कुल बे-हया हो बैठा है। उसके बाज-बाज लेख तो बिल्कुल गन्दे होते हैं। ऐसे कितने जुमलोंको पढ़ जानेकी महाव्यथा मैंने सहन की है। एक तरफ आर्य-समाजी या हिन्दू-पत्र और दूसरी तरफ मुसलमान लेखक इन अखबारोंके संचालक हैं। दोनोंने एक दूसरेको गालियाँ देने और एक दूसरेके मजहबकी बुराई करनेकी मानो शर्त बद ली है। मैं सुनता हूँ कि इन अखबारोंके खरीददारोंकी संख्या काफी बड़ी है। प्रतिष्ठित लोगोंके वाचनालयोंमें भी ये अखबार जाते हैं। मैंने यह भी सुना है कि लोगोंकी गालियों और निन्दाके उद्योगको सरकारकी शह है। इस बातपर भरोसा करते हुए मैं झिझकता हूँ। पर यदि जरा देरके लिए यह मान लें कि यह तमाम बातें सच हैं तो पंजाबी, भाई-बहनोंको उचित है कि वे अपने प्रान्तकी इस बढ़ती हुई बदनामीको बिना विलम्ब रोकनेका उद्योग करें।

मैं समझता हूँ कि मैं इन दोनों जातियोंके झगड़ोंकी पुरानी और नई, तमाम वजूहातकी छान-बीन कर चुका हूँ, अब झगड़ेके उन दोनों कारणोंको जांच करें जो सदासे चले आ रहे हैं।

गो-वध

पहला है गो-वध। गो-रक्षाको मैं हिन्दू-धर्मका प्रधान अंग मानता हूँ—प्रधान

इसलिए कि वह ऊंचे दरजेके लोग तथा आम लोग दोनोंके लिए सामान्य है फिर भी इस मामलेमें जो हमारा रोष हमेशा मुसलमानोंपर ही रहता है वह मेरी समझमें किसी तरह न आ पाया। अंग्रेजोंके लिए रोज कितनी ही गायें कटती हैं, पर उसके लिए हम शायद ही चूँ भी करते हों। पर जब कोई मुसलमान गायको कत्ल करता है तब हम आग-बबूला हो उठते हैं। गायके नामपर जितने झगड़े हुए हैं उनमें सिवाय पागलपनके और फजूल शक्ति-क्षयके और कुछ न था। इससे एक गायकी भी रक्षा न हुई। उल्टे मुसलमान ज्यादा हठीले हुए हैं और फलतः गायें ज्यादा कटने लगी हैं। मैंने देखा है कि १९२१ ई० में मुसलमानोंकी अपनी राजी-खुशीसे और उदारताकी कोशिशोंसे जितनी गायें बची थीं उतनी पिछले दस-बीस वर्षोंमें हिन्दुओंकी कोशिशोंसे न बची होंगी। गो-रक्षाकी शुरुआत तो हमीको करनी होगी। हिन्दुस्तानमें मवेशियोंकी जो दुर्गति है वह दुनियाके किसी हिस्सेमें नहीं है। हिन्दू गाड़ीवानोंको अपने थके माँदे लोथ जैसे बैलोंको बेरहमीसे आर चुभोते हुए देखकर मेरी आँखोंसे आसू बह निकले हैं। हमारी आधापेट रहनेवाली मवेशी हमारी जागती बदनामी है। गायोंकी गरदनें इसलिए मुसलमानकी छुरीका शिकार होती हैं कि हम हिन्दू खुद गो-विक्रय करते हैं। ऐसी हालतमें एक मात्र पुख्ता और जेबा देनेवाला उपाय यही है कि हम मुसलमानोंके हृदयको जीत लें और गायकी रक्षाका काम उनकी शराफतपर छोड़ दें। गो-रक्षा मण्डलियोंको पशुओंको खिलाने-पिलानेकी और, उनपर गुजरनेवाली घातक ज्यादतियोंकी तरफ और चरागाहोंके दिनपर दिन होनेवाले लोपको अटकानेकी तरफ, मवेशियोंकी परवरिशकी तरफ, गरीब ग्वालोंसे उन्हें खरीद लेनेकी तरफ और आजकलकी पिंजरापोलोंकी आदर्श स्वावलम्बी दुग्धशालाएं (डेयरियाँ) बनानेकी तरफ ध्यान देना उचित है। अगर हिन्दू इनमेंसे एक भी बातको करते हुए चूकें तो वे ईश्वर और मनुष्यके सामने कसूरवार होंगे। यदि मुसलमानोंके द्वारा होनेवाले गो-बधको वे न रोक सकते हों तो इसका पाप उनके सिर न चढ़ेगा; पर जब गायकी रक्षाके लिए वे मुसलमानोंके साथ लड़ाई झगड़ा करते हैं तब वे अवश्य पापके-भागी होते हैं।

बाजे और मसजिद

मसजिदके सामने बाजे बजाने और अब तो हिन्दू-मन्दिरोंमें आरती करनेके मसलेपर मैंने प्रार्थनापूर्वक विचार किया है। गो-बधका सवाल जिस तरह हिन्दुओंके लिए कड़ुवा घाव है उसी तरह मुसलमानोंके लिए बाजे और आरती कड़ुवे घाव हैं और जिस तरह हिन्दू लोग मुसलमानोंसे जबरन गो-कशी बन्द नहीं करा सकते उसी तरह मुसलमान भी हिन्दुओंसे बाजे-बजाना या आरती करना तलवारके बलपर नहीं रुकवा सकते। उन्हें हिन्दुओंकी भलमनसाहतपर एतबार करना चाहिए। एक हिन्दूकी हैसियतसे मैं तो हिन्दुओंको जरूर सलाह दूँगा कि सौदा करनेकी भावना न रखते हुए मुसलमान भाइयोंके भावोंका आदर करें। और जहाँ-जहाँ हो सके वहाँ-वहाँ उन्हें निबाह लेना उचित है। मैंने सुना है कि कितने ही

जगह हिन्दू जान-बूझकर और मुसलमानोंको चिढ़ानेके लिए ठीक नमाज पढ़नेकी शुरुवातके ही वक्त आरती शुरू करते हैं। यह एक मूर्खतापूर्ण और मित्रता-विरोधका कार्य है। मित्रतामें यह बात मान ली जाती है कि मित्रके भावोंका खूब ख्याल रखा जाय। इसमें विचार करनेकी जरूरत नहीं रहती। फिर भी मुसलमानोंको हिन्दुओंके गाने-बजानेको जोरोजुल्म करके रोकनेकी इच्छा कभी न रखनी चाहिए। मार-पीटकी धमकी अथवा मार-पीटसे डरकर किसी कामको करना मानो अपने आत्म-सम्मान और धार्मिक भावनाको तिलांजलि देना है। पर जो शख्स कभी धमकीसे नहीं डरता वह खुद इसी तरह अपना चलन रखेगा जिससे दूसरेके चिढ़नेका मोका कमसे कम आवे और यह भरसक ऐसे मौकोंको टालेगा।

इस दृष्टिसे देखें तो इतनी बात साफ है कि हम अभी ऐसी अवस्थाको नहीं पहुँच पाये हैं जहाँ दोनों जातियोंमें किसी किस्मके ठहरावकी संभावना हो। गो-वध तथा बाजे बजानेके बारेमें मेरी समझमें तो किसी तरहका बदला या सौदा या ठहराव हो ही नहीं सकता। बिल्कुल अपनी-अपनी राजी-खुशीसे दोनों फरीकैनको इस दिशामें कोशिश करनेकी जरूरत है—अर्थात किसी भी तरहके ठहरावकी बुनियादके तौरपर इन बातोंका उपयोग नहीं किया जा सकता।

कौमी ठहराव

हाँ, राजनैतिक मामलोंके लिये किसी ठहराव या समझौतेकी सूरत होना अलबत्ते चाहने योग्य है, परन्तु मेरे पहलूसे तो दोनों जातियोंके बीच मित्रताकी भावना होना किसी भी पक्के ठहरावके पहलेकी अनिवार्य शर्त है। क्या आज दोनों जातियाँ सच्चे दिलसे यह माननेके लिये तैयार हैं कि दोनों कौमोंका किसी किस्मका फैसला—वह मजहबी हो या और तरहका—शरीरबलके द्वारा यानी एक दूसरेकी हड्डी तोड़ कर न करेंगे। मुझे तो यकीन हो चुका है कि जहाँ अगुआ लोगोंकी लड़ने की चाट न हो वहाँ सर्वसाधारण जनतामें लड़ने या सिर फुड़ौवल करनेकी प्रवृत्ति जराभी नहीं पाई जाती। इसीलिये अगर अगुआ लोग यह मंजूर कर लें कि सब लोग आपसके लड़ाई-झगड़ोंको जंगली और अधार्मिक समझकर, दूसरे तमाम सभ्य देशोंकी तरह इस देशसे बारह पत्थर बाहर करदें, तो साधारण जनता तुरन्त इस भावको अपना लेगी—इसमें मुझे जरा भी शक नहीं।

राजनैतिक मामलोंमें तो एक असहयोगीकी हैसियतसे मुझे इस बातमें कोई दिलचस्पी नहीं। पर आयन्दा समझौतेके लिये मैं चाहता हूँ कि बहुसंख्यक यानी बड़ा फरीक होनेके कारण हिन्दुओंको उचित है कि वे बदले या सौदेका ख्याल न रखते हुये हकीम अजमल खाँ जैसे किसीके हाथमें कलम सौंप दें और वे जो फैसला करदें उसे सिर झुका कर मंजूर करलें। सिखों, ईसाइयों, पारसियों आदिके बारेमें भी मैं वैसा ही निपटारा करूँगा। मेरी नजरमें तो यही एक वाजिब, न्याय और सम्मान तथा शोभापूर्ण रास्ता है। यदि हिन्दू लोग जुदी-जुदी जातियोंके बीच एकता चाहते

हों तो उन्हें छोटी-छोटी आमियोंपर विश्राम रखनेकी हिम्मत पैदा करना जरूरी है। दूसरी किसी भी बुनियादपर किया हुआ समझौता मुंह में कहीं न कहीं खटाई जरूर रक्खेगा। सर्वसाधारण जनताको न तो धारा सभामें बैठना है न म्युनिसिपल कौन्सिलर होना है और अगर हम सत्याग्रहके शस्त्रका यथार्थ उपयोग करना जान गये हों तो हम जानते हैं कि किसी भी अन्यायी हाकिमपर वह हथियार उठाया जा सकता है और उठाया ही जाना चाहिये—फिर भले ही वह हाकिम हिन्दू हो या मुसलमान अथवा किसी और कौमका हो। उसी प्रकार न्यायी हाकिम अथवा प्रतिनिधि हमेशा और एक समान अच्छा होता है। फिर भले ही वह हिन्दू हो या मुसलमान! हमें जातिकी भावनाको आखिरकार छोड़ना ही होगा। इसलिये बहुमतको खुद आगे बढ़कर कम तादादवालोंको अपनी नेकनीयतीका यकीन करा लेना चाहिये। हर किस्म-का समझौता हमेशा उसी समय होता है जब कि बहुमतवाला फरीक अल्पमतवालेके जवाबकी राह देखे बिना कदम आगे बढ़ावे।

सरकारी महकमोंकी नौकरियोंके बारेमें मैं तो मानता हूँ कि कौमी—तअस्सुबके भावोंको अगर इस प्रदेशमें भी घुसने देंगे तो हमारे तंत्रमें यह बिल्कुल घातक साबित होगा। यदि राजतंत्रको सुचारु रूपमें चलाना हो तो सबसे काबिल लोगको ही उसमें रखना चाहिये। हाँ उनमें दलादली या पक्षपात न होना चाहिये। अर्थात् हमें यदि पांच इंजीनियरकी जरूरत हो तो हर जातिमेंसे एक एक इंजीनियर लेनेका तरीका ठीक न होगा। बल्कि सबसे ज्यादा काबिल पाँच जनोंको ही वह मिलनी चाहिये। फिर चाहे पांच पारसी हों या मुसलमान सबसे निचले दरजेकी जगहोंपर, जरूरी मालूम हो तो, जुदी-जुदी जातियोंके एक निष्पक्ष मन्डलकी निगरानीमें एक इम्तहान लेकर उसके नतीजेके अनुसार भरती की जाय।

परन्तु इन नौकरियोंका बँटवारा हरएक कौमकी तादादके लिहाजसे हरगिज न होना चाहिये। प्रजासत्तात्मक राज्यमें उन जातियोंके लिये जो तालीममें पिछड़ी हुई हैं तालीम जैसी बातमें जरूर खास रिआयतकी जाय। यह बहुत आसान बात है। पर जिन लोगोंको बड़े बड़े सरकारी पदों पर काम करनेकी महत्वाकांक्षा है उनके लिये आवश्यक इम्तहानोंमें पास होना लाजिमी होना चाहिये।

मेरी श्रद्धा

मेरे नजदीक तो आज देशके सामने एक ही मसला ऐसा है जिसका निबटारा तुरन्त होना चाहिये। वह है हिन्दू-मुसलमानका। मैं श्री जिनाकी रायका बिल्कुल कायल हूँ कि हिन्दू-मुसलमान एकताके ही मानी स्वराज्य है। जबतक इस दुःखी देश में हिन्दू-मुसलमानकी एक दिली हमेशाके लिये नहीं होती तब तक मुझे तो कोई अच्छा फल मिलने की उम्मीद नहीं दिखाई देती। मैं यह भी मानता हूँ कि ऐसी एकता जल्दी स्थापित की जा सकती है। क्योंकि यह बिल्कुल कुदरती और जीवनकी तरह जरूरी है और क्योंकि मनुष्य स्वभावपर मुझे विश्वास है। मुसलमान हरएक बातके लिये

जवाबदेह होंगे। खुद मेरा ऐसे मुसलमानोंके समूहसे सामना पड़ा है जिन्हें बुरा कह सकते हैं। फिर भी मुझे एक भी ऐसा मौका याद नहीं पड़ता जिसमें उनके साथ अपने व्यवहारके लिए कभी पछताना पड़ा हो। मुसलमान लोग बहादुर हैं, दर्यादिल हैं। जिस वक्त उनके दिलसे शक निकल जायगा उसी दम वे विश्वास करने लगेंगे। फिर हिन्दू खुद जहाँ काँचके मकानोंमें रहते हों वहाँ उन्हें अपने मुसलमान पड़ोसीके घरपर पत्थर फेंकनेका कोई अधिकार नहीं। जरा गौर करके देखिये कि हम खुद दलित जातियोंपर क्या-क्या जुल्म ढहाते हैं और अब भी ढहा रहे हैं। यदि काफिर शब्द नफरतसे भरा हुआ है तो चाण्डालमें कितना तिरस्कार है? पर दलित जातियोंके साथ हम जो सलूक कर रहे हैं उसकी मिसाल दुनियाके किसी मजहबसे नहीं मिलती। अफसोसकी बात तो यह है कि यह बदसलूकी अबतक जारी है। जरा वाईकोमपर नजर फेंकिए न! इन्सानियतके हकके श्री गणेश तकके लिये कैसा संग्राम छिड़ा हुआ है। ईश्वर सीधे रास्ते सजा नहीं देता। उसकी गति न्यारी है। कौन कह सकता है कि हमारे आजके तमाम दुःख इस घोरतम पापके फल न होंगे? इस्लामकी तवारीख-में यदि इस्लामकी नैतिक ऊँचाईमें कहीं-कहीं खामी दिखाई देती है तो उसके बजाय उसके चमकीले सफोंकी भी कमी नहीं है। पर इस्लाम उसकी तरक्की और बड़ाईके दिनोंमें भी ऐसा नहीं था जो कि दूसरेके मजहबको गवारा न कर सके। सारी दुनि-याको उसने अपने बड़प्पनसे चकित कर दिया था। जब कि पश्चिम अंधेरेमें गोता खा रहा था तब पूर्व दिशाके आकाशमें एक चमकीला सितारा निकला और उसने दुःख-पीड़ित दुनियाको रोशनी दी, दिलासा दिया। इस्लाम कोई झूठा धर्म नहीं है। हिन्दू लोग आदरके साथ उसका अध्ययन कर देखेंगे तो उन्हें दिखाई देगा और मैं जिस तरह उसे चाहता हूँ उसी तरह वे भी चाहेंगे। यदि वह इस देशमें वहशियाना और मजहबी पागलपनसे भरा हुआ हो गया है तो इस तरह उसे विकृत बनानेमें हमारा हिस्सा कुछ कम नहीं है। अगर हिन्दू लोग अपने घरको ठीकठाक कर लें तो इस बातमें जरा भी शक नहीं कि इस्लाम भी उसका ऐसा ही जवाब देगा जो उसकी पुरानी उदार परम्पराके जैसा होगा। सारी हालतकी कुंजी हिन्दुओंके हाथमें है। अगर हम अपने डरपोकपन और नामर्दीको खदेड़ देंगे, हम दूसरोंपर विश्वास करने लायक बहादुर बनेंगे तो सब लोग अच्छे हो जायँगे।

हिन्दी-नवजीवन
१ जून, १९२४

❃

आर्य-समाजका विरोध

आगराके आर्य-समाजकी तरफसे मुझे नीचे लिखा तार मिला है :—

"आर्य-समाज, ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्दजी सत्यार्थ-प्रकाश और शुद्धि-आन्दोलनके बारेमें आपने जो बड़े उदाहरण प्रगट किये हैं उनसे आगरा आर्य-समाज अपना विरोध प्रगट करता है। उसे विश्वास है कि आर्य-समाजके सिद्धान्तोंका पूरा परिचय न होनेके कारण अनजानमें वे लिखे गये हैं। (वह) आपसे सादर प्रर्थना करता है कि आप अपने विचारोंपर फिरसे विचार करें और उसके द्वारा जो अनर्थ होनेकी सम्भावना है उसे दूर करें।"

मैं इस तारको इसलिए छाप रहा हूँ कि मुझे निश्चय है कि आगरा-समाज, आर्य-समाजकी रायको बहुत कुछ प्रकट करता है। उसके उत्तरमें मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मैंने समाज या ऋषि दयानन्द या स्वामी श्रद्धानन्दजीके विषयमें एक भी शब्द गहरा विचार किये बिना नहीं लिखा है। मैं अपनी रायको आसानीसे दबाकर रख सकता था। लेकिन जब कि उसका प्रस्तुत प्रकरणसे संबंध है तब सत्यका अवलम्बन करते हुए मैं ऐसा न कर सका। हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य हमारे आंखोंके सामने है। उसको दूर करनेकी जरूरत मुल्कके सामने गहरी है। वह वस्तु-स्थितिको ओर आंखे मूँदकर या उसे दबाकर नहीं की जा सकती। ऐसे मौकेपर जो बात सत्य दिखाई दे उसे कहना जरूरी हो जाता है—फिर वह चाहे कड़वी क्यों न लगे। लेकिन मैं इस बातका दावा नहीं कर सकता कि मुझसे भूल नहीं होती। अभीतक मुझे ऐसी कोई बात नहीं दिखाई दी जिससे मैं अपने खयालातको तब्दील करूँ। मैं अज्ञानकी बातको भी नहीं मान सकता। मैंने सत्यार्थ-प्रकाशको जरूर पढ़ा है। मैं स्वामी श्रद्धानन्दजीसे भी गहरा परिचय रखता हूँ। इसलिए मैंने वे बातें सोच समझकर ही लिखी हैं। पर अगर कोई आर्य-समाजी मुझे इस बातको समझा दे कि किसी बातमें मुझसे गलती हुई है तो मैं खुशीके साथ अपनी गलतीको कबूल करूँगा, उसके लिए माफी मांगूँगा और अपनी तमाम गलत बातको वापस ले लूंगा।

हिन्दी-नवजीवन
८ जून, १९२४

❀

हिन्दू-मुस्लिम एकता

हिन्दू-मुसलमानोंके तनाजेका सवाल हिन्दुस्तानके देश-सेवकोंके लिए सबसे बड़ा सवाल है। उसपर मैं अपना लम्बा-चौड़ा बयान पिछले सप्ताहमें जाहिर कर चुका हूँ। उसीका सार यहाँ दे देता हूँ। दोनों मजहबोंके लोग इस मामलेमें अपनी तरफसे अपना-अपना फर्ज किस तरह अदा करते हैं, इसका फैसला हमारी आयंदा नस्लें करेंगी। हिन्दू-धर्म और इस्लामके उसूल चाहे कितने ही अच्छे क्यों न हों, दोनोंकी जाँच करनेका सिर्फ एक ही साधन है—वह है आमतौरसे उनके अनुयायियों-पर होनेवाला उनका असर। अब उस वक्तव्यका सार सुनिये :—

कारण

(१) इस अनबनका दूरवर्ती कारण है मोपलोंकी बगावत,

(२) श्री फजली हुसेनका पंजाबके महकमोंमें, तालीममें मुसलमानोंकी तादादके मुताबिक सरकारी नौकरियोंका बँटवारा करना और फलतः हिन्दुओंकी तरफसे उसकी मुखालिफत होना,

(३) शुद्धि-आन्दोलन,

(४) सबसे ज्यादा सबल कारण है अहिंसासे जी ऊब उठना और इस अन्देशे-का होना कि अहिंसाकी ज्यादा दिनोंतक तालीम मिलनेसे दोनों कौमें बदला चुकाने और आत्म-रक्षा करनेके उसूलको भूल जायंगी,

(५) मुसलमानोंका गो-वध करना और हिन्दुओंका बाजा बजाना,

(६) हिन्दुओंका दब्बूपन और इस कारण हिन्दुओंकी मुसलमानोंपर ना-एतबारी,

(७) मुसलमानोंका गुण्डापन,

(८) हिन्दुओंकी मुन्सिफ-मिजाजीपर मुसलमानोंका अविश्वास।

इलाज

(१) इसके सुलझानेकी सबसे बढ़िया कुंजी है तलवार खींचनेके बजाय पंचायतमें फैसला करानेका रिवाज डालना।

ऐसा सच्चा लोक-मत होना चाहिए कि जिसके कारण फरियादी फरीकैनको कानून अपने हाथोंमें ले लेना गैर-मुमकिन हो जाय। हरएक दावा या तो खानगी पंचायतमें पेश हो, और अगर फरीकैन असहयोगके कायल न हों तो अदालतमें दावा दायर करें।

(२) यह डर और ख्याल कि घूँसेके बदलेमें घूँसा जमाना छोड़कर अहिंसा-भावसे कायरता उत्पन्न होगी अज्ञानके फल हैं। यह दूर होना चाहिए।

(३) अगर कौमके लोग एकताके कायल हों तो उनके अन्दर पड़ा हुआ बाहमी अविश्वास विश्वासके रूपमें बदल जाना चाहिए।

(४) हिन्दुओंको मुसलमान गुण्डोंसे न डरना चाहिए और मुसलमानको चाहिए कि अपने हिन्दू भाईको सताना अपनी शानके खिलाफ समझें।

(५) हिन्दुओंको यह न सोचना चाहिए कि हम मुसलमानोंसे जबन गो-कशी बन्द करा देंगे। वे मुसलमानोंके साथ दोस्ती करके यह विश्वास रखें कि वे खुद अपनी खुशीसे अपने हिन्दू पड़ोसीकी खातिर गो-कशी बन्द कर देंगे।

(६) और न मुसलमानको ही यह ख्याल करना चाहिए कि वे हिन्दुओंको जबर्दस्ती बाजा बजाने या आरती करनेसे रोक सकेंगे। उन्हें भी हिन्दुओंको अपना दोस्त बना लेना चाहिए और विश्वास रखना चाहिए कि वे मुसलमानोंके उचित भावोंका ख्याल रखेंगे।

(७) हिन्दुओंको चाहिए कि वे लोक-निर्वाचित संस्थाओंके प्रतिनिधित्वके सवाल-को मुसलमानों तथा दूसरी जातियोंपर छोड़ दें और वे जो फैसला करें उसको सच्चे दिलसे, शराफतके साथ मान लें। अगर मेरा बस चले तो हकीम अजमलखाँ साहबको पूरा सरपंच बना दूँ और उन्हें पूरी आजादी दे दूँ कि मुसलमानों, सिखों, ईसाइयों, पारसियों तथा दूसरी जातियोंसे सलाह मशवरा करें या जो बेहतर समझें करें।

(८) जब राष्ट्रीय सरकार हो उसमें नौकरियाँ लियाकतके हिसाबसे दी जायँ।

जुदा-जुदा कौमोंका एक मण्डल बनाया जाय और उसके द्वारा इम्तहान हो कर जो लायक साबित हों उन्हें जगहें दी जायँ।

(९) शुद्धि या तबलीगके काममें खलल नहीं डाला जा सकता; लेकिन दोनोंका काम सचाई और ईमानदारीके साथ होना चाहिए और सुशील लोग ही इस कामको करें। दूसरे मजहबपर कोई हमला न किया जाय। छिपे तौरपर किसी किस्मका प्रचार कार्य न किया जाय और न इसके लिए इनाम ही बांटे जायं।

(१०) गन्दे और गाली-गलौज भरे लेखों—खासकर पंजाबके कुछ अखबारोंकी बुरी प्रवृत्तिको रोकनेके लिए—उनके खिलाफ लोकमत तैयार किये जायं।

(११) अगर हिन्दू लोग अपना डरपोकपन न छोड़ें तो कुछ न होगा। उन्हींकी बाजी सबसे ज्यादा है और इसलिए उन्हींको सबसे ज्यादा त्याग करनेके लिए तैयार होना चाहिए।

लेकिन यह इलाज अमलमें किस तरह लावें? हिन्दुओंके इस खब्तको कौन दूर करे, कौन उन्हें इस बातका कायल करे कि गो-रक्षाका सबसे अच्छा तरीका है गायके प्रति अपने कर्तव्यका पालन करना, मुसलमान भाइयोंसे छेड़खानी करना नहीं और दीनके दीवाने मुसलमानोंको कौन समझावे कि जब कोई हिन्दू मसजिदके सामने बाजा बजाता हो तो उसका सिर फोड़ना धर्म नहीं, अधर्म है, सवाब नहीं, अजाब

है। इसके बाद हिन्दुओंको भी कौन इस बातको जहन-नशीन करे कि अगर इन लोक-निर्वाचित और मजाकिये संस्थाओंमें छोटी जातियोंके प्रतिनिधि ज्यादा भी रहें तो उसमें उनका बिगाड़ न होगा ? ये सवाल हैं जो यथार्थ हैं और इस उपायको अमलमें लानेकी कठिनाइयाँ जतलाते हैं।

पर उपाय एक-मात्र और रामबाण है कि तमाम मुश्किलात दूर करनी होंगी। सच पूछिये जो कठिनाई है वह स्पष्ट है, अगर सिर्फ मुट्ठी भर ही हिन्दू और मुसलमान ऐसे हों जिनका जिन्दा एतबार इस इलाजपर हो तो बाकी सब काम आसान है।

यही क्यों, बल्कि अगर कुछ इने-गिने हिन्दू ही हों या मुसलमान ही हों, जिनमें ऐसा विश्वास हो तो भी यह उलझन चुटकी बजाते सुलझ जाय। बस वे अपनेको इस कामको अर्पण करदें तो दूसरे लोग अपने आप उनका साथ देने लगेंगे। यदि सिर्फ एक ही फिरकेके लोग इस बातको मान लें तो भी काफी है। हाँ, वह मुश्किल जरूर ज्यादा है। यह काफी इसलिये है कि इस इलाजमें सौदागिरी-लेन-देन करने की जरूरत नहीं है। इसकी मिसाल लीजिये, हिन्दुओंको चाहिये कि वे गायके मामलेमें मुसलमानोंको तंग करना छोड़ दें और सो भी बिना इस बातकी आशा रखे कि मुसलमान इसपर क्या कार्रवाई करेंगे। प्रतिनिधित्वके सम्बन्धमें मुसलमानोंका जो कुछ मतालबा हो उसे भी वे मान लें, बदलेमें कुछ आशा रखे बिना और अगर मुसलमान लोग हिन्दुओंके बाजे बजाते हुए या आरतीको जबरन बन्द करनेपर जिद करें तो हिन्दू बराबर बाजे बजाते रहें, और एक-एक हिन्दू वहींपर मर मिटे, बिना हाथ उठाये। तब मुसलमानोंको शर्म खाकर देखते-देखते सीधे रास्तेपर आ जाना पड़ेगा। मुसलमान भी, अगर चाहें तो ऐसा ही कर सकते हैं और हिन्दुओंको शरमिन्दा करके उन्हें सीधे रास्तेपर ला सकते हैं। हाँ इसके लिये हमें विश्वास करनेकी हिम्मत होनी चाहिये।

किन्तु असली सूरतमें बात ऐसी न होगी, बल्कि इससे उलटा। यदि कार्यकर्त्ता लोग खुद अपने तई सच्चे हो जायंगे तो दोनों फरीक एक साथ एक-दूसरेकी ओर आने लगेंगे मगर बदकिस्मतीसे ऐसे कार्यकर्त्ता हमारे पास नहीं हैं। हमारे दिलोंपर विकारों और पहलेके बुरे ख्यालोंका ज्यादातर राज्य है। हर शख्स अपने हमदीनके ऐबों और बुराइयोंके छिपानेकी कोशिश करता है और इससे अविश्वास और सन्देहका दायरा हमेशा बढ़ता चला जाता है।

मैं उम्मीद करता हूँ कि आगामी महासमितिकी बैठकमें काम करनेका ऐसा तरीका हमलोग मालूम कर लेंगे जिससे इन तनाजोंका अन्त जल्द ही आ जायगा।

मुझे यह बताया गया है कि सरकारकी तरफसे इन तनाजोंको ताननेकी कोशिश हो रही है। मैं समझता हूँ कि ऐसा न होगा। मगर मान लीजिये कि अगर वह ऐसा ही कर रही है, तो बेशक हमारा काम है कि हम खुद अपनी तरफसे सचाई और ईमानदारीके साथ काम करके उनकी कोशिशोंको बेकार कर दें।

हिन्दी-नवजीवन

८ जून, १९२४

गुजराती आर्य-समाजियोंके प्रति

समस्त हिन्दुस्तानके आर्य-समाजोंके तार और पत्र मुझे मिले हैं। उसका जवाब मैं 'यंग-इंडिया' में दे चुका हूँ। गुजरातके आर्य-समाजी भी गुस्सा हुए हैं। मैं यह आशा जरूर रखता था कि वे तो मेरे अर्थका अनर्थ नहीं करेंगे; क्योकि शायद मेरी बातका मतलब ज्यादा समझते हैं। गुजरातियोंके पांच पत्र तो मैं पढ़ चुका हूँ, और भी अभी होंगे। उन्हें भी बहुत दुःख हुआ है। वे मुझे माफ करें। जो बात मुझे सच मालूम होती है उसे मैं सरल भावसे कहता हूँ। उससे बुरा माननेकी क्या जरूरत है? यह बात मेरी समझके बाहर है। किसीकी अप्रिय बातसे यदि हमें निरन्तर दुःख होता रहे तो फिर हममें सहिष्णुता कब और किस तरह आवेगी?

इन पाँचों पत्रोंमें मेरे साथ दलील करनेकी कोशिश बहुत कम की गई है। एक महाशय तो इतने गुस्सा हुए हैं कि मुझे आत्महत्या करनेकी सलाह देते हैं। वे लिखते हैं कि आपके द्वारा अगर लाभ पहुँचता हो तो भी देश उसे लेनेके लिए तैयार नहीं है। इसलिए इसके द्वारा आपसे प्रार्थना करता हूं कि अब राम-नामका भजन करके स्वर्ग प्राप्त करनेकी कोशिश करें। दूसरे लोग लिखते हैं कि मैं मुसलमानोंकी ही तरफदारी करता हूँ। इसके अलावा एक सज्जन अखबारोंसे लेकर हिन्दुओंके दुःखकी कहानी सुनाते हैं।

इन सब बातोंका बहुत कुछ जवाब मेरे 'यंग-इंडिया'में लिखे लेखमें आ जाता है। यहाँ इतनी बात और कहना चाहता हूँ कि यह सारा क्रोध असहिष्णुताको साबित करता है। एक दूसरेकी टीकाको सहन करनेकी शक्ति अभी हमारे अन्दर नहीं आई। सार्वजनिक जीवनमें यह बात बड़ी जरूरी है। हिन्दुओंपर जो मुसीबतें आती हों उनकी जाँच करनेके लिए मैं तैयार हूँ। अखबारोंमें छपनेवाली तमाम बातोंको माननेके लिए मैं तैयार नहीं। तमाम पाठकोंसे मैं कहता हूं कि वे उनका बहुतेरा हिस्सा सही न समझा करें। मेरे नाम पत्र भेजनेवाले भाई यदि मुसलमानी अखबारोंको पढ़ें तो देखेंगे कि उनमें कितने ही आक्षेप हिन्दुओंपर किए जाते हैं। हिन्दू लोग उसका क्या जवाब दे सकते हैं? हिन्दू अखबारोंकी तरह उनके अखबारोंमें भी बहुतेरी बातें बनावटी रहती हैं।

संगठनके द्वारा यदि हिन्दू अपने डरको छोड़ सकते हों, तो मैं संगठनमें शामिल हो सकता हूं। संगठनका अर्थ सिर्फ मैं अखाड़ा ही समझता हूँ। उसमें मैं नहीं पड़ता; क्योंकि मैं जानता हूँ कि इससे तुरंत बचाव नहीं हो सकता। उसके लिए ही निर्भयता प्राप्त करनी चाहिए। यदि वह अखाड़ेके द्वारा आ सकती हो तो हिन्दू शौकसे अखाड़े बनावें। मैंने यह तो कभी नहीं लिखा कि अखाड़े न बनाये

जायँ। गुजरातके पुराणी भाईके अखाड़ेका मैंने कभी निषेध नहीं किया। यही नहीं, बल्कि मैं अपनी पसंदगी ही बतलाई है। मेरे कहनेका मतलब सिर्फ इतना ही है कि मुसलमानोंके हमलेसे अपनेको बचानेका उपाय संगठन नहीं है। उससे उलटा झगड़ा बढ़ता है, घटता नहीं।

इस सवालका निपटारा इस तरह प्रश्न करनेसे हो सकता है। क्या हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य चाहते हैं? उसकी जरूरत है? अगर जरूरत हो और आवश्यक हो तो हिन्दुओंको प्रतीकारकी तैयारी छोड़नी पड़ेगी या सरकारकी तरह शरीर-बलके द्वारा मुसलमानोंका भी मुकाबिला करके, खूनकी नदियाँ बहाकर शान्ति प्राप्त करनी पड़ेगी। वह भी हिन्दू-मुसलमानके संबंधमें असंभव है। क्योंकि सरकारके बारेमें तो आशय यह है कि अंग्रेजोंके साथ दुश्मनी करके उन्हें यहाँसे बाहर निकाल दें। सम्भव है कि यह किसी तरह संभवनीय हो, क्योंकि अंग्रेज लोग इस देशको अपना मुल्क नहीं मानते। वे यदि घबड़ा उठें तो अपने घर चले जा सकते हैं। परन्तु मुसलमानोंका तो हिन्दुओंकी तरह यही देश है। उन्हें हिन्दुस्तानसे भगा देना बिल्कुल असंभव मानता हूँ। अतएव उनके साथ शान्ति-पूर्वक रहना ही एकमात्र उपाय है अथवा यह कि हम अपने जीवनकी बागडोर अंग्रेजोंके हवाले कर दें।

अब इस बातका विचार करें कि हमें करना क्या है? मुसलमान लोग हमारी स्त्रियोंका जो हरण करते हैं उससे हमें अपनेको बचाना है। यह बात तो खुद हरएक हिन्दू जानको हथेलीपर रखकर ही कर सकता है। तमाम मुसलमान तो स्त्रियोंका हरण करते ही नहीं? फर्ज कीजिये कि कितने ही लोग धर्मके नामपर ऐसा करते हैं। पर ऐसा हिन्दू स्त्रियोंका अपहरण क्या कितने ही हिन्दू स्वयं नहीं करते हैं। फर्क सिर्फ इतना ही है कि हिन्दू-हरणकर्त्ता अपनी विषय-वासनाकी तृप्तिके लिए ऐसा करते हैं। उनसे उनकी रक्षा करनेकी शक्ति अगर हमारे अन्दर न हो तो वह हमें कौन ला देगा? ऐसी व्याधियोंका स्थायी और तुरंत फलदायी इलाज मैंने बताया है। वह है सत्याग्रह अर्थात् बिना प्रहार किए खुद मर मिटना। यह तो स्त्री और बालक भी कर सकता है। क्या इसका अभ्यास तमाम हिन्दुओंको न करना चाहिए? प्रहार करनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिए शरीर-बल प्राप्त करनेकी जरूरत रहती है। मरनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिए आत्म-बलकी जरूरत है। यदि समझमें आ जाय तो आत्म-बल प्राप्त करना ज्यादा आसान है। जो शख्स अपंग हो वह भला शरीर बल कहाँसे लावेगा। आत्मा तो किसीकी अपंग होती ही नहीं। स्थिरताके साथ विचार करके मैं इतना तो सीख सकता हूँ कि यदि मेरे अजीजोंपर कोई हमला करे तो मैं उनकी हिफाजत करते हुए मर मिटूँ।

पर ऐसी तैयारी करनेके लिए मुझे शान्त स्वभावकी आदत डालनी चाहिए। मुझे अपने गुस्सेको रोककर उससे नवीन शक्ति पैदा करनी चाहिए। यदि ऐसा ही हो तो मुझे अखबारोंके लेखोंको पढ़कर आग-बबूला न हो जाना चाहिए। जिस जगह

रक्षा करनेको मेरा जी चाहे वहाँ मुझे पहुँच जाना चाहिए और वहाँ मर-मिटना चाहिए।

जिस प्रकार योद्धाओंकी सेना हो सकती है उसी प्रकार सत्याग्रहियोंका संघ हो सकता है। हजारों धारालाओंके लिए अकेले रविशंकर बस हो रहे हैं। रविशंकर तो अभी जीवित हैं। सैकड़ों रविशंकर पैदा होकर हमलोंसे निर्बल हिन्दुओंको बचा सकते हैं और ऐसा करते हुए निर्बलको बलवान भी बना सकते हैं।

यह तो हुई हमलोंकी बात। गायकी रक्षाके लिए तो हिन्दुओंको मुसलमानोंपर जबर्दस्ती तो हरगिज न करनी चाहिए। उनके दिलको जीतकर ही वे गायोंकी रक्षा करें।

मसजिदोंके सामने जहाँतक हो सके बाजे न बजावें, मुसलमानके साथ सलाह-मशवरा करें और मुसलमान अगर न मानें और बेजा तरीकेपर दबावें तो बिल्कुल न दबें, बराबर बाजा बजाते रहें और ऐसा करते हुए वहीं मर मिटें।

इसके अलावा जो और बातें हैं वे न-कुछ हैं। अर्थात् यह कि धारा-सभामें कितने मुसलमान जायँ। मैं तो जितने जाना चाहें सबको जाने दूँगा। आज तो मेरी आंखोंके सामने यह सवाल पैदा ही नहीं होता। जो असहयोगका पालन कर रहे हैं उनको धारा-सभा या सरकारी नौकरीका विचार करनेकी जरूरत ही नहीं रहती।

हिन्दी-नवजीवन
१५ जून, १९२४

आर्य-समाज

सारे हिन्दुस्तानके आर्य-समाजी भाइयोंने मुझपर क्रोधकी झड़ी लगाना शुरू कर दिया है। ऐसे तारों और खतोंका मेरे पास ढेर पड़ा हुआ है जिनमें आर्य-समाज, उसके महान् संस्थापक तथा स्वामी श्रद्धानन्दजीके संबन्धमें हिन्दू-मुसलमानवाले निवेदनमें किये मेरे उल्लेखका विरोध किया गया है। गाजियाबाद, मुल्तान, देहली, सक्खर, कराची, जागरान, सिकन्दराबाद, लाहौर, सियालकोट, इलाहाबाद वगैरह कितने ही मुकामोंसे ये खत और तार आये हैं। इनमें उन पत्रोंको गिनती नहीं की गई है जो कितने ही लोगोंने अपने तौरपर मुझे लिखे हैं।

इनमें ज्यादातर खत इस बातकी उम्मीद रखते होंगे कि मैं उनके उतराओंको छापूँ। कितने ही महाशयोंने तो मुझसे ऐसा करनेका इसरार भी किया है। मैं इन

सज्जनोंका मनोरथ पूरा करनेमें लाचार हूँ। इसलिये मैं उनसे माफी चाहता हूँ। कितने पत्रों और तारोंका मजमून पिछले हफ्तेमें प्रकाशित आगरेवाले तारसे मिलता-जुलता है। सबमें आर्य-समाज, सत्यार्थ-प्रकाश, ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्दजी और शुद्धि आन्दोलनपर उनके ख्यालमें मैंने जो हमला किया है, उसपर क्रोध प्रकट किया गया है। मुझे अफसोसके साथ कहना पड़ता है कि मेरे विचार अभीतक ज्योंके-त्यों बने हैं।

मेरे सामने जो बातें पेश की गई हैं, उन्हें मैंने गौरसे पढ़ा है। जिन लोगोंने आर्य-समाज-सम्बन्धी बातोंमें मेरे अज्ञानकी कल्पना की है उन्होंने शायद मेरे लिए खुलासाका रास्ता रहने देनेके लिए ऐसा किया है। पर बदकिस्मतीसे मैंने अपने लिए ऐसा कोई रास्ता रहने नही दिया है। मैं यह नहीं कह सकता कि सत्यार्थ-प्रकाश और आर्य-समाजके सामान्य सिद्धान्तोंसे मैं नावाकिफ हूँ। मैं इस तरह भी अपनी सफाई नहीं दे सकता कि आर्य-समाजके बारेमें पहलेसे ही मुझे कुछ वहम था। बल्कि मैंने पूरी श्रद्धा और भक्तिके साथ उसकी खोज की है।

ऋषि दयानन्दके शीलके प्रति मेरा हमेशा असीम आदर-भाव रहा और है भी। उनके ब्रह्मचर्यको मैंने अपने लिए हमेशा अनुकरण योग्य माना है। उनकी निर्भयताने मुझे हमेशा मुग्ध किया है। इसके अलावा अगर मेरे अन्दर कुछ भी प्रांतियताके भाव हों तो ऋषि दयानन्द मेरी ही तरह एक काठियावाड़ी थे, यह बात भी मेरे लिए कोई कम फख्रकी नहीं है। पर मेरा बस न था। मुझे अपनी इच्छाके खिलाफ उन नतीजोंपर पहुँचना पड़ा है और मैंने जाहिर भी उसी वक्त किया है जब ऐसा मौका पेश आया। अगर मैं इस मौकेपर उनका जिक्र करते हुए हिचकिचाता तो वह मेरी भारी कमजोरी होती। समाजी भाइयोंसे मेरी प्रार्थना है कि निर्मल भावसे प्रकट की गई मेरी रायपर गुस्सा होनेके बदले पहले वे मेरी टीकाको सीधे अर्थमें लें, उसकी छानबीन करें। अगर कहीं मेरी भूल होती हो तो मुझे दिखावें और अन्तको मेरी राय उनसे न मिले तो परमात्मासे प्रार्थना करें कि मुझे ज्ञान प्राप्त हो।

दो चिट्ठियोंमें मुझे चुनौती दी गई कि मैं अपने निर्णयोंके सबूत पेश करूँ। इसपर किसीको एतराज नहीं हो सकता और चन्द ही दिनोंमें अपने निर्णयोंकी पुष्टिमें सत्यार्थ-प्रकाशके वचन पेश करनेकी आशा रखता हूँ। मित्रोंसे मैं यही चाहता हूँ कि वे धार्मिक चर्चामें मुझे न खींचे। मैं तो सिर्फ वह सामग्री पेश करके खामोश रहूँगा जिसके सहारे मैं उन नतीजोंपर पहुँचा हूँ।

स्वामी श्रद्धानन्दजीके बारेमें मेरे लिए सबूत या दलील पेश करनेका कोई सवाल पैदा नहीं होता। उनसे मेरी मित्रता होनेका दावा पिछले लेखमें कर ही चुका हूँ। उसपर ध्यान देकर टीकाकार लोग यदि इस मामलेमें उनके और मेरे बीचमें न पड़ें तो मिहरबानी होगी। फिर उनके संबंधमें मेरी राय चाहे कुछ होती रहे, मैं उनके साथ झगड़ा नहीं कर सकता। मेरी टीका मित्रभावसे हुई है।

शुद्धिके बारेमें भी मेरे टीकाकार अपने महाक्रोधमें मेरे लेखकी मर्यादा न रख

सके। मैंने लिखा है कि ईसाई धर्ममें और उससे कम इस्लाममें जिस तरह अपने धर्मका प्रचार किया जाता है उस तरह हिन्दू-धर्ममें नहीं होता। यह बात और है और यह कहना कि हिन्दू धर्ममें प्रचार होता ही नहीं, बिल्कुल और बात है। हिन्दू धर्मके पास उसकी खासियतके मुआफिक एक निराला ही तरीका शुद्धिका है। अगर समाजी भाई फिरसे मेरे निवेदनको पढ़ जायँगे तो देखेंगे कि मैंने कहा है कि अगर वे चाहते हों तो उन्हें अपनी हलचल जारी रखनेका पूरा हक है। जब दो रायें एक दूसरेसे मिलती हैं तो यह सहिष्णुता नहीं कही जा सकती। सहिष्णुताके मानी तो यह है कि दो आदमियोंके मतमें पूर्व-पश्चिमका अन्तर हो तब भी दोनों एक दूसरेको निबाह लें और यही होना चाहिए।

अन्तमें मैंने अपने निवेदनमें यह भी नहीं कहा कि समाजी या मुसलमान जरूर ही औरतोंको उड़ाते हैं। मैंने तो लिखा है कि मैं 'सुनता हूँ कि वे ऐसा करते हैं'। मैंने तो जो बात कानपर आई उसे कहकर दोनों फरीकको यह मौका दे दिया कि वे इस इल्जामको झूठा साबित करें। जो बात एक दूसरेके खिलाफ कही जाती थी उसका गुब्बार बने रहने देनेकी बनिस्बत क्या यह बेहतर न हुआ कि उसे प्रकाशित करके मैंने वायुमण्डलको निर्मल करनेकी कोशिश की।

आर्य-समाजी मित्रोंसे मैं कहूँगा कि उनका गुस्सा और उनके प्रस्ताव उनकी सहिष्णुताकी कमी दिखाते हैं। जो लोग या संस्थाएँ सार्वजनिक जीवन व्यतीत करते हैं उनके इतने तुनुकमिजाज होनेसे कैसे काम चल सकता है? उन्हें तो कठोरसे कठोर टीका भी हँसमुख होकर सहन करनी चाहिये।

आखिरमें मुझे उनसे एक ही प्रार्थना है—आपमेंसे बहुतेरे भाई मेरी टीकापर अपना विरोध प्रकाशित कर चुके हैं। इसका मुझे रंज नहीं। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि आपके दुःखसे मैं दुःखी हुआ हूँ। मैंने दुःखी हृदयसे वह टीका लिखी थी। अब यह देखकर कि बहुतोंके दिलोंको चोट पहुँची है मुझे भी उतना ही दुःख होता है। मैं आपका दुश्मन नहीं। बल्कि मैं तो मित्र होनेका दावा करता हूँ। समय आनेपर इसका सबूत आपको मिलेगा। आप लोगोंके बहुतेरे पत्रोंमें यह कहा गया है कि हम किसी धर्मका विरोध करना नहीं चाहते। अगर ऐसा हो तो आप इस बातको क्यों भूलते हैं कि मैंने आर्य-समाजकी, उसके संस्थापककी और स्वामी श्रद्धानन्दकी स्तुति भी की है। आर्य-समाजने हिन्दू-समाजकी जो बुराइयाँ दूर करनेका काम किया है उससे मैं अनजान नहीं हूँ। क्या मैं यह बात नहीं जानता हूँ कि हिन्दू-धर्मको कलंकित करनेवाली कितनी ही कुप्रथाएँ आपने निर्मूल कर दी हैं। परन्तु मूलधनपर कोई कबतक जीवित रह सकता है? आप अक्षरसे आगे बढ़कर भावको विशाल बनाइए और धर्म-सुधार कीजिये। पर मैं फिर कहता हूँ कि आपके शुद्धि आन्दोलनमें मुझे पादरियोंके धर्म प्रचारकी विधिकी बात याद आ रही है। मैं यह देखनेके लिये उत्सुक हूँ कि आप उससे ऊँचे पदपर प्रतिष्ठित हों। अगर आप अपने ही घरको साफ करनेकी दिलमें लावें तो भी आपके लिये इतना काम पड़ा है कि आपका जी भर जाय और आपका सारा समय उसीमें लग जाय। मेरी तरह अगर आप भी मानते

हों कि आर्य-समाज हिन्दू-धर्मका एक अंग है तो हिन्दूको हिन्दू करनेका प्रयत्न कीजिये। अगर आर्य-समाजको हिन्दू-धर्मसे जुदा मानते हों तो मैं समझता हूँ कि हिन्दुओंको मनाना आसान नहीं है। पहले अपनी जगह निश्चित कीजिये। मैंने आपपर टीका इसलिये की है कि मैं आपसे वर्तमान सार्वजनिक और महान आन्दोलनोंमें आपका हिस्सा चाहता हूँ। अगर आर्य-समाज उस संकुचितताको छोड़कर, जो मुझे दिखाई दी है आज व्यापक दृष्टि धारण करे तो उसका भविष्य उज्वल है। अगर आप यह कहते हों कि हमारे लिये अब विस्तारकी जरूरत नहीं तो मुझे जरूर रंज होगा। और अगर ऐसा हो तो इस बातके लिये मुझे आपमें उदारता नहीं दिखाई देती। आपको मुझपर गुस्सा करना मुनासिब नहीं। बल्कि आपको मुनासिब है कि आप अपनेको उदार-आशय बनाकर मेरे अज्ञानको सहकर, समझकर उसे मिटानेका उद्योग धीरजके साथ करें।

हिन्दी-नवजीवन
१५ जून, १६२४

❀

एक मुसलमानका गुब्बार

मेरे हिन्दू-मुस्लिम निवेदनके बारेमें एक मुसलमान सज्जनके लिखे एक पत्रसे कुछ बातें यहाँ देता हूँ। वे लिखते हैं कि—

"आपके ये जुम्ले हिन्दुओंको भड़काने वाले हैं। मुझे हिन्दुओंकी बुजदिलीपर ज्यादह शरम मालूम होती है। वे लोग जिनके मकानात लूटे गये हैं अपने जानोमालकी रक्षा करनेमें मर क्यों न गये? बड़े अफसोसकी बात है जो आपकी कलमसे ऐसी बातें निकलें। इसके नतीजेका ख्याल तक करना खतरनाक है।"

मुझे अपने लेखमें कोई बात खतरनाक दिखाई नहीं देती। अगर मेरे लेखोंके द्वारा हिन्दुओंमें वह शक्ति आ जाय जिससे वे खतरेके मौकोंपर खुद अपनी हिफाजत या बचाव कर सकें तो मुझे दरअसल खुशी होगी। जबतक हम एक दूसरेसे डरना न छोड़ देंगे तबतक हमें एकताकी उम्मीद न रखनी चाहिये। लेखकने कोई दूसरा तरीका भी तो नहीं सुझाया। जो हिन्दू अपने पड़ोसीसे दिन-रात डरा करता हो उसको मैं सिवा इसके क्या सलाह दे सकता हूँ कि या तो तुमको बिना हाथ उठाये अपने बचावमें मर मिटना चाहिये या घूँसेका जबाब घूँसेसे देकर अपनी रक्षा करनी चाहिये? वे आगे चलकर लिखते हैं—

"कोई भी हिन्दू या मुसलमान आपकी इस रायको न मानेगा कि

पंडित मालवीयजी मुसलमानोंके दुश्मन नहीं हैं। वे तो मुसलमानोंके खुल्लम-खुल्ला दुश्मन हैं। सूरजकी रोशनीकी तरह खुले दुश्मन हैं। मैं तो कहता हूँ कि खुद भी हिन्दू आपकी इस बातको नहीं मानेंगे। लाला लाजपतराय भी पंडित मालवीयजीकी तरह एक थैलीके चट्टे-बट्टे हैं। जयरामदास और चांदशरामके बारेमें तो खुद आप अपने ही साथ बेइन्साफी कर रहे हैं। मुसलमानोंके साथ उनका सलूक हर अखबार पढ़नेवालेको चिरागकी तरह रोशन है। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि आप इन हिन्दू नेताओंकी तारीफ और मुसलमान अगुओंकी बुराई करके हिन्दू-मुस्लिम एकताका एक धागा भी मजबूत न कर पावेंगे।"

इसी तरह हिन्दू मित्र मुझे कहते हैं कि मैं जबतक अली-भाइयों और मौलाना बारी साहब पर एतबार रखता रहूँगा तबतक हिन्दू-मुस्लिम एकता गैर-मुमकिन है। मैं इन तमाम मित्रोंसे कहता हूँ कि अगर इन मौजूदा हिन्दू और न मुसलमान नेताओंपर एतबार रखा जाय तो एकताकी आशा इनके मर जानेके बाद भले ही की जा सके। फिर वे कहते हैं—

"आपको आगाखानी साहित्य और तबलीगका जिक्र करनेकी क्या जरूरत थी? उनके बदौलत हमारी राष्ट्रीय हलचलको जरा भी नुकसान नहीं पहुंचा। वे तो निहायत ही शान्तिके साथ अपना तबलीग-काम कर रहे हैं। आप मुसलमानोंके प्रचारके वाहियात तरीकोंका जिक्र करते हैं। पर जरा शुद्धि आन्दोलनको तो देखिये। आपने यह लिखकर अपने सिरपर एक जोखिम उठा ली है कि उस पुस्तिकामें लिखी तदबीरोंके मुताबिक निजाम रियासतमें तेजीके साथ काम हो रहा है। यह लिखकर गोया आपने जानबूझकर एक मुस्लिम-रियासतपर हमला किया है।"

इन लेखककी तबीयतका रुख उन कार्यकर्त्ताओंकी तरह मालूम होता है जो चाहते हैं कि हम जिन बातोंको जानते हों उनके बारेमें अपने खयालात जाहिर न करें बल्कि उन्हें चुपचाप दबा दें। हाँ, मैं इस बातको तो समझ सकता हूँ कि हम हर एक गन्दी चीजको सब लोगोंके सामने पेश न करें; पर जो बातें साफ तौरपर हमारी नजरोंके सामने आती हैं और जो हर शख्सके दिमागमें चक्कर खा रही है उनकी ओर हम आँखें नहीं मूँद सकते। अपने जोशकी धुनमें लेखक इस बातपर ध्यान रखना भूल गये हैं कि मैंने किसी मुस्लिम-रियासतपर हमला नहीं किया। मैंने तो इतना ही कहा है कि "मैंने सुना है कि मेरे निवेदनमें वर्णित तबलीगका काम निजाम-रियासतमें जोर-शोरके साथ हो रहा है।"

लेखक और भी लिखते हैं—

"मेरी समझमें नहीं आता कि गो-बध और बाजे एक ही श्रेणीमें कैसे आ सकते हैं? मुसलमानोंके लिये कुरानमें हुक्म है कि गोकी कुरबानी करो, मगर हिन्दुओंको ऐसी कोई धर्माज्ञा नहीं है कि वे मसजिदोंके सामने बाजा बजाया करें। हिन्दुओंको सरकारी

अस्पतालों और दफ्तरोंके सामने बाजा बन्द करना पड़ता है। मगर उनकी हठ-धर्मी उन्हें मसजिदके सामने बाजे बन्द कर देनेकी इजाजत नहीं देती।"

लेखक इस बातको जान लें कि कुरानमें मुसलमानोंको गायकी कुर्बानी करनेको नहीं कहा गया है। हाँ, कुछ मौकोंपर कुछ प्राणियोंकी कुर्बानीका हुक्म कुरान अलबत्ते देती है जिनमें गाय भी शामिल है। इससे गायकी कुर्बानी कोई अनिवार्य नहीं है। परन्तु जब कि वह जायज मानी गई है और जब कोई तीसरा शख्स मुसलमानोंसे जबरदस्ती उसे बन्द कराता है तब वह उसके लिये जरूरी हो जाती है। इसी तरह हिन्दुओंके लिये भी मसजिदोंके सामने बाजा बजाना जरूरी नहीं है, तो भी जब मुसलमान तलवारके जोरपर हिन्दुओंका बाजा मसजिदके सामने बन्द करनेपर आमादा होते हैं तो वह हिन्दुओंका धर्म हो जाता है। इसलिये ठीक तो यह है कि इन दोनों बातोंका निपटारा दोनोंकी मरजीपर ही छोड़ देना चाहिये।

हिन्दी-नवजीवन
१५ जून, १९२४

मुसलमानोंकी तरफदारी

मुसलमानोंकी तरफदारी करनेका इल्जाम फिरसे मुझपर लगाया जाने लगा है और अबकी दुगुने जोर-शोरके साथ। टीकाकारोंका कहना है कि मैं हिन्दुओंके ऐबोंको बढ़ाकर कहता हूँ और मुसलमानोंकी बुराइयोंको घटाकर। एक तरहसे मैं इस इल्जामको कबूल करता हूँ। यदि हम ठीक-ठीक फैसला देना चाहते हों तो हमको जो बातें जैसी हैं उनको उसी रूपमें देखनेके तथा बढ़िया कुदरती कानूनके मुताबिक रास्तेपर चलना चाहिए। लेकिन हम उसके खिलाफ चलनेके आदी हो गये हैं। हम अपने ही दोषोंको तो कम आंकते हैं और हमारे प्रतिपक्षीके दोषोंको बढ़ाकर कहते हैं। इसीसे असहिष्णुता बढ़ती है। अगर हमारे अन्दर उदारता और सहिष्णुता हो तो हम अपने प्रतिपक्षियोंको भी उसी तरह देखनेका प्रयत्न करेंगे जिस तरह वे खुद अपनेको देखते हैं। हमारी कोशिशमें हम कामयाब चाहे न हों; पर हम उन्हें असली रूपमें जरूर देख पावेंगे। ऐसी हालतमें जो मेरी हिन्दुओंके दोषोंकी अत्युक्ति समझी जाती है वह ऐसी दिखाई मात्र देती है। लेकिन एक टीकाकार कहते हैं—

"आप मौलाना अब्दुल बारीको खुदाका भोलाभाला बताते हैं, पर हमें इसपर भरोसा नहीं होता। हम संयुक्त-प्रान्तके लोग जानते हैं। हमें तो वे झूठी बड़ाई चाहनेवाले, झूठ बोलनेवाले और भरोसा न करनेवाले मालूम होते हैं।"

मैं उन्हें यह यकीन दिला देना चाहता हूँ कि अगर मैं मौलाना साहबको ऐसा पाता तो मैं बेखटके ऐसा कह देता। मैंने कहा कि वे एक खतरनाक दोस्त हैं इसमें उनके खिलाफ मुझे जो बुरीसे बुरी बातें मालूम हैं वे आ जाती हैं। कुछ टीकाकार समझते हैं कि मैं मुसलमानोंसे राजनैतिक मतलब गाँठनेके लिए उनकी चापलूसी कर रहा हूँ। वे ऐसा हरगिज न मानें। मेरे लिए ऐसा करना गैर-मुमकिन है। क्योंकि मैं जानता हूँ कि खुशामदसे एकता नहीं हो सकती। शिष्टाचार और सौजन्यको हमें भूलसे चापलूसी न मान बैठना चाहिए और न जहालतको निर्भयता।

हिन्दी-नवजीवन
१५ जून, १९२४

❀

जहरीला साहित्य

एक मित्रने मुझे "रंगीला रसूल" नामकी एक उर्दू पत्रिका भेजी है। उसपर लेखकका नाम तो नहीं दिया है पर वह मैनेजर, आर्य-पुस्तकालय, लाहौरकी तरफसे प्रकाशित की गई है। पुस्तकका नाम ही खुद दिल दुखानेके लिए काफी है और जो बातें उसमें लिखी गई हैं वे भी वैसी ही हैं। मैं शिष्ट-सभ्य पाठकोंका दिल दुखाये बिना, उसके कुछ वाक्योंका अनुवाद पेश नहीं कर सकता। मैंने अपने दिलसे पूछा कि सिवा लोगोंको उभाड़नेके ऐसी पुस्तकें लिखने और छापनेका दूसरा क्या मतलब हो सकता है। मुसलमानोंके नबीको बुरा कहनेसे या गालियाँ देनेसे क्या एक भी मुसलमान अपना धर्म छोड़ देगा और उस हिन्दूको भी जिसका यकीन ही पक्का नहीं है इससे क्या फायदा हो सकता है? इसलिए धर्म-प्रचारके कार्यमें तो ऐसी पुस्तकसे कोई लाभ नहीं। पर इससे जो हानि होती है वह साफ है।

एक दूसरे मित्रने पब्लिक प्रिंटिंग प्रेस लाहौरमें छपी एक पत्रिका भेजी है इसका नाम "शैतान" है। उसमें मुसलमानोंकी ऐसी बुराई की गई है कि जिसका अनुवाद मैं यहाँ दे ही नहीं सकता। मुझे ऐसी पत्रिकाओंका भी पता है जिसमें मुसलमानोंकी तरफसे भी ऐसी ही गाली-गलौज की गई है। किन्तु इससे हिन्दुओं और आर्य-समाजियोंकी तरफसे प्रकाशित गालियोंका समर्थन नहीं हो सकता और न यह उसका कोई जवाब ही है। यदि मुझे ऐसी खबर न मिलती कि ऐसी पत्रिकायें या पुस्तकें लोग चावसे पढ़ते हैं तो मैं इसपर जरा भी ध्यान नहीं देता। ऐसे साहित्यके

प्रचारको रोकने या कारसे कम उसके घटानेके उपाय स्थानिक नेताओंको ढूंढ़ निकालने चाहिएँ और उसके बजाय एक दूसरेके धर्मके प्रति सहिष्णुता प्रकट करने वाला शुद्ध साहित्य लोगोंमें फैलाना चाहिए।

हिन्दी-नवजीवन
२२ जून, १९२४

ॐ

हिन्दू क्या करें ?

हिन्दू-मुस्लिम तनाजे संबंधी मेरे निवेदनके बारेमें बहुतेरे पत्र मेरे पास आये हैं। पर उसमें कोई बात नई या जानने योग्य नहीं है। अतएव मैंने उन्हें प्रकाशित नहीं किया। परन्तु बाबू भगवान्‌दासने इस बारेमें एक पत्र लिखकर कितने ही सवाल किये हैं। वे मानते हैं कि अबतक जो कितनी बातें ठीक-ठीक न मालूम हुई थीं वे इसके द्वारा हजारों लोगोंको मालूम हो जायगी। फिर भी वे समझते हैं कि इसकी चिकित्सा और भी गहरी होनी चाहिए और इलाज भी कड़ा और जल्दी होना चाहिये।

उनके पत्रका सार इस तरह है —

(१) "आप कहते हैं कि साधारण तौरपर मुसलमान गुण्डे होते हैं और हिन्दू डरपोक। यदि यह सच है तो इसका कारण क्या हो सकता है? हिन्दू और मुसलमान असलमें भिन्न-भिन्न जातियोंसे पैदा नहीं हुये है। ९९ फी सदी मुसलमान हिन्दुओंके ही वंशज हैं।

भिन्न-भिन्न जातिके बहुतेरे हिन्दू योद्धाओंने लड़ाईके वक्त मुसलमान सिपाही या ईसाई सिपाहियोंसे कुछ कम बहादुरी नहीं दिखाई है। फिर भी ऐसी लड़ाइयोंमें तो नहीं, लेकिन जैसा कि आप कहते हैं, छोटे-छोटे झगड़ोंमें एक डरानेवाला समझा जाता है और दूसरा डरपोक। इसका क्या सबब? क्या इन दोनों कौमोंके धर्म-तत्त्वमें ही यह बात नहीं पाई जाती कि जिससे एक सबल बने और दूसरा निर्बल? केवल अन्त्यजोंके सम्बन्धमें ही हमने जो आपसमें अस्पृश्यताकी बुराई फैला दी है, उसीसे तो हम कहीं पंगु नहीं बन गये हैं? डरपोक डरानेवालेको पैदा किये बिना कैसे रह सकते हैं? इस्लाम भी आज हिन्दू धर्मके मुआफिक गिरा हुआ नजर आता है। लेकिन फिर भी उसमें हिन्दू धर्मके बनिस्बत कितनी ही बातें अच्छी हैं। उसमें एक दूसरेके प्रति अस्पृश्यताका भाव नहीं है। जरूरतके वक्त एक दूसरेका साथ देनेका भाव उसमें जरूर पाया जाता है।

(२) आप कहते हैं कि हिन्दू खुद अपनेको स्वच्छ कर लें तो मुसलमान भी अपनी तरफसे उसका उचित प्रत्युत्तर देंगे। लेकिन सफाई किस तरह करनी चाहिये?

जबरदस्ती मुसलमान बनाये गये मलाबारके हिन्दुओंको फिर हिन्दू बनानेमें बनारसके पण्डितोंकी जूड़ी चढ़ आई। ईसाई लोग मुसलमानोंको क्या ईसाई नहीं बनाते हैं? फिर मुसलमान उनसे क्यों नहीं चिढ़ते? हमारे शुद्धि और संगठन कार्यका कोई ढंग ही नहीं है। हमारे पण्डितों और पुरोहितोंको अभिमान छोड़कर यह बात जाहिर कर देनी चाहिये कि जो शख्स अपनेको हिन्दू कहलवाना चाहे वह हिन्दू ही है और उस हिन्दूके साथ अन्य सब हिन्दुओंको खाना-पीना करना चाहिये। आज तो हम सब हिन्दू मनुष्य हैं यह भी स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं हैं।

(३) आप कहते हैं कि हमने बीज बोये और गुन्डोंने फसल काट ली। यह किस तरह? दोनों कौमोंके नेताओंकी मक्कारीकी वजहसे या समझौतेका प्रयत्न नहीं किया गया इस वजहसे?

(४) आप कहते हैं कि हमारे बड़े-बड़े नेताओंमें परस्पर अविश्वास बढ़ता जाता है, यह अविश्वास क्यों और कैसे बढ़ता जाता है? क्या इसका कारण यह नहीं है कि हम सब "स्वराज्य, स्वराज्य" चिल्लाते हैं लेकिन स्वराज्यका अर्थ जुदा-जुदा करते हैं?

(५) आप लिखते हैं कि "हमको एक दूसरेके स्वभावमें से अनुकूल तत्व ढूंढ़ निकालने चाहिये और उनके द्वारा मित्रभाव बढ़ाना चाहिये।" इसको जरा खुलासेसे समझाइयेगा? आप कैसी मैत्री चाहते हैं? व्यक्तिकी व्यक्तिके साथ, कौमकी कौमके साथ, एक पक्षकी दूसरे पक्षके साथ या धर्मकी धर्मके साथ?

(६) आप राजकीय झगड़े निबटानेके लिये हकीम साहबके हाथमें कलम सौंप देना चाहते हैं। इसका सबब वे पहले सज्जन हैं और फिर मुसलमान यह होगा या उनमें धर्मांधता नहीं है यह? लेकिन खुदा न करे, अगर उनके हाथ-पैर न चलते हों तो क्या आप दूसरे नाम बता सकेंगे? इस कामका भार एक बार एक ही सज्जनपर डालनेके बजाय क्या उत्तम-स्त्री पुरुषोंकी बनी एक पञ्चायतके जिम्मे नहीं किया जा सकता?

(७) जैसा कि आपने कहा है, सब कबूल करते हैं कि हिन्दू-मुसलमान एकता ही स्वराज्य है। हृदयकी सन्धिके बिना कुछ भी नहीं हो सकता। फिर भी हम क्यों लड़ते हैं? क्या सिर्फ हमें यह कहते ही रहना चाहिये कि एक हो जाओ, एक हो जाओ या एक होनेके मार्ग ढूंढ़कर, सब धर्मोंके समान तत्व खोज निकाल उन्हें जाहिर करना चाहिये? क्या यह अच्छा न होगा?"

पहले दो सवालोंका जवाब तो खुद लेखकने दे दिया है। मेरी रायमें वे एक हदतक ही सच हैं। यद्यपि हिन्दुस्तानके बहुतांश मुसलमान और हिन्दु एक ही 'नस्ल'से सम्बन्ध रखते हैं, तो भी धार्मिक परिस्थितिने उनको एक दूसरेसे भिन्न बना दिया है। मैं इस बातको मानता हूँ और मैंने देखा भी है कि विचारोंके कारण मनुष्यका रूप और स्वभाव बदल जाता है। सिख लोग इस बातकी ताजी मिसाल हैं। मुसलमान लोगकी तादाद आमतौर पर कम है—इससे उनकी जातिमें गुण्डापन आ गया है। फिर वे एक नई परम्पराके वारिस हैं। इससे एक नई जीवन प्रणालीके

योग्य मर्दानगी दिखाई देती है। मेरी रायमें तो कुरानमें अहिंसाका एक मुख्य स्थान है। पर १३०० सालके साम्राज्य विस्तारने मुसलमान-जातिको योद्धा बना दिया है इसलिये उनमें उग्रता भी आ गई है। गुण्डापन उग्र स्वभावका एक कुदरती पर अनावश्यक फल है। हिन्दू की सभ्यता प्राचीनतम है। वे मुख्यतः अहिंसा-परायण हैं। उनकी सभ्यता उन अनुभवोंको पार कर गई है, जिनमेंसे ये दो नई जातियाँ गुजर रहीं है। अगर हिन्दु धर्ममें आजकलके अर्थमें कभी साम्राज्यवादिता रही हो तो अब वह जमाना चला गया और उसने या तो अपने आप या कालचक्रके गतिके अधीन हो उसका त्याग कर दिया है। अहिंसा-भावकी प्रधानता होनेके कारण शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग कुछ ही जातियों तक मर्यादित हो गया और वे जातियाँ भी विद्वान, निःस्वार्थ और आध्यात्मिक दृष्टिसे बढ़े-बढ़े लोगोंकी व्यवस्थाके आधीन रहती थी। इसलिये हिन्दू समाजमें लड़नेके आवश्यक गुण नहीं हैं। परन्तु अपनी आध्यात्मिक शिक्षासे हाथ धो बैठनेके कारण वे शस्त्रकी जगह किसी दूसरे कारगर साधनका प्रयोग करना भूल गये। और उसकी उपयोग-विधि न जाननेके कारण तथा उसकी रुचि भी न होनेके कारण उनको नम्रता भीरुता और कायरताकी हद तक पहुंच गई है। इस तरह यह पाप उनको सज्जनताका एक कुदरती फल हो गया, जो कि अनावश्यक है। ऐसे मत रखते हुये, मैं नहीं ख्याल करता कि हिन्दुओंकी एकान्तिकता—अपनेको किसीमें शामिल न करना—बुरी होते हुये भी उससे उनकी भीरुताका अधिक संबंध है। आत्म-रक्षाके लिए अखाड़ोंके उपयोगपर जो मेरा विश्वास नहीं उसका कारण भी यही है। हाँ, शारीरिक उन्नतिके लिए मैं जरूर उनको कीमती समझता हूँ। मगर आत्म-रक्षाके लिए तो मैं आध्यात्मिक शिक्षा-दीक्षाको ही पुनर्जीवित करना पसन्द करूँगा। आत्म-रक्षाका सबसे अच्छा और चिरस्थायी साधन आत्म-शुद्धि है। मैं इन मिथ्या भयोंसे डरनेवाला नहीं हूँ। अगर हिन्दू लोग सिर्फ आत्म-विश्वास रखें और अपनी परम्पराके अनुसार बर्ताव करें तो उन्हें गुण्डापनसे डरनेकी कोई जरूरत न रहे। ज्योंही वे वास्तविक आध्यात्मिक शिक्षाको फिरसे ग्रहण करेंगे त्योंही मुसलमानोंका दिल उनकी तरफ खींचने लगेगा। वे ऐसा किये बिना नहीं रह सकते। अगर मेरे पास सिर्फ कुछ ऐसे हिन्दू-युवकोंकी एक टोली हो जाय जो खुद अपनेपर भरोसा रखते हों और इसलिये मुसलमानोंपर भी जिनका भरोसा हो तो वह दल कमजोर लोगोंके लिये एक ढालका काम देगा। वे (हिन्दू-युवक) इस बातकी शिक्षा देंगे कि बिना मारे किस तरह मरना चाहिये। मेरी अकलमें दूसरा रास्ता नहीं। जब हमारे पूर्वज लोगोंपर संकट आ पड़ता था तब वे तपस्या-शुद्धि करने जाते थे। वे अपने शरीरको असहाय पाकर परमेश्वरसे प्रार्थना करते और उसे उनकी पुकारपर दौड़नेके लिये मजबूर होना पड़ता। लेकिन इसपर मेरे हिन्दू-मित्र कहेंगे "हाँ बेशक—मगर ईश्वरने तो धनुष्बाण लेकर अवतारोंको भेजा है।" इसकी सत्यतासे इन्कार करनेसे मेरा यहाँ संबंध नहीं। मेरा कहना सिर्फ इतना ही है कि हिन्दूलोग कारणकी अवहेलना करके फल कैसे प्राप्त कर सकते हैं? जब हम काफी तपस्या कर चुकेंगे तब

कहीं लड़ाईका समय आ सकता है। मैं पूछता हूँ क्या हमने अपनेको काफी शुद्ध बना लिया है ? क्या अपने अस्पृश्यताके पापोंके लिये हम अपनी राजी-खुशीसे प्रायश्चित्त कर चुके हैं।

व्यक्तिगत निर्मलताकी बातोंको तो जाने दीजिये। क्या हमारे धर्माचार्य और धर्म-गुरु आदर्श रूप हैं ? जबतक हम महज मुसलमानोंके छिद्र ढूँढनेमें ही अपनी सारी शक्ति लगाते रहेंगे तबतक मानों हम अधरमें अपने हाथ-पैर फट-फटाते रहेंगे। जो बात अंग्रेजोंके लिये है वही मुसलमानोंके लिये है। अगर हमारे दावे सच हैं तो अंग्रेजोंकी बनिस्बत मुसलमानोंके हृदयको जीतना बहुत ही कम मुश्किल है। लेकिन हिन्दू मेरे कानमें आकर कहते हैं कि हमें अंग्रेजोंसे तो कुछ उम्मीद है पर मुसलमानों-से नहीं। मैं उनसे कहता हूँ कि अगर आपको मुसलमानोंकी कुछ आशा नहीं है तो अंग्रेजोंसे जो आप आशा रखते हैं वह निराशामें परिणित हुये बिना नहीं रहेगी।

दूसरे सवालोंका जवाब थोड़ेमें दिया जा सकता है। गुण्डे लोग इसलिए आ खड़े हुए कि मुखिया लोग उन्हें चाहते थे। अगुआ लोग एक दूसरेपर अविश्वास रखते थे। जहाँ हेतु स्पष्ट हो वहाँ अविश्वास उत्पन्न नहीं होता। जब बहुतसे कारण या हेतु होते हैं और जब वे जाने तो नहीं जाते पर महसूस होते रहते हैं तब उनसे अविश्वास पैदा होता है। हम कभी इस बातको प्रत्यक्ष नहीं कर पाये हैं कि हमारे स्वार्थ एक हैं। हर फरीक अपने तौरपर यह मानता हुआ मालूम होता है कि हम दूसरेको किसी न किसी तरकीबसे हटा देंगे। पर मुझे यह कबूल करते हुये जरा भी संकोच नहीं होता जैसा कि बाबू भगवानदासने कहा है कि हमारा यह जानना भी है कि हम किस किस्मका स्वराज्य चाहते हैं, इस अविश्वाससे बहुत कुछ ताकत रखता है। पहले मेरा ख्याल ऐसा न था। लेकिन उन्होंने मुझे यरवदा जेलमें सर जार्ज लाइडके मेहमान होनेके पहले ही अपने मतका बहुत कुछ कायल कर लिया था और मैं तो अब पूरा-पूरा उनके मतमें मिल गया हूं।

'अनुकूल बातों' से मेरा अभिप्राय तमाम व्यक्तियों और जनसमूहके सामा-जिक, धार्मिक और राजनैतिक संबंधोंकी अनुकूल बातोंसे है। जैसे—धार्मिक बातोंमें मतभेदके स्थानोंको खोजनेकी बनिस्बत मुझे दोनोंकी अच्छी और एकताकी बातें ढूँढ़नी चाहिए। अपने धार्मिक मन्तव्योंपर कायम रहते हुए मैं जहाँ-जहाँ हो सकता है सामाजिक बातोंमें दोनोंके बीचकी खाई पाटनेकी कोशिश करूँगा। राज-नैतिक क्षेत्रमें कार्यकी एकताके लिए मैं अपने रास्तेसे कुछ हट जाना भी पसन्द करूँगा।

दोनोंका फैसला कर देनेके लिए मैंने हकीम साहबका नाम इसलिए सूचित किया कि उनके प्रति सब आदर भाव रखते हैं। पर मैं तो ऐसे मुसलमानके हाथोंमें भी कलम देते हुये न हिचकूँगा जिसकी धर्मांधता और हिन्दुओंकी निस्बत बुरे ख्याल पहलेसे मशहूर हों ? क्योंकि एक हिन्दूके नाते मुझे जानना चाहिए कि अगर वह हर प्रान्तमें मुसलमानोंको ज्यादा जगह दे देगा तो भी मेरी उससे कुछ भी हानि न

होगी। निर्वाचन-संस्थाओंके लिए जगहोंके देने या लेनेमें सिद्धान्तकी कोई हानि नहीं होती। इसके अलावा तजरुबेने मुझे यह शिक्षा दी है कि जब भारी जिम्मेवारी एक ही शख्सके सिरपर रख दी जाती है तब वह अपने आप कसौटीपर चढ़ जाता है और उसका स्वाभिमान या ईश्वरका डर उसे समचित्त बना देता है।

अन्तको किसी घोषणा-पत्र या किसी और चीजसे कुछ काम न बनेगा जब तक कि हममें कुछ लोग भी, फिर हम चाहे इने गिने ही हो, उसके अनुसार चलने न लग जायँ।

हिन्दी-नवजीवन
२२ जून, १९२४

❀

फिरसे आर्य समाजी

इतने आर्य-समाजी मित्रोंने आर्य-समाज-सम्बन्धी (उनकी रायमें) अज्ञान और उन सिद्धान्तोंकी उत्तमत्ताके विषयमें इतने लम्बे-चौड़े प्रवचन लिखकर भेजे हैं कि मैं इस बातके लिये उत्सुक हो रहा था कि कमसे कम एक पत्र तो जरूर छापूँ जिससे पाठकोंको यह मालूम हो जाय कि आर्य-समाजी मेरी टीकाको किस दृष्टिसे देखते हैं। अन्तको मुझे एक ऐसा पत्र मिला और उसे मैं खुशीके साथ प्रकाशित कर रहा हूँ। पत्र-लेखक हैं आचार्य रामदेव, गुरुकुल कांगड़ी। उसमेंसे मैंने सिर्फ एक वाक्य निकाल डाला है। जो मेरी रायमें जल्दी लिखा गया होगा और जिसमें खुद उन्हींके साथ इन्साफ न होता था। उसके निकाल डालनेसे उनकी दलीलमें कुछ कमी नहीं पड़ती और आर्य-समाजके संस्थापककी उनके द्वारा गाई गई कीर्तिमें भी किसी बातकी खामी नहीं होती। आचार्य रामदेवका पत्र नीचे देता हूँ—

"यंग-इन्डियामें लिखे हिन्दू-मुस्लिम एकता संबन्धी आपके लेखको पढ़कर मुझे बड़ा ही रंज हुआ। मैंने अपने जीवनमें ऐसे महान पुरुषकी कलमसे ऐसा निराशाजनक लेख कभी नहीं पढ़ा था। इस लेखके द्वारा पंजाब और युक्त-प्रान्तमें बड़ी नाराजगी और बेचैनी फैल गई है। स्थितिको सुधारनेके बजाय इसके द्वारा हिन्दुओंके दिल उबल उठे हैं और कितने ही विचारशील आर्यसमाजी इस नतीजेपर पहुँचे हैं कि आप इस्लामका इतना पक्षपात और आर्यसमाजका इतना विरोध रखते हैं कि आर्यसमाजके साथ ऐसा गहरा अन्याय—चाहे अनजानमें हो—किये बिना नहीं रह सकते थे। आर्यसमाजके आध्यात्मिक सिद्धान्तोंपर हमला करनेकी कोई जरूरत न थी और हिन्दू-मुसलमानके प्रश्नके साथ उसका कुछ संबंध भी न था। आपके आक्षेप न तो युक्तिपूर्ण ही थे और न इस समय आप

शास्त्रार्थके लिये तो तैयार हैं। आर्यसमाजके नेता—जिन्होंने इस विचारको कि वेद अपौरुषेय है, हिन्दू-मुसलमान दोनोंके उतना ही समान है जितना कि आपके सिद्धान्तोंका सम्बन्ध महासभाको फटकार है। फिर यदि श्रुतिपर विश्वास रखना संकुचितता है तो इस्लाम भी उतना संकुचित है जितना कि वैदिक धर्म क्योंकि ऐसा विश्वास रखना मुस्लिम-धर्मका मुख्य अंग था; इस्लामके उस सौभाग्यके युगमें भी जिसका वर्णन आपने बड़े उत्साहसे किया है। आपका यह अभिप्राय है कि महर्षि दयानन्दने ही सबसे पहले वेदोंकी सत्यता और निर्भ्रान्तताके सिद्धान्तकी घोषणा की, वास्तवमें निर्मूल है और यह प्रकट करता है कि उस शख्सने—फिर वह कितना ही बड़ा हो—उन विषयोंका अध्ययन नहीं किया है। उसका उनपर कलम चलाना कितना खतरनाक है। मैं आदरपूर्वक यह बताना चाहता हूँ कि उपनिषद्, मनुस्मृति, षड्दर्शन, पुराण और शंकराचार्य, रामानुज, माध्वाचार्य, चैतन्य तथा अन्य मध्य-कालीन साधु-सन्तों और विद्वानोंके ग्रंथ सब इसी सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हैं। फिर यह मत कि वह तमाम विद्याओं (पदार्थ विज्ञान भी उसमें शामिल है) का बीज है कोई नया नहीं है। तमाम प्राचीन शास्त्रवेत्ता, जैसे आर्यभट्ट भास्कराचार्य, इसको मानते थे। इसके अलावा आधुनिक वैदिक विद्वान जैसे पावगी, परमशिव ऐयर, द्विजदास दत्त—जिनमें कोई आर्यसमाजी नहीं है—अपने तौरपर विचार करते हुये इसी नतीजेपर पहुंचे हैं। पता नहीं आप जानते हैं या नहीं कि अरविन्द घोषने यह बात लोगोंके सामने प्रकट की है कि अकेले स्वामी दयानन्दने ही वेदकी टीकाके सच्चे प्रामाणोंका आविष्कार किया है। इन प्रामाण्य विद्वानोंके प्रमाण, जिन्होंने सारा जीवन वेदोंके अध्ययनमें बिताया है, एक ऐसे महात्माके अप्रासंगिक उद्गारोंसे मिथ्या नहीं हो सकते—फिर उसका चरित्र कितना ही ऊँचा हो और मनुष्य जातिके प्रति उसका हृदय चाहे कितना प्रेम-परिप्लुत हो, जिसने लगातार पाँच साल भी मूलपरमें वेद-वेदांगोंका अध्ययन न किया हो। तमाम जातियों और धर्मोंके सबसे बड़े नेताकी हैसियत रखते हुये आपने धार्मिक खण्डन-मण्डनमें पड़कर अच्छा न किया। सत्यार्थ प्रकाशके बारेमें आपने जो सामान्य सिद्धान्त बनाये हैं, वे तो बड़े ही अनुचित हैं। मालूम होता है कि आपने पहले दस समुल्लासोंको नहीं पढ़ा है, जिनमें उपासना, ब्रह्मचर्य, शिक्षा, विवाह-संस्कार, सन्यास, राजनीति, मुक्ति, ज्ञान, वेद और गवाक्षाध्यक्षका विवेचन किया गया है और जो ग्रन्थका मुख्य भाग है। इन समुल्लासोंमें दूसरे धर्मोंको स्पर्श तक नहीं किया गया है। इनको छोड़कर आप आखिरी चार अध्यायोंपर कूद गये हैं। बात यह है कि बहुत समय पहले ही आप इस विचित्र नतीजेपर पहुँच चुके थे कि स्वामी दयानन्द असहिष्णु थे। आपने सत्यार्थप्रकाशको जल्दीसे पढ़ा है और उसपर आपके इस पूर्व-विचारने उसे दूषित कर दिया है। आपकी हालत उस न्यायाधीशकी सी हुई जो फरयादी-की बात सुनकर सजा दे देता है और फिर उसके बचावकी सूरत निकालता है, जिससे कि अपने सजाके फैसलेका समर्थन किया जा सके। जिन लोगोंने स्वामी दयानन्दके ग्रन्थोंको ध्यानसे पढ़ा है—आपके मित्र एण्ड्रयूज साहब भी उनमें हैं या जिन्हें उनके चरणोंमें बैठने-का सौभाग्य प्राप्त हुआ जैसे ए० ओ० ह्यूम, पादरी स्काट, सर सैयद अहमद, रानाडे, तैलंग, मालाबारी, रघुनाथ राव और बिशननारायन दर—उन्होंने बिना दिक्कत यह बात कही है कि

वे अपने कालके एक अत्यन्त सहिष्णु धर्म-सुधारक थे और उनके मानव प्रेममें जाति, देश, वर्ण और संस्कृत आदिकी सीमा न थी। अब मैं खतम करता हूँ। मेरा यह लिखना छोटे मुँह बड़ी बात समझी जा सकती है। मेरे हृदयमें आपके प्रति प्रेम, आदर और भक्ति है। उसीके बलपर मैं अपनी सफाई दे सकता हूँ। प्रेम और भक्तिमें ऐसी अद्‌भुत शक्ति है कि वह छोटे आदमीको भी बड़े आदमीसे कुछ निवेदन करनेकी हिम्मत दे देती है। विशेष विनय,

भवदीय
रामदेव

मैं हमेशा कहता हूँ कि मेरी राजनीति मेरे धर्मका अनुसरण करती है। मैं राजनैतिक क्षेत्रमें इसीलिये पड़ा हूँ कि मैं अपने धार्मिक जीवन अर्थात् सेवामय जीवनको उससे प्रभावित हुये बिना व्यतीत न कर सका। यदि उसके बदौलत मेरे धार्मिक जीवनमें बाधा पड़ेगी तो मुझे उसका त्याग कर देना होगा। इसलिये मैं इस सिद्धान्तसे सहमत नहीं हो सकता कि एक राजनैतिक नेता होनेके कारण मुझे धार्मिक बातोंमें न बोलना चाहिये। मैंने आर्य-समाजके बारेमें इतना इसलिये लिखा है कि वह अपने उपयोगिताको खोता जा रहा है और उसकी मौजूदा कारवाइयोंसे देशको हानि पहुँच रही है। उनका एक मित्र और हिन्दू होनेके कारण मुझे उन लोगोंसे कहने-का हक है जिनके मतों और विचारोंका उद्‌गम-स्थान एक ही है। यदि वहाँ मैं भिन्न धर्मोंके गुण-दोषकी समीक्षा करता होता तो अवश्य ही मुझे इस्लामके बारेमें भी अपने विचार प्रकाशित करने पड़ते।

मैं इकबाल करता हूँ कि मैंने मूल वेदोंको नहीं पढ़ा। पर मुझे उनका इतना ज्ञान अवश्य है कि मैं अपने लिये कुछ विचार बांध सकता हूँ। आचार्य राम-देवका यह ख्याल गलत है कि महर्षि दयानन्दके संबन्धमें मेरा ख्याल पहलेसे ही खराब था। आचार्य रामदेवने जिन महान् पुरुषोंका उल्लेख ऊपर किया है उसके द्वारा उस महान् सुधारककी को गई स्तुतिके ठीक-ठीक शब्द मुझे मालूम नहीं हैं। पर उनके साथ इस स्तुतिमें शामिल होते हुये भी मैं अपनी रायपर कायम रह सकता हूँ। मैं अपनी पत्नीकी त्रुटियोंको जानता हूँ। पर इसलिये मैं उसे कम प्यार नहीं करता। मेरे टीकाकार विचार करते समय यह भूल कर बैठते हैं कि चूंकि मैंने उनके समाज-संस्थापकपर टीका-टिप्पणी की है इसलिये मेरा उनके प्रति प्रेम और आदर नहीं है। मैं आचार्य रामदेवको यकीन दिलाता हूँ कि मैंने सत्यार्थ-प्रकाशके तमाम समुल्लासोंको पढ़ा है। उन्हें यह न भूलना चाहिये कि किसी मनुष्यके नैतिक उपदेशके उच्च होते हुये भी उसका दर्शन संकुचित हो सकता है। मेरे कितने ही मित्र जो नैतिक शिक्षाओंको बहुत ऊँचे दरजेका मानते हैं। मेरे जीवन-सम्बन्धी विचारों और दृष्टि-बिन्दुको संकुचित और धर्मोन्मत्ततासे पूर्ण मानते हैं। मैं उनकी इस टीका-टिप्पणीसे बुरा नहीं मानता—हालांकि मैं मानता हूँ कि जीवन-विषयक मेरा दृष्टि-बिन्दु विशाल है और मैं मनुष्य जातिके अत्यन्त सहनशील लोगोंमें खपने योग्य हूँ। मैं

अपने आर्य-समाजी मित्रोंको यकीन दिलाता हूँ कि यदि मैंने उनकी आलोचना की हो तो वह उसी दृष्टिसे की है जिस दृष्टिसे मेरी आलोचना उन्हें करनेका अधिकार है। इसलिये हम दोनों अपना हिसाब चुकता कर लें। वे मुझे देशमें सबसे अधिक अज्ञानी और असहिष्णु समझते रहें और मुझे अपनी रायपर कायम रहने दें।

हिन्दी-नवजीवन
२२ जून, १६२४

खतरनाक रिवाज

१२ जूनके 'हिन्दू'में मैंने एक मजमून पढ़ा जो कि मेरे साथकी 'बातचीत'के नामसे प्रकाशित हुआ है। हाँ, मुझे एक सज्जनके साथ बहुत देरतक बातचीतकी बात याद पड़ती है। पर मुझे यह जरा भी ख्याल न था कि वे 'इंटरव्यू' लेनेके लिये आये हैं। मैंने समझा कि उनके दिलमें दरहकीकत कुछ शंकाएँ हैं और वे उन्हें दूर करना चाहते हैं। इसलिये मैंने बड़े ध्यानसे बड़ी देर तक शान्तिके साथ उनसे बातचीत की और उनके तमाम सवालोंके जवाब दिये। चूंकि मेरे पास वक्त बहुत ही कम रहता है अतएव मैंने इतनी देर तक 'इंटरव्यू' करनेसे जरूर इन्कार कर देता। मेरे पास छिपावकी कोई बात नहीं रहती। अगर लोगोंको मुझसे या मेरे निस्वत कोई बात मालूम हो जाय तो वे उसे प्रकाशित कर देनेके लिये पूरे आजाद हैं। हाँ, मैं यह जरूर नहीं चाहता कि उलट-पुलट या तोड़-मरोड़कर पेश की जाँय। अगर वे छापनेके पहले मुझे बता दें तो मुझे कोई एतराज न हो। पूर्वोक्त 'इंटरव्यू' और कुछ नहीं, मैंने जो कुछ कहा इसका नष्ट-भ्रष्ट खाका है। मिसालके तौरपर जैसे उसमें कहा गया है कि मैंनेकहा हरएक मुसलमान आवारा होता है। लीजिये, मैंने तो किसी सपनेमें भी इसका ख्याल न किया होगा कि हरएक मुसलमान आवारा होता है। हकीम साहबको आवारा नहीं मानता और न इसी तरह अपने सैकड़ों मुसलमान दोस्तोंमेंसे किसीको ऐसा समझता हूँ। हाँ मैं कितने ही मुसलमान गुण्डोंको तो जानता हूँ। पर किसी आवारा मुसलमानसे काम नहीं पड़ा है। मैं तो हरएक मुसलमानको गुण्डा तक नहीं समझता। मुझपर यह कहनेका इल्जाम लगाया गया है कि सरकार अभी मेरी उतनी परवाह नहीं कर रही है। पर हां, मैंने देशमें एक छः महीने दौरा किया कि उसकी रूह कांप उठेगी। पर मैं एक ओर बड़े अभिमानके साथ यह समझता हूँ कि सरकार कभी मेरे लेखों और कामोंको उदासीन दृष्टिसे नहीं देखती है और दूसरी ओर मेरी नम्रता इस बातका ख्याल नहीं करने देती कि मेरे किये दौरेसे सरकार डर जायगी। हाँ, अगर

किसी भी कोशिशसे सच्ची हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम हो जाय तो वह जरूर डर जाय। जो सज्जन मुझसे मुलाकात करने आये थे, वे खादीमें एक धोखेबाजी करने वालेकी बात करते हैं। मैं अपने साथ काम करनेवाले लोगोंसे बातचीत कर रहा था। उसके सुननेका जो अवसर उन्हें मिला उसका यह दुरुपयोग मात्र है। खादीमें धोखेबाजी होनेकी बात चल रही थी। मुझे पता नहीं कि दरअसल कहीं ऐसी धोखे-बाजी चल रही है। मैंने सिर्फ यहाँ भारी गलतियोंके ही उदाहरण दिये हैं। इसमें कोई शक नहीं है कि मुलाकाती सज्जनने अच्छे ही भावसे ये बातें लिखी होंगी। पर ऐसे सदाशय मित्र जो कि अपनी जिम्मेवारीको न समझकर काम करते हैं दुराशय प्रति-पक्षियोंसे ज्यादह नुकसान पहुँचाते हैं। अतएव जो लोग मुझसे मिलनेके लिये आते हैं उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे तबतक मुझपर मिहरबानी रखें जबतक मैं लोगोंकी दृष्टिमें प्रतिष्ठित हूँ। जब मैं अप्रतिष्ठित हो जाऊँ तब वे मेरे लेखों और कार्योंमें जो चाहे करें। मैं उन लोगोंसे भी निवेदन करता हूँ कि जो मेरी मुलाकातकी बात-चीत पढ़ा करते हैं कि उन मुलाकातोंपर ध्यान न दिया करें जिन्हे मेरी मंजूरी नहीं मिली हो।

हिन्दी-नवजीवन
२६ जून, १९२४

डाक्टर महमूद और जब्रन धर्मान्तर

हिन्दू-मुस्लिम तनाजे संबंधी मेरे निवेदनमें आये जब्रन धर्मान्तरके सिलसिलेमें मेरे पास कई खत आये हैं। कुछ तो गुस्सोसे भरे हैं और कुछ गालियोंसे भी। हाँ, श्री माधवन नायरका एक ऐसा खत था जो शान्त-चित्तसे लिखा गया था और जिसमें लेखककी चिन्ता प्रगट होती है। उसमें उन्होंने उस बातका विरोध किया था जिस बातका आरोप मैंने डाक्टर महमूदपर किया था। वह पत्र मैंने डाक्टर महमूदके पास भेजकर जवाब माँगा, जिससे कि पाठकोंके सामने उनका भी कथन पेश कर सकूँ। मगर मेरा खत पहुँचनेके पहले डा० महमूद मेरे नाम इसी सिलसिलेमें एक खत भेज चुके थे, क्योंकि उनके पास भी इसके विरोधमें बहुतेरे पत्र पहुँचे थे। यहाँ मैं डाक्टर महमूदके उर्दू खतका आवश्यक अंश देता हूँ।

"मेरे पास अक्सर हिन्दू अहबाबके खतूत आये हैं जिनमें वह मुझपर इलजाम लगाते हैं कि मैंने मलाबारके मुतअल्लिक आपको गलत खबर दी। बाज खतूतमें मुझे सख्त गालियाँ भी दी गई हैं। मेरे ख्यालमें उन लोगोंका गुस्सा हक ब जानिब है। आपको किसी कद्र गलतफहमी हुई। मैंने आपसे यह अर्ज किया था कि खतना करके जबरदस्ती मुसलमान

बनानेकी मिसाल नहीं मिलती। सिर्फ एक वाकयाका जिक्र किया गया जो कि मि० एण्ड्रयूजने देखा है। लेकिन उसकी भी तसदीक नहीं हो सकी। बाकी सरपर टोपी पहनाकर, औरतोंको कुरती पहनाकर, चोटी काटकर मुसलमान बनानेकी तो बहुतसी मिसालें हैं। जो लेख मैंने श्रेवको लिखाया था उसमें भी यही था। मेहरबानी फरमाकर 'यंग-इंडिया'में इसकी तरदीद कर दीजिये। नहीं कुछ अर्सेके बाद इसपर भी अखबारातमें बहस शुरू हो जायगी।"

मैं देखता हूँ, मेरे हाथों डा० महमूदके साथ अन्याय हो गया है। मैं तो खतना करके ही जब्रन धर्मान्तर किये गये लोगोंकी बात सोच रहा था, इसी ख्यालसे हिन्दुओंके दिलको भारी चोट पहुँची है। जो हो पर और बातोंसे ज्यादह इसी बातने मेरे दिलपर असर डाला है।

डाक्टर महमूदने जिस वक्तव्यका जिक्र ऊपर किया है वह इस प्रकार है—

"जब्रन धर्मान्तर--

(अ) खतना करके। आखों देखा गवाह नहीं। कोई सीधा सबूत नहीं मिलता। कोई मिसाल नहीं दी गई। हिन्दुओंमेंसे विश्वासपात्र लोग कहते हैं कि तीन-चार मामले ऐसे हुये हैं। इस तरहकी एक घटनाका सीधा सबूत यही है कि श्री एण्ड्रयूजने एक खतना किये शख्सको देखा था। मैंने उसकी तसदीक नहीं कराई।

(आ) कलमा पढ़ाया जाना

(इ) (१) जब्रन (२) महज डरसे जिसमें दरअसल जबर्दस्ती नहीं की गई हो।

(ई) चोटी काटना

(उ) हिन्दू मर्दोंको टोपी पहनाना

(ऊ) हिन्दू औरतोंको कुरती पहनाना

(अ) से लगाकर (ई) तकमें अन्दाजन १८०० से २००० लोगों तक (हिन्दुओंके कथनके अनुसार) धर्मान्तरित किये गये। मुसलमान लोग इस संख्याको कुछ सैकड़ा बताते हैं।"

मैंने सोचा कि मेरा वक्तव्य स्पष्ट है। यद्यपि मैंने श्री एन्ड्र्यूजका नाम नहीं लिया था तो भी यह बात सबको मालूम थी कि उन्होंने एक ऐसे शख्सका जिक्र किया है जिसका खतना जबर्दस्ती किया गया था। इस बातपर ध्यान रखनेसे मेरे आशयको समझनेमें कोई गलती नहीं हो सकती थी। पर अब मैं देखता हूँ कि जब्रन मुसलमान बनाये हुये आदमियोंको जाहिरा तौरसे कम तादाद बताकर डाक्टर महमूदपर पक्षपातका दोष लगानेका अवसर लाकर उनको नाजुक अवस्थामें डाल दिया। मुझे इस अनिच्छित गलतीपर अफसोस है। कसमकशके बीच कोई शख्स बहुत सावधानी नहीं रख सकता, न बहुत ठीक-ठीक बात कर सकता है डाक्टर महमूदके साथ न्याय करनेकी कोशिश करते हुये मुझसे उनके साथ अन्याय हो गया है। मैं पाठकोंको यकीन दिलाता हूँ कि हरएक बातमें मैं वस्तु-स्थितिसे जरा भी दूर नहीं गया हूँ और तमाम अतिरंजित या नमक-मिर्च लगी बातोंको मैंने एक ओर हटा दिया है। जो कुछ कागजात मेरे पास हैं उसमें तमाम पक्षके लोगोंके

खिलाफ भयंकर बातें लिखी हुई हैं। लेकिन हर बातमें मैंने इलजामोंको बहुत ही सौम्य-रूप दे दिया है और जिन बातोंपर मैं अपनी राय कायम न कर सका उन्हें सिर्फ उस पक्षकी तरफसे पेश भर कर दिया है और इस तरह उनके इलजामको बहुत सौम्य बना दिया है।

हिन्दी-नवजीवन
२६ जून, १६२४

❀

बकरीद

बकरीदके त्योहारका समय हिन्दूओं और मुसलमान दोनोंके लिये चिन्ताका होता है। यदि हम परस्पर सहिष्णुता और एक दूसरेका लिहाज रखें तो ऐसी स्थिति न हो। जो मुसलमान पशुओंकी कुर्बानीको जायज मानते हैं और इसीलिये जो गोतककी कुर्बानी करते हैं उसमें हिन्दुओंको क्यों दस्तन्दाजी करनी चाहिये? इसी तरह मुसलमानोंको क्यों गायकी कुर्बानी और सो भी इस ढंगसे करनी चाहिये जिससे हिन्दुओंके भावोंको आघात पहुँचे? क्यों मुसलमानोंको १९२१की उसी शराफतका फिर परिचय न देना चाहिये जब उन्होंने अपने हिन्दू-सहवासीके भावोंका लिहाज रखनेके लिये खुद ही गायको बचानेका उपाय अपने सिर लिया और दरहकीकत हजारों गायोंकों बचाया भी, जिससे खुद हिन्दुओंने भी तसलीम किया। निश्चय ही बकरीदके दिन मुसलमानोंको खास तौरपर हिन्दुओंके प्रति प्रेम-भाव पैदा करनेकी कोशिश करनी चाहिये और हिन्दुओंको चाहिये कि मुसलमानोंके धार्मिक रस्म-रिवाजोंका लिहाज रखें, फिर भले ही वे उन्हें कितने ही अप्रिय हों। उसी प्रकार जिस प्रकार कि मूर्ति-पूजा मुसलमानोंको अप्रिय होते हुये भी वे उसका लिहाज रखनेकी उम्मीद उनसे करते हैं। परमात्मा खुद अपने कामके लिये हमको जिम्मेवार मानेगा, हमारे सहवासीके कामके लिये नहीं।

हिन्दी-नवजीवन
१३ जुलाई, १६२४

❀

जैसे वे वैसे आप

'रंगीला-रसूल' नामक न पढ़ने लायक पुस्तिका तथा 'शैतान' नामक निन्दनीय पर्चेके सम्बन्धमें मैंने जो उद्गार प्रगट किये थे उसके सिलसिलेमें आर्य-समाजियोंकी तरफसे ढेरके ढेर पत्र आये हैं। वे मेरी सचाईके तो कायल हैं पर कहते हैं, कुछ

मुसलमान पत्रोंका भी यही हाल है और पहले उन्होंने गाली गलौज शुरू की तब आर्य-समाजी वैसा ही जवाब बतौर बदलेके देने लगे। पत्र लेखकोंने मेरे पास कुछ ऐसे पर्चे भेजे भी हैं। उनके कुछ हिस्सेको पढ़नेकी व्यथा मैंने सहन की है। उनके कुछ हिस्सोंकी भाषा तो दिलको दहला देती है। उन्हें यहाँ उद्धृत करके इन पन्नोंको मैं कलंकित नहीं करना चाहता। एक मुसलमान-लिखित स्वामी दयानन्दके जीवन-चरित्रकी एक प्रति भी मुझे मिली है। मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि बहुतांशमें उन महान धर्म-सुधारकका बोदा भद्दा चरित्र है। उनके किये हुए कामपर लेखकने जहर उगला है। एक पत्र लेखक इस बातकी बहुत बड़ी शिकायत करते हैं कि मेरे लेखोंने मुसलमान लेखकों और वक्ताओंका हौसला इतना बढ़ा दिया है कि वे आर्य-समाज और समाजियोंको और भी ज्यादा गाली-गलौज करने लगे हैं। एकने हाल ही हुई लाहोरकी एक सभाका हाल लिखकर भेजा है जिसमें आर्य-समाजपर ऐसी-ऐसी गालियोंकी वृष्टि की गयी है कि जिनको लिखते हुए लेखनी काँपती है। यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं कि ऐसी कार्रवाइयोंके साथ मेरी कुछ भी हमदर्दी नहीं हो सकती। मैंने जो कुछ अपनी राय आर्य-समाजके बारेमें प्रकाशित की है, उसके होते हुए भी मैं आर्य-समाजके संस्थापकका एक नम्र प्रशंसक होनेका दावा करता हूँ। उन्होंने कितनी ही कुप्रथाएँ हमें दिखायी हैं जो हिन्दू समाजको भ्रष्ट कर रही थीं। उन्होंने संस्कृत विद्याके पठन-पाठनका शौक बतलाया है। उन्होंने अन्ध-विश्वासको ललकारा है। अपने शुद्ध चरित्रके द्वारा उन्होंने अपने कालके समाज-का स्तर ऊँचा कर दिया है। उन्होंने निर्भयता सिखायी और कितने ही निराश होने-वाले नवयुवकोंमें नयी आशाका संचार किया और न मैं उनकी राष्ट्रीय सेवासे बेखबर हूँ। आर्य-समाजने राष्ट्र-सेवाके लिए कितने ही सच्चे और स्वार्थ-त्यागी कार्यकर्ता दिये हैं उन्होंने हिन्दुओंमें स्त्री-शिक्षाका जितना प्रचार किया है उतना ब्रह्म समाजको छोड़कर शायद ही किसी हिन्दू संस्थाने किया हो। कुछ अनजान लोगोंने यहाँतक कह डाला है कि मैंने श्रद्धानन्दजीके बारेमें वे बातें इसलिए लिखी हैं कि वे मेरी बातोंकी आलोचना किया करते हैं। परन्तु उनका यह दोषारोपण मुझे उनके गुरुकुलमें किये गये मार्ग-दर्शक कार्यको फिरसे स्वीकार करते हुए नहीं रोक सकता। ऐसी हालतमें मैं जहाँ एक ओर आर्य-समाज, सत्यार्थप्रकाश, ऋषि दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्दके विषयमें प्रकाशित अपने उद्गारोंका एक भी शब्द वापस लेना नहीं चाहता, वहाँ दूसरी ओर मैं फिर दुहराता हूँ कि मैंने बिल्कुल मित्र-भावसे यह समा-लोचना की है और इस अभिलाषासे की है कि समाज उन त्रुटियोंसे मुक्त होकर जिसकी ओर मैंने उसका ध्यान दिलाया है, अधिक सेवा कर सके। मैं चाहता हूँ कि वह समयके साथ कदम बढ़ाते हुए चले, खंडन-मंडन वृत्तिको छोड़ दे और अपनी राय-पर कायम रहते हुए दूसरे सम्प्रदायवालोंके साथ उसी सहिष्णुताका परिचय दे जिसका दावा वह खुद अपने लिए करता है। मैं चाहता हूँ कि वह अपने कार्य-कर्ताओंपर निगाह रखे और तमाम कलंक लगानेवाले लेखों-पत्रोंको बन्द कर दें।

यह कोई जवाब नहीं है कि मुसलमानोंने पहले इस निन्दा कार्यको किया है। मुझे पता नहीं कि उन्होंने किया या नहीं। पर मैं जरूर जानता हूँ कि अगर उनके बातोंके जवाबमें वैसी ही बातें कहीं जाती तो थककर वे अपने आप चुपचाप हो जाते। मैंने तो समाजियोंसे शुद्धि तकको छोड़ देनेको नहीं कहा है। पर मैं उनसे और मुसलमानोंसे भी यह प्रार्थना जरूर करूँगा कि वे अपने शुद्धिके वर्तमान ख्यालपर फिरसे जरूर विचार करें।

उन मुसलमान लेखकों और वक्ताओंसे जिनके निस्बत मेरे पास खत आये हैं, यह कहना चाहता हूँ कि अपने प्रति-पक्षीको मनचाही गालियाँ देकर वे न तो अपनी नेकनामीको बढ़ाते हैं और न अपने मजहबको। आर्य-समाज और समाजियोंको गालियाँ देकर वे न तो कुछ अपना फायदा कर सकते हैं और न इस्लामकी खिदमत कर सकते हैं।

हिन्दी-नवजीवन
१३ जुलाई, १९२४

❀

देहली और नागपुर

देहलीने अपने मुखपर कालिख लगा लिया है। देहलीके दंगे इस बातको सूचित करेंगे कि वहाँ असहयोगकी हस्ती नहीं रह गयी है क्योंकि सरकारके साथ असहयोग करनेका अभिप्राय है लोगोंमें परस्पर स्नेह होना। लेकिन देहलीमें पिछले सप्ताह सरकारकी बनिस्बत हमारे आपसमें ही अधिक असहयोग दिखायी दिया। महासभा और खिलाफत कमेटीके लोग लोगोंमें शान्ति न स्थापित कर सके। पुलिस और फौजको उसका श्रेय प्राप्त होनेवाला था। इसका गौरव उन्हें और शर्म हमें है। मुझे जो चिट्ठियाँ मिली हैं उनमें मालूम होता है कि हमारे स्वयंसेवक लोग शान्ति कायम करनेकी कोशिशमें गड़बड़ा गये और उन्होंने उन लोगोंकी सेवा-सुश्रुषाका भार अपने सिर लिया जो पुलिसके द्वारा नहीं बल्कि अपने आपसमें लड़कर घायल हुये थे।

इस सारी खुराफातका कारण बताया जाता है कुछ हिन्दुओंके द्वारा एक मुसलमान युवकके पीटे जानेकी खबर। अगर यह लड़का मर भी गया होता तो कौन बात थी? मुसलमान लोग हाल ही कायम हुई पंचायतों या सरकारी अदालतोंके द्वारा उसका इलाज कर सकते थे।

अच्छा मान लिजिये कि हिन्दुओंने एक मुसलमान लड़केको पीटा और उसपर कुछ मुसलमानोंने हिन्दुओंपर हमला किया, तब दूसरे हिन्दुओंने, फिर कोई भी

हो, क्यों उसके बदलेमें हाथ उठाया ? क्योंकि जो चिट्ठियाँ मुझे प्राप्त हुई हैं उसके अनुसार यह लड़ाई तमाम बस्तीमें जहाँतक हिन्दुस्तानी बसे हुए थे, फैल गयी थी। उन्हीं खतोंमें यह भी लिखा है कि अगरचे लड़ाई इतनी फैल गयी थी तो भी देहली निवासियोंका प्रधान भाग उससे अछूता रहा, यही नहीं बल्कि ऐसा भी हुआ कि हिन्दुओंने मुसलमानोंको पनाह दी है और मुसलमानोंने हिन्दुओंको। हाँ, इसमें कोई भी शक नहीं कि यह बात सराहनीय है। पर बात यह है कि देहलीका प्रधान भाग हुल्लड़बाजोंको रोक नहीं सका। सच बात तो यह है कि हमलोग अभी इन उपद्रवी शक्तियोंपर कब्जा नहीं कर पाये हैं।

नागपुरका भी यही हाल मालूम होता है। अबतक वहाँसे बहुत थोड़ी खबरें आ पाई हैं। पर यह बात स्पष्ट है कि नागपुरके हिन्दू और मुसलमान हम सबलोगोंके एक होकर सरकारसे लड़ने (यह लड़ाई शान्तियुक्त ही हो सकती है) की अपेक्षा आपसमें दिल खोलकर लड़ना ज्यादा फायदेमन्द समझते हैं।

इस तरह अगर देहली और नागपुरमें किसी भी रूपमें अधिकांश लोगोंकी प्रकृतिके चिन्ह हों तो हमें बहुत समयके लिए हिन्दू-मुस्लिम एकताको नमस्कार कर लेना होगा और इसलिए आजादीके लिए जोर-शोरको कोशिश करनेकी अपेक्षा सदैव गुलामीमें ही रहना मंजूर होगा।

मगर मुझे मायूसी नहीं होती। मौलाना शौकतअलीकी तरह मेरा यह विश्वास है कि ये झगड़े चन्दरोजा हैं और थोड़े ही दिनोंमें दोनों जातियां अवश्य एक शान्तिमय कार्यक्रमके अनुसार काम करने लगेंगी।

यदि हम सचमुच किसी ऐसे कार्यक्रममें लग जाना चाहते हैं तो मैं देहली और नागपुर दोनोंके महासभावादी और खिलाफतियोंको इत्तला दे देना चाहता हूँ कि किसी भी फरीकको किसी भी हालतमें अदालतोंका दरवाजा खटखटानेकी जरूरत नहीं है और ये तमाम झगड़े पंचायतमें फैसला किए जाँय। वकील लोग फिर वे चाहे वकालत करते हों या न करते हों इस बातमें कुछ मदद कर सकते हैं। बस वे इस मामलेकी अदालतमें पैरवी करनेसे इन्कार कर दें और दोनों फरीकको दिखावें कि इससे कुछ भी हासिल नहीं हो सकता। उलटा शायद नुकसान ही हो। वे उन्हें यह यकीन दिला सकते हैं कि यदि आप सचमुच सच्ची शान्ति चाहते हों तो वह अदालतोंके जरिये हरगिज नहीं मिल सकती।

हिन्दी-नवजीवन

२० जुलाई, १९२४

❀

दुःखद चित्र

अमृतसरसे एक मुसलमान सज्जन बड़े दुःखके साथ लिखते हैं—

"आजकल उत्तर भारत और पंजाबमे हिन्दुओ और मुसलमानोंके दो-दो हाथ होनेके समाचार रोज सुनाई देते हैं। इससे यह साबित होता है कि दोनो जातियाँ अपने देशमें उठनेवाले प्रश्नका निपटारा करनेमे असमर्थ हैं। यही नहीं, बल्कि अनेक वर्णके लोगोंके बने इस विशाल देशके राज्यकी बागडोर अपने हाथोंमे लेनेके अयोग्य है। दोनोंका विरोध मिटानेका आपका उद्योग बेशक सफल हुआ था। पर आप जहाँ जेलमें पहुँचे कि तुरंत ही झगड़ालू लोगोंने सिर उठाया। आपके जेल जानेके पहले जहाँ-जहाँ दोनों जातियोंमे प्रेम-भाव और समभाव था वहाँ-वहाँ आज फूट और दुश्मनी फैली हुई है। पंजाबके तमाम बड़े-बड़े शहर इन दोनों जातियोंकी लड़ाईके अखाड़े हो गये हैं और यह आशा नही दिखायी देती कि भूतकालका मीठा संबन्ध फिर कभी दिखायी देगा।

क्या इस रोगके असाध्य होनेके पहले आप कुछ इलाज नहीं कर सकते? कृपा करके पंजाब पधारिये और खुद अपनी आंखों सब हाल देखिये। जबतक आप फिर उस स्थितिको नही ला पावें तबतक आपकी खादीकी हलचल फजूल है। कहाँ १९१९ का अमृतसर कहाँ आजका! अमृतसरकी आबादी कोई दो लाख है। पर उसमेंसे ५० आदमी भी मुश्किलसे दिखायी देंगे। सो भी इसी कारण कि वे महासभाकी समितियोंके कोई न कोई पदाधिकारी हैं और यह सारी स्थिति हिन्दू और मुसलमानोंकी फूटका परिणाम है। आप इस मूल कारणपर कुल्हाड़ी चलाइये, बस दूसरी सब बातें अपने आप दुरुस्त हो जायगी। अफसोस! संगठनकी बुनियाद किसी बुरी साइतमें रखी गई मालूम होती है।"

पत्र-लेखक द्वारा चित्रित यह चित्र निःसन्देह कुछ अधिक काला है। पंजाबमें अगर हिन्दुओं और मुसलमानोंमें रोज खुल्लम-खुल्ला दो-दो हाथ होते हैं तो वहाँ रहना कठिन हो गया होगा। पर मुझे इस बातमें कोई सन्देह नहीं कि बाह्य दृष्टिसे तो पंजाब दूसरे किसी भी प्रान्तके बराबर ही शान्त है। फिर यह सज्जन सारा दोष संगठनके ही मत्थे मढ़ते हैं। यह उनकी भूल है। रोग तो था ही। हाँ, संगठनके कारण वह बढ़ जरूर गया है। दोनों जातियाँ अपनी-अपनी समता खो बैठी हैं।

यदि पंजाबियोंने हिन्दू-मुसलमान तनाजेके कारण खादी छोड़ दी हो तो खादी और देशके प्रति उनका प्रेम दिखौआ भर रहा होगा, परन्तु मैं इस बातको नहीं मानता कि देश-भक्ति औरोंसे कम है। इसलिए खादी कम होनेका कारण कहीं और खोजना होगा। इसका स्पष्ट कारण तो यह है कि लोगोंका यह विश्वास जाता रहा कि खादीके बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता। मलमल तथा केलिकोसे सूचित ऐश व आरामकी जिन्दगी बसर करनेकी इच्छा बढ़ गयी है। तमाम प्रान्तोंमें पंजाब ही ऐसा है जो अगर चाहे तो विदेशी कपड़ेका बहिष्कार आज ही कर दें। पर वह चाहता ही नहीं। मैंने लोगोंको यह कहते हुए सुना है कि कितने ही हिन्दू इसलिए खादी पहननेसे इनकार करते हैं कि वह मुसलमानोंकी बुनी होती है और मुसलमान इसलिए इन्कार

करते हैं कि उन्हें स्वराज्यसे कोई वास्ता नहीं वे तो अंग्रेजोंको निकाल देना चाहते हैं और उनकी जगह पुराना मुसलमानी राज्य कायम करना चाहते हैं और यह भी कहा जाता है कि अगर हिन्दू और मुसलमान दोनों एक सामान्य ध्येयके लिए चर्खेके सूत्रसे बँध जाँय तो पुराना राज्य नहीं कायम किया जा सकेगा। मगर यह सब फरे दिमागकी भाप है। ऐसी बातोंका विचार करने तककी फुरसत गरीब हिन्दू और मुसलमानोंको नहीं होती। वे तो खुशी-खुशी चर्खा चलाकर २-४ रुपयेकी आमदनी बढ़ानेके लिए उत्सुक रहते हैं।

परन्तु खादी कम होनेकी तथा पूर्वोक्त पत्रमें जो बातें बढ़ाकर कही गयी हैं उन्हें छोड़ दीजिये तो भी इस बातसे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि दोनों जातियोंमें वैमनस्यने बड़ा गम्भीर रूप धारण कर लिया है। क्या इस बातसे कोई आँखें मूंद सकता है कि देहलीमें नेता लोग अपना वजन और पहुँच खो बैठे हैं?

पर खुशकिस्मतीसे फिर अक्लमन्दीके दिन आते दिखायी देते हैं। जाटों और कसाइयोंको एक दूसरेका सिर फोड़नेकी अपनी बेवकूफी दिखायी दी है और कहते हैं कि उनमें सुलह हो गयी है। पर सबसे आशाजनक खबर तो दूसरे पत्रोंसे मिलती हैं। उनमें यह खबर है कि एक ओर जहाँ खून खराबी करनेपर तुले हुए दीवाने थे वहाँ दूसरोंकी जान बचानेका निश्चयकर रखनेवाले समझदार स्त्री-पुरुष भी वहाँ थे और ऐसी मिसाल एक दो ही नहीं बल्कि इतनी ज्यादा तादादमें है कि जिससे जाना जाता है कि दिल्लीमें जितनी इच्छा लड़ाईमें थी उतनी ही शांतिकी भी थी। लड़ाई स्वाभाविक नहीं बल्कि वह तो निरोग शरीरपर उठनेवाली गाँठकी तरह क्षणिक है। पर शान्ति स्वभाविक है, चिरस्थायी है। दोनों जातियाँ यदि एक बार इस बातका निश्चय कर लें कि हम एक दूसरेके धार्मिक रिवाजोंका लिहाज रखेंगे तो फिर कोई बात मुश्किल नहीं। मेरे पंजाब जानेके विषयमें यह बात छिपी नहीं रह गयी है कि मेरा दिल उन जगहोंपर जानेके लिए तड़प रहा है, जहाँपर तनाजा फैला हुआ है। इच्छा तो अपार है। सिर्फ शरीर दिलको पीछे हटाता है। जहाँ मैं देखूंगा कि अब सफर करनेमें तन्दुरुस्तीके लिए ज्यादा खतरा नहीं है फौरन मौलाना शौकत अलीके साथ सिंध और पंजाब जानेका इरादा करता हूँ।

हिन्दी-नवजीवन
२७ जुलाई, १९२४

❀

हिन्दू-मुस्लिम एकता

देहलीके हालके फसादोंपर प्रकाशित हकीम अजमल खाँका वक्तव्य जिस किसीने पढ़ा होगा वह उसमें छिपे गहरे असन्तोषको मालूम किये बिना न रहा होगा। कमसे कम उसका एक अंश दिये बिना मैं नहीं रह सकता।

"देहलीके फसादोंके वक्त जो कुछ वाकयात हुये उनमें सबसे ज्यादा शर्मनाक और दिल दहलानेवाले वाकयात हैं—औरतोंपर दुष्टतापूर्ण और नामर्दाना हमले होना। जहाँ तक मुझे मालूम हुआ एक ही मुसलमान महिलाके साथ हिन्दुओंने दुर्व्यवहार किया है; परन्तु इससे ज्यादा बुरी बात तो यह है कि १५ता०के फसादके वक्त कुछ ऐसे लोग जो दीने-इस्लामके पुजारी होनेका दावा रखते हैं। सिर्फ हिन्दू मन्दिरपर हमला करके और मूर्तियोंको तोड़ फोड़ कर ही संतुष्ट नहीं हुये बल्कि औरतों और बच्चोंपर भी नामर्दाना हमला करने से न सकुचाये। स्त्री-जातिकी पवित्रता, इज्जत तथा हुर्मतके प्रति अपने हम-दीन लोगोंके इस दुष्ट भावके ख्याल मात्रमें मुझे घोर मनस्ताप होता है और मेरी रूह कांप उठती है। ऐसे गुनाहगारोंकी जितनी ही निन्दा की जाय थोड़ी है और मैं तमाम सच्चे मुसलमानोंसे अपील करता हूँ कि वे मुक्तकंठसे बिना आगा पीछा सोचे इस नीचताकी निन्दा करें। मैं जमाअत-उलेमा और खिलाफत कमेटियोंको दावत देता हूं कि वे उठ खड़ी हो जायें और इस्लामकी सारी श्रेष्ठताको ऐसी जंगली निरंकुशताकी निन्दा करने और आयंदा ऐसा न होनेमें लगावें। सच्चे मुसलमानकी हैसियतसे ऐसी करतूतोंको बिल्कुल नामुमकिन कर देना हमारा नैतिक फर्ज है और अगर हम इसमें कामयाब न हों तो हम इस कौमी आजादी और स्वराज्यकी कोशिशोंमें हारे हुये ही हैं।"

एक सज्जन हमें उलहना देते हैं कि हकीम साहबने जिन हमलोंका जिक्र किया है उनपर आपने अपने वक्तव्यमें कुछ भी नहीं कहा। फसादकी बिल्कुल पहली खबरोंके आधारपर मैंने अपनी टिप्पणी लिखी थी। उनमें इन हमलोंका कोई भी जिक्र न था। उसके बाद हालतने बुरा रंग पलटा। यह खबर इतनी गम्भीर थी महज डरावने तारोंपर सर्व-साधारणके सामने टीका टिप्पणी नहीं की जा सकती थी। इसलिये मैंने देहलीके मित्रोंसे चिट्ठीपत्री शुरू की। परन्तु अबतक मैं किसी काबिल टीका टिप्पणी करनेकी हालतमें नहीं पहुँचा हूँ। खुशकिस्मतीसे मौलाना मुहम्मद अली अब दिल्ली पहुँच गये हैं। वे तहकीकात कर रहे हैं और उन्हें मैंने सुझाया है कि यदि किसी तरह मुमकिन हो तो महासभाके सभापतिके नाते अपनी आरंभिक तहकीकातकी रिपोर्ट प्रकाशित करें। इस मामलेमें मुझे अपने कर्तव्यका पूरा ख्याल है। फिलहाल मेरा स्थान वहीं मौलाना साहबके साथ है। लेकिन डाक्टरोंकी सलाहसे अभी रुक रहा हूँ। अबतक जो कुछ पथ्य-परहेज करना पड़ता है वह सब शायद जरूरी न हो, क्योंकि यद्यपि मैं बाहर आता जाता नहीं हूँ तो भी काम बहुत कुछ कर सकता हूँ। लेकिन जहाँ तक मुमकिन है मैं खतरेको बचाना चाहता हूँ। जो मित्र मुझे इस अवसरपर मेरे कर्तव्यकी याद दिलाते हैं उन्हें मैं यकीन दिलाता हूँ कि मैंने बिला शर्त अपनेको मौलाना मुहम्मद अलीके विचारपर छोड़ दिया है और मैंने यह कह दिया है कि यदि मेरी जरूरत आपको देहलीमें तुरंत मालूम हो तो मेरी तन्दुरुस्तीका ख्याल न करना और यों ही हर हालतमें मैं जल्द ही दिल्ली जानेकी तैयारी कर रहा हूँ। पर अगर मौलाना मुहम्मद अली मेरा वहाँ जल्द आना जरूरी न सम-

झते हों तो मैं अगस्तके अन्ततक सफर करना नहीं चाहता। अहमदाबादमें मेरी तन्दुरस्ती बिगड़ गई इसीलिये श्री विठलभाई पटेलसे अनुरोध किया गया है कि आप बम्बई कारपोरेशनकी ओरसे मुझे दिया जानेवाला अभिनन्दन-पत्र अगस्तके अन्तमें देनेकी तजबीज करें। परन्तु यदि दिल्ली जानेकी जरूरत होगी तो मैं बम्बई जानेके पहले वहाँ जानेमें आगा-पीछा न करूंगा।

हिन्दी-नवजीवन
३ अगस्त, १९२४

यह उपाय ?

एक पत्र लेखक हिन्दू-मुसलमान-समस्याका निपटारा इस प्रकार सुझाते हैं:—

"मुसलमान हिन्दुओंका लिहाज तभी करेंगे जब उन्हें खबर पड़ेगी कि हिन्दू शरीर बलमें उनका मुकाबला कर सकते हैं और उसी अवस्थामें दोनोंमें एकता होनेकी सम्भावना होगी। इसलिए आपको ऐसी कोशिश करनी चाहिए जिससे हिन्दू–जातिका शरीर बलवान हो। हरएक गाँव और शहरमें अखाड़े खोलना और पोष्टिक भोजन देना चाहिए। आप उन्हें उपदेश दीजिये कि वे लड़के लड़कियोंकी शादियोंमें बहुत खर्च न करें और २१वर्ष तक ब्रह्मचर्यका पालन करें। ऐसा करके आप हिन्दू–जातिकी भारी सेवा करेंगे और फलतः स्वराज्य भी तुरन्त मिल जायगा।"

इस महाशयकी इच्छा तो ऐसी मालूम होती है कि हिन्दू और मुसलमानको पशु-कोटिमें उतारकर दोनोंकी एक दूसरेसे मुठभेड़ होती रहे। पर वे इस बातको भूल जाते हैं कि पशुओंमें प्रेम नहीं होता। हाँ, मैं यह जरूर चाहता हूँ कि तमाम हिन्दू बलवान हों। मैं यह भी चाहता हूँ कि वे दुनियांके किसी आदमीसे न डरें। ये बातें केवल हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके लिये नहीं, बल्कि इस ऐक्यके बाद राष्ट्र अविचल बना रहें, इसके लिये भी आवश्यक है। पर मैं जानता हूँ कि केवल शरीर-बलसे एकता नहीं हो सकती। यदि हम दोनोंमें आपसमें प्रेम न हो तो हमेशा चूहे-बिल्लीकी तरह हमारे अन्दर बैर-भाव रहेगा। और मैं अपना जीवन ऐसी स्थिति पैदा करनेके लिये अर्पण करना नहीं चाहता कि हथियार बांधकर दोनों जातियाँ एक दूसरेके हमलोंको रोकें। मैं तो चिरकालीन शान्ति चाहता हूँ। वह केवल पर-धर्म सहिष्णुतासे ही पैदा हो सकती है। यह बात तो अब पुरानी पड़ गई। हम केवल यही चाहते हैं कि क्या अंग्रेजोंका और हमारा तथा क्या हिन्दुओंका और क्या मुसलमानोंका हृदय-परिवर्तन हो। दूसरी सब बातें अपने आप दुरुस्त हो जायंगी।

पत्र-लेखक शरीर-बलकी प्राप्ति ब्रह्मचर्य बताते हैं। शरीर-बल प्राप्त करनेके लिये आत्म-संयम करनेका विचार करना मानों हीरेको कौड़ीके दाम बेचना है। क्या बृटिश सोल्जर सैन्डो बननेके लिये आत्म-संयमका पालन करते हैं? पत्र-लेखकसे मैं सिफारिश करता हूँ कि उनके उपायोंसे निकलनेवाले परिणामोंका हिसाब वे लगा देखें। हमारे पास दस हजार सच्चे ब्रह्मचारी हों तो क्या बात हो? ऐसी सेनाके जरिये तो हम मुसलमान, अंग्रेज आदि सबके हृदयको जीत सकते हैं। क्या यह बात इन महाशयकी समझमें नहीं आती कि उनके ब्रह्मचारी उस तरीकेसे लड़नेसे इन्कार कर देंगे जो उन्होंने सुझाया है? ऐसा करनेकी उन्हें जरूरत भी नहीं होगी।
हिन्दी-नवजीवन
१० अगस्त, १६२४

❀

जान-बूझकर किया गया अपमान

यदि मुरादाबादके जिला मजिस्ट्रेटकी विज्ञप्तिपर विश्वास किया जा सके तो उसमें जो समाचार प्रकाशित हुए हैं वे बड़े दिल दहलानेवाले और बेकरारी पैदा करनेवाले हैं। कहा जाता है कि दो मन्दिर अपवित्र किये गये हैं और वहाँ एकत्रित हिन्दुओंपर हमला किया गया था। इस प्रकार जान-बूझकर मन्दिरोंको अपवित्र करनेका कोई कारण नहीं बताया जाता। अमेठी, जिला लखनऊमें कहा जाता है कि ऐसा ही हुआ है। वहाँ कहते हैं मैजिस्ट्रेटके हुक्मके खिलाफ हिन्दुओंने शंख फूंके। यदि उन्होंने ऐसा किया तो यह काम मैजिस्ट्रेटका था कि वह उन शंख बजानेवालोंको सजा देता; किन्तु मुसलमानोंका यह काम हरगिज न था कि वे एक बड़ी तादादमें मन्दिरमें घुस जाते और हमला करते और उसे अपवित्र कर देते। इसमें कोई शक नहीं कि ऐसे हमलोंको मदद करनेवाली कोई संगठित जमात है। यह जमात उन लोगोंकी है जो हिन्दू-मुसलमानोंमें मनमुटाव पैदा करते हैं और हिन्दू-मुस्लिम-एकतामें जान बूझकर रोड़े डालते हैं। समझमें नहीं आता कि ऐसे काम करनेवालोंको इससे क्या हासिल होगा। इससे इस्लामकी इज्जत नहीं बढ़ सकती और वह लोकमान्य नहीं हो सकता। यदि किसी दुनियावी लाभ पानेके लिये ऐसे काम किये जाते हैं तो वह भी नहीं मिल सकता। यदि वे ऐसे उपायोंसे सरकारकी मिहरबानीकी आशा रखते हों तो उनका यह भ्रम थोड़े ही दिनोंमें दूर हो जायगा।
हिन्दी-नवजीवन
२४ अगस्त, १६२४

गुलबर्गाका पागलपन

पिछले सप्ताहमें मैंने इशारा किया था कि हिन्दुओंके मन्दिरोंके अपवित्र करनेकी जो हवा चल रही है, उसकी सहायताके लिये जरूर कोई संगठित जमात है। गुलबर्गाकी यह ताजी मिसाल है। हिन्दुओंकी तरफसे यदि मुसलमान भड़काये भी गये हों तो इससे क्या? क्या मुसलमानोंका इस तरह टूट पड़ना भयानक नहीं दिखाई देता? मन्दिरोंको अपवित्र करना किसी भी हालतमें समर्थनीय नहीं कहा जा सकता। मौलाना शौकत अलीने जब सांभर और अमेठीका हाल सुना तो वे चौंके और गरज कर कहा कि अगर किसी दिन हिन्दूलोग मुसलमानोंकी मसजिदोंको नापाक करके इसका बदला लें तो वे ताज्जुब न करें। मौलाना साहबके इन क्रोध-पूर्ण वचनोंको सुनकर मुमकिन है कि हिन्दूलोग फूल उठें, या उनके दिलको गुदगुदी होने लगे। पर मुझे ऐसा नहीं होता और मैं हिन्दुओंको सलाह देता हूँ कि वे भी अपनेको इससे बचायें। वे इस बातको अच्छी तरह समझ लें कि जब-जब मुसलमान मदान्ध होकर हिन्दुओंपर टूट पड़े हैं या टूट पड़ते हैं तब-तब बहुतेरे हिन्दुओंसे अधिक कहीं मेरे दिलको चोट पहुँचा है और पहुँचता है। मुझे इस बातका पूरा ध्यान है कि मुझे इस बारेमें मेरी जिम्मेदारी क्या है। हाँ, मैं यह जानता हूँ कि बहुतेरे हिन्दुओंका दल यह कहता है कि ऐसे बहुतेरे दंगे व फसादका जिम्मेदार मैं हूँ। क्योंकि, उनका कहना है कि सोई हुई मुसलमान जनताको जाग्रत करनेमें मेरा ही गहरा हाथ है। मैं इस इल्जामको पसन्द करता हूँ और यद्यपि मुझे अपनी इस कृतिपर जरा भी पछतावा नहीं होता, तथापि मैं जानता हूँ कि उनका दलील पुरजोर है। इसलिये अगर और किसी वजहसे नहीं तो इसी अपनी बढ़ी हुई जिम्मेवारीके ख्यालसे ही मुझे, बहुतेरे हिन्दुओंकी अपेक्षा इन मन्दिरोंके अपवित्र किये जानेकी दुर्घटनाओंपर अधिक दुःख होना चाहिये। मैं मूर्तिपूजक भी हूँ और मूर्ति-भंजक भी हूँ, पर उस अर्थमें जिसमें मैं इन शब्दोंका सही अर्थ मानता हूँ। मूर्ति-पूजाके अन्दर जो भाव हैं मैं उसका आदर करता हूँ। मनुष्य जातिके उत्थानमें उससे अत्यन्त सहायता मिलती है और मैं अपने प्राण देकर भी उन हजारों पवित्र देवालयोंकी रक्षा करनेका सामर्थ्य अपने अन्दर रखना पसन्द करूँगा जो हमारी इस जननी जन्म-भूमिको पुनीत कर रहे हैं। मुसलमानोंके साथ जो मेरी मित्रता है उसके अन्दर यह बात पहले ही से शरीक की हुई है कि वे मेरी मूर्तियों और मेरे मंदिरोंके प्रति पूरी-पूरी सहन शीलता रखेंगे। मैं मूर्ति-भंजक इस मानेमें हूँ कि मैं उस धर्मान्धताके रूपमें छिपी सूक्ष्म मूर्ति-पूजाका सिर तोड़ देता हूँ, जो कि अपनी ईश्वर-पूजाकी विधिके अलावा दूसरे लोगोंकी पूजा विधिमें किसी गुण और अच्छाईको देखनेसे इनकार करती है। इस किस्मकी सूक्ष्ममूर्ति-पूजा बुत-परस्ती ज्यादह घातक है, क्योंकि यह उस स्थूल और प्रत्यक्ष पूजासे जिसमें कि एक पत्थरके टुकड़े या सुवर्णकी मूर्तिमें ईश्वरकी कल्पना कर ली जाती है अधिक सूक्ष्म और धोखा देनेवाली है।

हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्यके लिये यह आवश्यक है कि मुसलमान लोग आपद्धर्मके तौरपर नहीं, व्यवहार नीतिके तौरपर नहीं बल्कि अपने मजहबका एक अंग समझ कर दूसरोंके मजहबके साथ सहिष्णुता रखें तबतक जबतक कि वे लोग अपने-अपने मजहबोंको सच्चा मानते रहें। इसी तरह हिन्दुओंसे भी यह आशा की जाती है कि वे अपना धर्म और ईमान समझकर दूसरेके धर्मोंके प्रति उसी सहिष्णुताका परिचय दें—फिर हिन्दुओंको अपनी भावनाके अनुसार वे चाहें कितने ही तिरस्कारके योग्य मालूम हों। इसलिये हिन्दुओंको चाहिये कि वे बदला लेनेकी इच्छाको अपने दिलोंमें जगह न दें। सृष्टिकी उत्पत्तिसे लेकर आजतक हम बदलेकी अर्थात् प्रतिहिंसाकी आजमायश करते आ रहे हैं और अबतकका तजुरबा हमें बतलाता है कि वह बुरी तरह बेकार साबित हुई। उससे जहरीले असरसे हम आज बुरी तरह छटपटा रहे हैं। जो कुछ हो, पर हिन्दुओंको चाहिये कि मन्दिरोंके तोड़े जानेपर भी वे मसजिदोंकी ओर उंगली तक न उठावें। यदि वे बदलेका अवलम्बन करेंगे तो उनकी बेड़ियाँ और भी मजबूत हो जायंगी और ईश्वर जाने क्या-क्या दुर्गति उनकी होगी। इसलिये हजारों मन्दिर तोड़-फोड़कर मिट्टीमें क्यों न मिला दिये जाँय, मैं एक भी मसजिदको न छूऊँगा और इस तरहके दीनके दीवाने लोगोंके दीनों-ईमानसे अपने धर्म-कर्मको ऊंचा साबित करने की उम्मीद रक्खूँगा। ऐसे समय यदि मैं सुनूँगा कि पुजारी लोग अपनी-अपनी मूर्तियोंकी रक्षा करते हुए सुरपुरको चले गये तो मेरा कलेजा उछल उठेगा। ईश्वर घट-घट व्यापी है। वह मूर्तिमें भी विद्यमान है फिर भी वह अपने और अपनी मूर्तिके अपमान और तोड़-फोड़को चुपचाप सहन कर लेता है। पुजारियोंको भी चाहिये कि वे अपने भगवानकी तरह अपनी मन्दिरकी रक्षाके लिये कष्ट सहन करें और मरना सीखें। यदि हिन्दू लोग बदलेमें मसजिदें तोड़ने लगेंगे तो वे अपनेको भी उन्हीं लोगोंकी तरह धर्मान्ध साबित करेंगे जो कि मन्दिरोंको अपवित्र करते हैं और तिसपर भी अपने धर्मकी रक्षा तो वे हरगिज न कर सकेंगे।

अब मैं उन मुसलमानोंसे कहता हूँ कि जो छिपे हुए हैं और जो इन मन्दिरोंके तोड़नेमें भीतर ही भीतर शरीक हैं—"याद रक्खो, इस्लामकी जाँच तुम्हारी करतूतोंसे हो रही है"। मैंने अभी तक एक भी ऐसा मुसलमान नहीं देखा है जिसने इन हमलोंकी ताईदकी हो—फिर वे भले किसीके उभाड़े जानेपर क्यों न किये गए हों। मुझे जहाँ तक दिखाई देता है, हिन्दुओंकी तरफसे, अगर हो तो, आपको उभड़नेका मौका बहुत ही कम दिया गया है। पर अच्छा, फर्ज कीजिये कि बात इसके खिलाफ हुई है अर्थात् हिन्दुओंने मुसलमानोंको दिक करनेके लिये मसजिदके नजदीक बाजे बजाए और यहाँ तक कि एक मीनार परसे एक पत्थर उखाड़ लिया। तो भी मैं कहनेका साहस करता हूँ कि मुसलमानोंको मन्दिरोंको अपवित्र न करना चाहिये था। बदलेकी भी आखिर हद होती है। हिन्दूलोग अपने देवालयोंको अपने जानसे अधिक मानते हैं। हिन्दुओंके जानका नुकसानका तो ख्याल किया जा

सकता है। पर उनके मन्दिरोंको हानि पहुँचाने का नहीं। धर्म जीवनसे बढ़कर है। इस बातको याद रखिये कि दूसरे धर्मोंके साथ तात्विक तुलना करनेमें चाहे किसीका धर्म नीचा उतरता हो, परन्तु उसे तो अपना वह धर्म सबसे सच्चा और प्रिय ही मालूम होता है। परन्तु जहाँ तक अनुमान पहुंचता है हिन्दुओंकी तरफसे मुसलमानोंको उभाड़नेका मौका ही नहीं दिया गया है। मुलतानमें दो मन्दिर अपवित्र किये गये हैं, उस समय उन्हें हिन्दुओंने कहाँ उभाड़ा था? मेरे हिन्दू-मुस्लिम तनाजेवाले लेखमें हिन्दुओंके संबन्धमें जो मसजिदोंको अपवित्र करनेकी बात कही गई है उसके सबूत एकत्र करनेको कोशिश मैं कर रहा हूं। परन्तु अबतक मुझे उनका कुछ भी सबूत नहीं मिला है। अमेठी, सांभर और गुलबर्गाकी जो खबरें प्रकाशित हुई हैं, ऐसे कामोंको करके आप इस्लामकी कीर्तिको बढ़ाते नहीं हैं। अगर आप इजाजत दें तो मैं कहूँगा कि इस्लामके इज्जतका मुझे उतना ही ख्याल है जितना खुद अपने मजहबका है। यह इसीलिये कि मैं मुसलमानोंके साथ पूरी, खुली और दिलकी दोस्ती चाहता हूं। पर मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि ये मन्दिरोंको अपवित्र करनेकी घटनायें मेरे हृदयके टुकड़े-टुकड़े कर रही हैं।

देहलीके हिन्दुओं और मुसलमानोंसे मैं कहता हूँ—"यदि आप इन दो जातियोंमें मेल मिलाप करना चाहते हों तो आपके लिये यह अनमोल अवसर है। अमेठी, साँभर और गुलबर्गामें जो कुछ हुआ है उसे देखनेके बाद आपका यह दुहरा कर्तव्य हो जाता है कि आप इस मसलेको हलकर डालें। हकीम अजमलखाँ साहब और डा० अनसारी जैसे मुसलमानके सहवासका सौभाग्य आप लोगोंको प्राप्त है, जो कि अभी कलतक दोनों जातियोंके विश्वासपात्र थे। इस तरह आपकी परम्परा उच्च चली आई है। अपनी दलबन्दियोंको तोड़कर ऐसी दिली दोस्ती कायम करके जो किसी तरह न टूट पावे इन लड़ाई-झगड़ोंको अच्छे फलमें परिणत कर सकते हैं। मैंने तो अपनी सेवाएं आपके हवाले कर ही दी है। यदि आप मुझे दोनोंका मध्यस्थ बनाना पसन्द करेंगे तो मैं देहलीमें अपनेको दफनानेके लिये तैयार हूं। और उन दूसरे सज्जनोंके साथ जिन्हें आप तजवीज करेंगे, सभी बातोंका पता लगानेकी कोशिश करूंगा। इस सवालके स्थायी निपटारेके लिये आवश्यक बात है कि हम पहले इस बातकी पूरी तहकीकात करें कि पिछली जुलाईमें दर हकीकत क्या-क्या हुआ और यह क्योंकर हो पाया। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप शीघ्र ही किसी बातको तय कर दीजिये। यह हिन्दू-मुसलमानोंका सवाल ऐसा सवाल है जिसके ठीक-ठीक हल होने पर ही नजदीकी भविष्यमें भारतका भाग्य अवलंबित है। देहली अगर चाहे तो इस सारे सवालको हलकर सकती है; क्योंकि देहली जो कुछ करेगी, यह बहुत संभव है उसीका अनुसरण दूसरी जगह हो।

हिन्दी-नवजीवन

३१ अगस्त, १९२४

फिर नागपुर

डाक्टर मुंजेने मुझे चेताया है कि मैं नागपुरके हिन्दू-मुस्लिम तनाजेके बारेमें कुछ न लिखूं। यह तीसरी दफा नागपुरके हिन्दू-मुसलमान लड़े हैं और एक दूसरेके साथ मारपीट की है। क्या उन्होंने इस बातका अहद कर लिया है कि जब हम अपने पशु बलको आजमा देखेंगे, तब कहीं जाकर शान्तिके साथ किसी सुलहके लिये विचार करेंगे? क्या दोनोंके वैमनस्यके रोकनेका दूसरा कोई उपाय नहीं हो सकता? ऐसा मालूम होता है कि नागपुरमें दोनों दलोंमें बराबर-बराबर दम-खम है। इतना होते हुए भी उन्हें जल्द ही पता लग जायगा कि हमें लठ-बाजी करनेसे कुछ भी हासिल नहीं हो सकता। अवश्य ही नागपुरमें ऐसे कितने ही समझदार और तटस्थ हिन्दू तथा मुसलमान होंगे जो दोनोंके झगड़ोंका निपटारा करा दें और पिछली बुराइयोंको भुलवा दें। मन्दिरोंके अपवित्र किये जानेकी तरह इक्के-दुक्के राहगिरोंपर टूट पड़नेका नया तरीका और निकल पड़ा है। बहुतेरे झगड़े तो क्षणिक होते हैं और उनका कारण होता है छोटी-मोटी बातोंमें बातका बढ़ जाना और लोगोंका उभड़ उठना। लेकिन बेकसूर लोगोंपर टूट पड़ना तो यही दिखलाता है कि दोनों ओरसे ऐसी कोशिशें जान-बुझकर और किसी खास तजवीजके मुताबिक हो रही हैं। पर जबतक दोनों दलवालोंकी तरफसे ठीक-ठीक और विश्वसनीय समाचार न मिले तबतक हमें चुपचाप होकर सहन करना लाजिमी है। ऐसी अवस्थामें मैं सिर्फ इतनी आशा भर कर सकता हूँ कि समझदार और तटस्थ लोग दोनों जातियोंमें राजी-रजामन्दीके साथ स्थायी शान्ति करा देनेमें कोई बात न उठा रखेंगे।

हिन्दी-नवजीवन
७ सितम्बर, १९२४

एक उपदेश

"मुसलमानोंकी चापलूसी करनेकी ऐसी लत आपको पड़ गई है कि आप हमेशा यही मानते हुये दिखाई देते हैं कि आप उन्हें उसी अवस्थामें हिन्दुओंके साथ रख सकते हैं जब कि उन्हें बिल्कुल दोषी न मानें। पर अब तो आपको न्यायकी दृष्टिसे दोनों पक्षोंमें निन्दा अथवा स्तुति बांट देनी पड़ेगी। क्योंकि निर्बल और सीधे लोगोंकी ही हमेशा गलती निकालने और बलवान तथा जाहिल लोगोंकी चापलूसी करनेकी नीतिमें बुद्धिमानी नहीं है।"

एक हिन्दू मित्रने मुझे एक लम्बा चौड़ा उपदेश सुनाया था। उसका यह एक छोटासा टुकड़ा है। मैं जानता हूँ कि दूसरे अनेक हिन्दू ऐसा ही विचार रखते होंगे। पर सच बात यह है कि वहम और आवेशसे भरे वायुमण्डलमें मेरी निष्पक्षताके पक्षपात समझ लिये जानेकी बहुत आशंका है। यदि मैं इस्लाम अथवा मुसलमानोंका जरा भी बचाव करता हूँ तो उन हिन्दुओंको आमतौरपर चोट पहुंचाती है जो इस्लाम अथवा मुसलमानोंके अन्दर किसी भी अच्छी चीजको देखनेसे इन्कार करते हैं। परन्तु इससे मैं विचलित नहीं होता। क्योंकि मैं जानता हूँ कि किसी न किसी दिन मेरे हिन्दू आक्षेपक मेरी दृष्टिकी यथार्थताको कबूल करेंगे। शायद वे इस बातको भी मानेंगे कि जबतक एक पक्ष दूसरे पक्षकी दृष्टि-बिन्दु समझने, उसकी कदर करने और उसके लिये कुछ झुकनेको तैयार न हों तबतक एकता होना असंभव है। इसके लिये बड़ा दिल चाहिये और उदारता चाहिये। हमें उसी तरह दूसरोंके साथ बर्ताव करना चाहिये जिस तरह हम चाहते हों कि दूसरे लोग हमारे साथ करें।

हिन्दी-नवजीवन
७ सितम्बर, १९२४

❀

हिन्दू-मुसलमान ऐक्य

सूरतकी सभामें हिन्दू-मुस्लिम एकताके संबन्धमें कुछ बोलनेका मौका मिला था। कितने ही सज्जनने संगठनके विषयमें मेरे विचार जानना चाहे थे। उसके बाद एक मुसलमान सज्जनका पत्र मुझे मिला। उसमें उन्होंने कितनी बातें लिखी थीं। अब मैं देखता हूं कि गुजरातमें भी झगड़ेका भय दिखाई देता है। बीसनगरका मामला अभी शान्त हुआ नहीं माना जा सकता। मांडलमें कुछ उपद्रव हुआ। अहमदाबादमें कुछ खलबली हुई। उमरेठमें भी कुछ डर है। यही हालत और प्रांतोंमें भी, जैसे भागलपुर (बिहार) में, हो रहा है।

यह सवाल दिन-दिन गम्भीर होता जा रहा है। एक बात तो शुरुआतमें ही तय हो जानी चाहिये। यह बात बराबर कही जाती है कि इन झगड़ोंमें सरकारी लोगोंका हाथ है। यह बात यदि सच हो तो मुझे दुःख होगा, ताज्जुब तो कुछ भी न होगा। क्योंकि सरकारकी तो नीति ही है हममें फूट डाले रखना—हमें अलहदा-अलहदा रखना। सो सरकार यदि यह चाहती हो कि हम लड़ें-झगड़ें तो आश्चर्यकी बात नहीं और दुःख तो इसपर होगा कि अभी तक दोनों कौम अपना-अपना स्वार्थ नहीं समझ पाई हैं। जिन्हें लड़ाई-झगड़ा करने की आदत पड़ रही है उन्हीं लोगोंमें

तीसरा शख्स झगड़ा करा सकता है। ब्राह्मणों और बनियोंमें तो सरकारकी ओरसे झगड़ा करानेकी बात अबतक नहीं सुनी गई है। सुन्नी मुसलमानोंमें भी लड़ाई करानेका हाल नहीं सुना। पर वह हिन्दू-मुसलमानोंमें झगड़े फसाद पैदा करती है, क्योंकि ये जातियाँ बहुत बार लड़ा और लड़ चुकी हैं। जब हम लड़नेका रास्ता छोड़ देंगे तभी हमें सुखसे स्वराज्य नसीब हो सकता है, नहीं तो वह असंभव है।

जबतक हिन्दू डरा करेंगे तबतक भी झगड़े होते ही करेंगे। जहाँ डरपोक होता है वहाँ डरानेवाला मिल ही जाता है। हिन्दुओंको समझ लेना चाहिये कि जबतक वे डरते रहेंगे तबतक उनकी रक्षा कोई न करेगा। मनुष्यका डर रखना यह सूचित करता है कि हमारा ईश्वरपर अविश्वास है। जिसे यह विश्वास न हो कि ईश्वर हमारे चारों ओर है, सर्वव्यापी है, या यह विश्वास शिथिल हो, वे अपने बाहु-बलपर विश्वास रखते हैं। हिन्दुओंको दोमेंसे एक बात प्राप्त करनी होगी। यदि ऐसा न करेंगे तो हिन्दू-जातिके नष्ट हो जानेकी संभावना है।

पहला मार्ग है, केवल ईश्वरपर विश्वास करके मनुष्यका डर छोड़ देना। यह अहिंसाका रास्ता है तथा उत्तम है। दूसरा है, बाहुबलका अर्थात् हिंसाका मार्ग। दोनों मार्ग संसारमें प्रचलित हैं और हमें दोमेंसे किसी भी एकको ग्रहण करनेका अधिकार है। पर एक आदमी एक ही समय दोनोंका उपयोग नहीं कर सकता।

यदि हिन्दू-मुसलमान दोनों बाहुबलका ही रास्ता ग्रहण करना चाहते हों तो फिलहाल शीघ्र ही स्वराज्यकी आशा छोड़ देना ही उचित है। तलवारकेन्यायसे ही यदि सुलह करनी हो तो दोनोंको पहले खूब लड़ लेना होगा, खूनकी नदियाँ बहेंगी। दो-चार खून होनेसे या पाँच-पचीस मन्दिर तोड़नेसे फैसला नहीं हो सकता।

मैं संगठनके खिलाफ हूँ भी और नहीं भी। संगठनका मतलब है अखाड़ा और अखाड़ोंके जरिये हिन्दू-गुण्डोंको तैयार करना। यह हालत तो मुझे भयाजनक ही मालूम होती है। गुण्डोंके द्वारा धर्मकी रक्षा नहीं हो सकती। यह तो एक भयके बदले, उसके अलावा, मानों दूसरा भय तैयार किया जाना है। यदि ब्राह्मण, वैश्य आदि ही अखाड़ोंके द्वारा अपनी शारीरिक उन्नति करें और करनेके लिये तैयार हों तो मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं। मुझे तो यकीन है कि उन्हें लड़ाई लड़नेके लायक शक्ति प्राप्त करनेमें बहुत समय लगेगा। अखाड़ोंके लिये अखाड़े खोलना बिलकुल ठीक है। मुसलमानोंको लड़ाईमें शिकस्त देनेका इलाज अखाड़ा नहीं है। मुझे इसमें जरा भी शक नहीं है।

यदि हम मुसलमानोंके दिलको जीतना चाहते हों तो हमें तपश्चर्या करनी होगी। हमें पवित्र बनना होगा, हमें अपने ऐबोंको दूर कर देना होगा। अगर वे हमारे साथ लड़ें तो हमें उलटकर प्रहार न करते हुये हिम्मतके साथ मरनेकी विद्या सीखनी होगी। डरकर, औरतों, बालबच्चों और घर-बारको छोड़कर भाग जाना

और भागते हुये मर जाना, मरना नहीं कहाता। बल्कि उनके प्रहारके सामने खड़ा रहना और हँसते-हँसते मरना हमें सीखना होगा।

मैं मुसलमानोंको भी यही सलाह दूँगा। पर वह अनावश्यक है। क्योंकि वे डरानेवाले माने गये हैं। सामान्य अनुभव यह है कि वे मरनेमें बहादुर हैं। इस लिये उन्हें हिन्दूओंके बाहु-बलसे बचनेका रास्ता दिखानेकी जरूरत नहीं रह जाती। उन्हें तो यह विनती करनी होगी कि 'भाई साहब, अपनी तलवार म्यानमें रखिये। अपने गुण्डोंको अपने कब्जेमें रखकर सुलहसे काम लीजिये। मुसलमानोंको हिन्दूओंकी तरफसे दूसरे भय चाहे हों—आर्थिक भय है। बकरीदके दिन उनकी क्रियामें रुकावट डालनेका भय है। पर उन्हें हिन्दुओंके हाथों पिटनेका डर हरगिज नहीं है। इसलिये उन्हें तो मैं यही कहूँगा कि आप लाठी या तलवारके बलपर इस्लामकी रक्षा नहीं कर सकते। लाठीका युग अब चला गया। धर्मियोंकी कसौटी उनकी पवित्रताके द्वारा होगी। धर्मकी रक्षा आप गुण्डोंके हाथोंमें जाने देंगे तो इस्लामको भारी नुकसान पहुचावेंगे। फिर इस्लाम फकीरोंका, खुदा-परस्तलोगोंका धर्म नहीं रहेगा।

यह तो साधारण विचार हुआ। मौलाना हसरत मोहानी कहते हैं कि मुसलमानोंको चाहिये कि वे हिन्दुओंके खातिर गायको बचावें और हिन्दू मुसलमानोंसे छूत न मानें। वे कहते हैं कि उत्तर भारतमें मुसलमान भी अस्पृश्य माने जाते हैं। मैंने मौलाना साहबसे कहा, मैं तो ऐसी बातमें सौदा या बदला नहीं करूँगा। मुसलमान यदि हिन्दूओंके लिये गाय बचाना अपना धर्म समझें तो गायको बचावें फिर हिन्दू चाहे अच्छा सलूक करें चाहे बुरा। हिन्दू यदि मुसलमानोंको अस्पृश्य मानते हों तो यह पाप है। मुसलमान चाहे गो-बध करें या न करें, पर हिन्दूओंको चाहिये कि वे मुसलमानोंको अछूत न मानें। अर्थात् जो व्यवहार चार जातियाँ एक दूसरेके साथ स्पर्श आदिके बारेमें रखती हैं, वही हिन्दूओंको मुसलमानोंके साथ रखना चाहिये। इस बातको तो मैं स्वयंसिद्ध मानता हूँ। हिन्दू-धर्म यदि मुसलमानोंके या अन्य धर्मियोंके तिरस्कारकी शिक्षा देता हो तो उसका नाश ही होगा। इसलिये बिना सौदे-सट्टेके दोनोंको अपना-अपना घर करना साफ चाहिये। गायको बचानेके लिये मुसलमानोंके साथ दुश्मनी करना गायको मारने का रास्ता है और दुहरा पाप है। यदि विधर्मीलोग गो-बध करें तो इससे हिन्दू धर्मका लोप न होगा। पर हिन्दू गायको न मारें। उनका यह धर्म है। पर क्या विधर्मी पर जबरदस्ती करके उसके हाथसे गायको छुड़ाना उनका धर्म हो सकता है? हिन्दूलोग भारतमें स्वराज्य चाहते हैं, हिन्दू राज्य नहीं। हिन्दू राज्यमें भी यदि सहिष्णुताका पालन हो तो मुसलमान और ईसाई दोनोंके लिये जगह होनी चाहिये। हिन्दू राज्यमें भी यदि दोनों जातियाँ समझ बूझकर अपनी खुशीसे गो-कुशी बन्द कर दें, तभी हिन्दू धर्मकी शोभा मानी जायगी। परन्तु हिन्दुओंके लिये हिन्दू राज्यकी इच्छा करना ही, मैं देश-द्रोह मानता हूँ।

अब रहा बाजेका झगड़ा। बाजेका झगड़ा दिनपर दिन बढ़ता दिखाई देता है। सूरतवाला पत्र कहता है कि हिन्दू-धर्ममें बाजा बजाना अनिवार्य नहीं है। इसलिये हिन्दुओंको चाहिये कि मुसलमानोंके भावोंको आघात न पहुँचानेके लिहाजसे मसजिदोंके सामने बाजे बजाने बन्द कर दें। मैं चाहता हूँ यह बाजेकी बात उतनी ही आसान हो जितनी कि पत्र-लेखक बताते हैं। पर हकीकत इसके खिलाफ है। हिन्दू-धर्मकी कोई भी विधि ऐसी नहीं है जो बिना बाजा बजाये हो सकती है। कितनी ही विधियाँ तो ऐसी हैं जिनमें शुरुसे आखिरतक बाजा बजाना जरूरी है। हाँ, इसमें भी हिन्दुओंको इतनी चिन्ता जरूर रखनी चाहिये कि मुसलमानोंका दिल न दुखने पावे। बाजा धीमे बजाया जाय, कम बजाया जाय, यह सब लेन-देनकी नीतिके अनुसार हो सकता है और होना चाहिये। कितने ही मुसलमानोंके साथ बातें करनेसे मुझे ऐसा मालूम होता है कि इस्लाममें कोई ऐसा फरमान नहीं है जिससे दूसरोंके बाजेको बन्द कराना लाजिमी है। इसलिये मसजिदके सामने विधर्मीके बाजे बजानेसे इस्लामको धक्का नहीं पहुंचता। अतएव यह बाजेका सवाल झगड़ेका मूल न होना चाहिये।

ऐसा होते हुये भी कितनी ही जगह मुसलमान भाई जबरदस्ती बाजे बन्द कराना चाहते हैं। यह नागवार है। जो बात विनयके खातिर की जाती है, वह जोरो-जब्रके खातिर नहीं की जा सकती। विनयके सामने झुकना धर्म है और जोरो-जब्रके सामने झुकना अधर्म है। मारके डरसे यदि हिन्दू बाजा बजाना छोड़ें तो हिन्दू न रहेंगे। इसके लिये सामान्य नियम इतना ही बताया जा सकता है कि जहाँ हिन्दू लोगोंने समझ-बूझकर बहुत समयसे मसजिदके सामने बाजे बन्द करनेका रिवाज रक्खा है वहाँ उनको उनका पालन अवश्य करना चाहिये। जहाँ वे हमेशा बाजा बजाते आये हैं वहाँ उन्हें बजानेका अधिकार होना चाहिये। जहाँ झगड़ेकी संभावना हो और हकीकतके बारेमें मतभेद हो वहाँ हिन्दू और मुसलमान दोनों पक्षोंकी मार्फत ठहराव करा लेना चहिये।

जहाँ अदालतने बाजे बजानेकी मुमानियत की हो, वहाँ हिन्दूलोग कानूनको अपने हाथोंमें न लें।

मुसलमानोंको भी जबर्दस्ती हिन्दूका बाजा बन्द करानेकी जिद छोड़ देनी चाहिये।

जहाँ मुसलमान बिल्कुल न मानें, अथवा जहाँ हिन्दुओंपर जबर्दस्ती किये जानेका अन्देशा हो और जहाँ अदालतसे बाजे-बजानेकी बन्दी न हो वहाँ हिन्दुओंको निडर होकर बाजे-बजाते हुए निकल जाना चाहिये और मुसलमान चाहे कितनी ही मार-पीट करें, हिन्दू उसे सहन करें। इस तरह जितने बाजा बजानेवाले मिलें, वहाँ बलिदान कर दें—इसमें धर्म और आत्म-सम्मान दोनोंकी रक्षा होगी।

जहाँ हिन्दुओंमें आत्म-बल न हो, वहाँ उन्हें अपने बचावके लिये मारपीट करनेका अधिकार है।

मारकर अथवा मारते हुए मरकर धर्मकी रक्षा करनेकी जहाँ जरूरत दिखाई दे, वहाँ दोनों दलको अदालत या सरकारकी शरण जानेका विचार छोड़ देना चाहिये। यदि कदाचित एक पक्ष सरकारकी या अदालतकी सहायता ले तो भी दूसरेको खामोश रहना चाहिये। यदि अदालतमें गये बिना काम ही न चले तो अदालतोंमें बनावटी सबूत हरगिज न दिये जायं।

मारपीटका यह कायदा है कि पेटभरके मार खाने और मारनेके बाद दोनों लड़वैय्या ठण्डे पड़ जाते हैं और दूसरोंकी सहायता लेने नहीं जाते।

जिस जगह दोनों फरीकने लड़नेका निश्चय किया हो वहां उन्हें पीछे बदला चुकानेका या औरोंकी सहायता लेनेका विचार छोड़ देना चाहिये।

एक मुहल्लेका झगड़ा दूसरे मुहल्लेमें न जाना चाहिये। स्त्रियाँ, बूढ़े अपंग और बालकोंपर तथा शान्त रहनेवाले लोगोंपर हमला न करना चाहिये। यदि इतने नियमोंका पालन होता रहे तो भी समझा जायगा कि कुछ तो मर्यादा रखी जाती है।

डरकर भाग खड़े होना, मन्दिर छोड़ देना, बाजे बजाना बन्द कर देना या अपनी रक्षा न करना, यह मनुष्यता नहीं है, यह तो नामर्दी है। अहिंसा वीरताका लक्षण है—भीरु, डरपोक मनुष्य यह तक नहीं जान सकता कि अहिंसा किस चिड़ियाका नाम है।

अतएव दोनों कौमोंके सर्वसाधारण लोगोंको समझदारीसे काम लेना चाहिये, हिम्मत रखनी चाहिये, एकको डर छोड़ना चाहिये—दूसरेको डर दिखानेकी आदत छोड़ते अभी समय लगेगा। इस बीच दोनों जातियोंके समझदार लोगोंको हर झगड़ेके मौकेपर पंचायतका पालन करनेका प्रयत्न करना चाहिये। समझदार-वर्गकी हालत नाजुक है। परन्तु उसे चाहिये कि सारी शक्ति सर्वसाधारणको शान्त बनाये रखनेमें ही लगावें।

हिन्दी-नवजीवन
१४ सितम्बर, १९२४

❀

गांधीजीका खुलासा

[दिल्लीसे गान्धीजीके उपवासके समाचार सत्याग्रह-आश्रम तथा अहमदाबादमें बुधवार रातको आये थे। गुरूवारको सुबह एसोशिएटेड प्रेसके तार द्वारा गान्धीजीका खुलासा हमें मिला। यहाँ उसका अनुवाद दिया जाता है।]

इन दिनों देशमें जो दुर्घटनाएं हो रही हैं वे मेरे लिये असह्य हो गई हैं और इसमें मेरी असहाय अवस्था तो मुझे और भी असह्य हो रही है।

मेरा धर्म मुझे कहता है कि जब अनिवार्य संकट उपस्थित हो और कष्ट असह्य हो जाय तब उपवास और प्रार्थना करनी चाहिये। अपने घनिष्ठ आत्मियोंके सम्बन्धमें भी मैंने ऐसा ही किया है।

अब तो यह भी देखता हूँ कि मेरे हर तरहके लिखने और कहनेसे हिन्दुओं और मुसलमानोंमें एकता नहीं हो सकती। इसलिये मैं आजसे २१ दिनका उपवास प्रारम्भ करता हूँ। ८ अक्टूबर बुधवारको वह पूरा होगा। अनशनके दिनोंमें सिर्फ पानी और उसके साथ नमक लेनेकी मैंने छुट्टी रक्खी है। यह अनशन प्रायश्चितके रूपमें भी है और प्रार्थनाके रूपमें भी। यदि अकेला प्रायश्चित रूप होता तो इसे सर्व-साधारणके सामने प्रकाशित करनेकी आवश्यकता न थी। परन्तु इस बातके प्रगट करनेका सिर्फ एक ही प्रयोजन है। मुझे आशा करनी चाहिये कि मेरा यह प्रायश्चित हिन्दू और मुसलमानोंके लिये जो कि आजतक मेल-मिलापसे काम करते आये हैं, आत्मघात न करनेके लिये एक कारगर प्रार्थना हो जाय। मैं तमाम जातियोंके नेताओंसे, अंग्रेजतकसे, सविनय प्रार्थना करता हूं कि वे धर्म और मनुष्यताके लिये लांछन-रूप इन झगड़ोंको मिटानेके हेतु एक जगह एकत्र होकर विचार करें। आज तो ऐसा ही जान पड़ता है, मानों हमने ईश्वरको तख्तसे उतार दिया है। आइये, हम फिरसे अपने हृदय-रूपी सिंहासनपर उसे अधिष्ठित करें।

हिन्दी-नवजीवन
२१ सितम्बर, १९२४

❀

मैं मुसलमान क्यों नहीं होता ?

एक मुसलमान भाई लिखते हैं—

"आपका दावा है कि 'मैं सत्यचाहक, सत्यशोधक और सत्य-ग्राहक हूं'। साथ ही आपने यह भी लिखा है कि 'इस्लाम मिथ्या धर्म नहीं है।' खुदाका खास फरमान है कि दुनियाके हर शख्सको इस्लाम कबूल करना चाहिये। फिर भी आप मुसलमान क्यों नहीं होते? एक हिन्दू लीडरका ध्यान जब मैंने इस बातकी ओर खींचा तब उन्होंने कहा कि यह तो गान्धीजीने मुसलमानोंको खुश करनेके लिये लिख दिया है। गान्धीजीके दिलमें इस्लामी मुहब्बत नहीं है।"

इस भाईने आग्रहपूर्वक जवाब मांगा है। यह धर्म कहीं नहीं सुना कि जितनी बातें मिथ्या न हों, वे हर आदमीको करनी चाहिये। जिस तरह मैं

इस्लामको मिथ्या नहीं मानता उसी तरह ईसाई, पारसी, यहूदी धर्मको भी मिथ्या नहीं मानता। तो फिर मैं किस धर्मको कुबूल करूं? फिर मैं हिन्दू धर्मको भी मिथ्या नहीं मानता। ऐसी अवस्थामें मुझ जैसे सत्य-शोधकको क्या करना चाहिये? मुझे तो इस्लामकी खूबियाँ दिखाई दीं, इससे मैंने कहा कि वह धर्म मिथ्या नहीं है। यह कहनेकी जरूरत इसलिये हुई कि इस्लामपर हमले होते हैं और मुसलमान-भाइयोंके साथ मैं मित्रता रखना चाहता हूँ। इससे मैंने उनके धर्मका बचाव किया। सबको अपना-अपना धर्म औरोंसे श्रेष्ठ मालूम होता है। इससे वे उसमें रहते हैं। इसी न्यायके अनुसार हिन्दू-धर्म मुझे मिथ्या नहीं मालूम होता। यही नहीं बल्कि सबसे श्रेष्ठ मालूम होता है। इसीलिये मैं हिन्दू-धर्मका पल्ला पकड़कर बैठा हूँ—जिस तरह बालक माँके साथ रहते हैं। परन्तु बालक जिस प्रकार पर-माताका तिरस्कार नहीं करता, उसी प्रकार मैं भी पर-धर्मका तिरस्कार नहीं करता। अपने धर्मके प्रति मेरा जो प्रेम है वह मुझे शिक्षा देता है कि दूसरोंके अपने धर्मके प्रति प्रेमकी भी कदर करनी चाहिये। यह बात हरएक हिन्दू-मुसलमान सीखें, यह प्रार्थना मेरी ईश्वरके दरबारमें हमेशा पहुंचती रहती है।

हिन्दी-नवजीवन
२१ सितम्बर, १९२४

४३

सबसे बड़ी समस्या

देहली जाते हुए रास्तेमें अपनी डाक देखते हुए मुझे नीचे लिखा पत्र मिला। दो-तीन व्याकरण-दोषोंको सुधार उसे प्रायः शब्दशः यहाँ देता हूँ—

"नागपुरके मुसलमान पागल हो रहे हैं। मैं यद्यपि हिन्दू हूँ फिर भी मैंने नागपुरमें हिन्दुओंकी तरफसे की गई हलचलसे अपनेको बड़ी कोशिशसे दूर रखा है। मेरा अहिंसा और हिन्दू-मुस्लिम-एकतामें पूरा विश्वास है। आप विश्वास रखें कि मुझमें ऐसा साम्प्रदायिक जोश नहीं है। लेकिन नागपुर और दूसरी जगहोंमें की गई मुसलमानोंकी करतूतोंको देखकर तो मेरी इस विश्वासकी बड़ी कड़ी परीक्षा हो रही है। जो सबसे अधिक करुणाजनक बात है वह तो यह है कि एक भी जिम्मेवार मुसलमानने जाहिरा तौरपर इसके खिलाफ कुछ भी नहीं कहा है। यदि डाक्टर मुंजे और वीर उदेराम तथा कोष्ठी लोग न होते तो न जाने इन मुसलमानोंने क्या-क्या किया होता। मैं इसे जानता हूँ कि प्रेममें सौदा नहीं होता। इस बातको भी नहीं मानता हूँ कि प्रेममें सर्वस्व अर्पण करना ही होता है। लेकिन मैं इस बातको नहीं भूल सकता कि प्रेमके लिये जो आहुति दी जाय, जो दुःख सहना पड़े वह सब स्वेच्छासे होनी चाहिये। इसमें जबरदस्ती नहीं हो सकती। हिन्दू शक्तिशाली होनेकी वजहसे या अपनी

इच्छासे नहीं झुकता है, बल्कि अपनी कमजोरीकी वजहसे और इच्छा न होने पर भी दब जाता है। मुझे तो यह ख्याल होता है कि हिन्दूलोग सिर्फ मुसलमानके गुलाम बननेके लिये ही ब्रिटिशोंकी गुलामीको दूर करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। आपका दिलको हिला देनेवाला लेख 'गुलामीका पागलपन' इस मामलेमें आपके ख्यालातकी गहराईको जाहिर करता है।

आपने कई मर्तबा यह जाहिर किया है कि आप कायरतासे हिंसाको अधिक पसन्द करते हैं। आपने कुछ दिनों पहले 'यंग इंडिया'में यह भी लिखा था कि मुसलमान औसत दर्जेका गुण्डा होता है और हिन्दू भीरु। अफसोस है कि यह बिल्कुल सच है। अन्यथा यह कैसे हो सकता था कि नागपुरके मुसलमान जो बहुत थोड़े हैं, हिन्दुओंकी एक बहुत बड़ी संख्याके खिलाफ इस तरह बराबर उठ खड़े हो जाते। सच बात तो यह है कि गरीब हिन्दूकी न तो कोई इज्जत करता है और न कोई डरता है। डार्विन सच्चा था या नहीं इसका निर्णय करना मेरा काम नहीं है। किन्तु एक बात तो बिल्कुल स्पष्ट है कि कमजोरोंके लिये इस संसारमें स्थान नहीं है। उन्हें या तो शक्तिशाली बनना चाहिये या अपना अस्तित्व ही मिटा देना चाहिये। अगर हिन्दूलोग जीना चाहते हैं तो उन्हें अपना संगठन करना चाहिये और शक्तिशाली बनना चाहिये। उन्हें हलचल करनी चाहिये और अपने देव (मूर्तियों) और स्त्रियोंकी रक्षाके लिये जान देनेकी दैवी कला सीखनी चाहिये।

लेकिन वे तो भीरु हैं। उनसे कोई आशा नहीं रखी जा सकती। उनके लिये अहिंसाका कुछ भी अर्थ नहीं है। यह तो उनकी भीरुता छिपानेका एक बहाना—आवरण बन गया है। उन्हें अहिंसा सिखाना तो गोया ऐसा मालूम होता है जैसे अकालमें भूखसे पीड़ित लोगोंको भूख मिटानेके लिए आवश्यक खाना दिये बिना ही उन्हें खानेमें संयम रखनेकी शिक्षा देना या बीमार या कमजोर आदमीको वह खाना खिलाना जिसे हजम करना मजबूत आदमीको भी मुश्किल हो। यह उन्हें कुछ भी फायदा पहुंचानेके बजाय सिर्फ नुकसान ही नुकसान पहुंचावेगा।

यदि आप इस विचार परंपराको स्वीकार करें तो क्या आपको यह स्वीकार न करना पड़ेगा कि सच्ची और स्थायी हिन्दू-मुस्लिम-एकताके लिये हिन्दुओंको निर्भय-बहादुर बनना चाहिये? क्या उन्हें अपने स्त्रियों और मन्दिरोंकी की गई बेइज्जतीका बदला लेना न सीखना चाहिये? जो कमजोर हैं वही समाजके बड़े भारी दुश्मन हैं। वे अपनेको और शक्तिशाली दोनोंको बिगाड़ते हैं। शक्तिशालीको उनपर जुल्म करनेका मौका देकर वे बिगाड़ते हैं। कमजोरी उन दोनोंको शाप देती है जो स्वयं कमजोर हों या जो कमजोर पर जुल्म करता हो? हाँ, हिन्दुओंको उचित है कि वे दाँतके बदले दाँत उखाड़कर बदला न लें। वे मुसलमान स्त्रियोंकी पवित्रताको जबरदस्ती भ्रष्ट न करें और मसजिदोंको अपवित्र न करें या तोड़ न डालें। पर अहिंसा तो उनसे बहुत दूर है। इसलिये क्या आप उन्हें यह सलाह न देंगे कि वे इन बुराई करनेवालोंको सबक सिखाना सीख लें? अहिंसाकी कीमत करनेकी आशा उनकी तरफसे रखनेके पहले क्या उन्हें शारीरिक-बलका प्रयोग करके अपनी रक्षा करनेकी शक्ति बढ़ानेकी जरूरत नहीं है? क्या हिन्दुओंकी भलाई, सच्ची हिन्दू-मुसलमान मैत्री और इसके फलस्वरूप स्वराज्यका सही रास्ता नहीं है? ये ख्यालात मेरे दिमागमें

बहुत दिनोंसे घूम रहे थे। मैंने स्वयं अपने दिलमें इसके उत्तर पानेकी दलीलें की, लेकिन संतोषप्रद उत्तर न मिला। इसलिये मैं आपसे सलाह लेना चाहता हूँ। मैं 'यंग इंडिया'में इसका उत्तर पानेके लिये बहुत उत्कंठित हूँ। आप अपने सुभीतेको देखकर जितनी जल्दी बन पड़े इसका उत्तर दे दीजियेगा।

मैं अपना पत्र तो नहीं लेकिन नाम गुप्त रखना चाहता हूँ।"

इस खतके हरएक हिस्सेसे लेखककी सरगर्मी मालूम होती है। उनकी दलीलें जहाँतक पहुँचती हैं पुख्ता हैं, पर ज्यों ही लेखकके विचारों और उनसे फलित होनेवाले उप-सिद्धान्तोंको कार्यरूपमें परणित करनेका विचार उठता है त्यों ही हमारे सामने कठिनाई खड़ी हो जाती है। पाठकोंने पिछले सप्ताह मेरा 'हिन्दू-मुसलमान-ऐक्य' नामक लेख पढ़ा होगा। वह लेख हिन्दू और मुसलमान दोनों मित्रोंके सवालोंके जवाबमें लिखा गया था।

मेरी तो इस समय बहुत ही करुणाजनक हालत हो रही है। यह हमारे राष्ट्रकी परीक्षाका समय है और यह कहना सच होगा कि हजारोंलोग इस मौके पर रहनुमाईके लिये मेरी ओर आँखें गड़ाए हैं। खिलाफत आन्दोलनमें मैंने बहुत बढ़कर योग दिया है। मैंने बेखटके और बिला खौफके, बिना बदला मिलने-की आशाके सब कुछ दे देनेके सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है। मेरे इस विचार प्रणालीमें कुछ भी दोष नहीं है। पत्र-लेखकका सवाल यह है—क्या मेरा विचार वर्तमान स्थितिके लिये ठीक है? क्या हिन्दुओंके पास देनेके लिये कुछ है? कोई बिना लिये उसी अवस्थामें दे सकता है जब खुद उसके पास काफी होगा।

अब आइयें इसपर जरा विचार करें।

लेखक और मैं दोनों इस बातपर तो सहमत हैं कि हिन्दू डरपोक हैं। तब सवाल यह है कि वे निर्भय और वीर कैसे हों? उनका भय अपने बदनके रगों-रेशोंको और हड्डियोंको मजबूत बनानेसे दूर होगा या उनकी आत्मामें निर्भयताका, वीरताका संचार होनेसे होगा? पत्र-लेखक कहते हैं कि दुनियाँमें कमजोरके लिये कहीं जगह नहीं है। कमजोरसे उनका मतलब मैं समझता हूँ शरीरसे कमजोर है। यदि हाँ, तो उनका विचार ठीक नहीं। दुनियाँमें ऐसे बहुतसे जीवधारी हैं जो मनुष्योंसे शरीरमें बहुत ज्यादह बलवान और मजबूत हैं पर फिर भी मनुष्य-जाति अभीतक जीती-जागती मौजूद है। बहुतसी शरीर-बलमें बढ़ी-चढ़ी मानव जातियाँ अबतक लुप्त हो चुकी हैं और भी लोप हो रही हैं। ऐसी अवस्थामें जहाँतक मनुष्य-जातिसे ताल्लुक है यों कहना चाहिये 'दुनियाँमें उनके लिये जगह नहीं है जिसकी आत्मा कमजोर हो।'

जहाँ तक मेरा संबंध है, मैं तो अपना पासा फेंक चुका हूँ। तमाम धर्मोंमें अहिंसा एक समानतत्व है। कुछ धर्मोंमें उसपर औरोंको अपेक्षा ज्यादह जोर दिया गया है। पर सब इस बातमें सहमत हैं कि उसका अत्यधिक प्रचार नहीं हो सकता। पर हमें इस बातका यकीन होना चाहिये कि वह अहिंसा है, भीरुताका आच्छादन नहीं।

अब इस समस्याको हल करनेके लिये हमें रास्ते चलते लोगोंपर ध्यान देनेकी जरूरत नहीं है। बल्कि हमें अपनी ही स्थितिका विचार करना चाहिये; क्योंकि हमींलोग उन रास्ते चलते लोगोंके पीछे-पीछे रहते हैं और पुतलियाँ नचाया करते हैं। इसीलिये हमें इस बातकी चिन्ता रखनी चाहिये कि हम खुद कोई काम डरकी वजहसे न करें। मैं हाथापाही और मुठभेड़से नफरत करता हूं, पर हाँ, उसमें भी एक प्रकारकी वीरता है और उसे मैं अब लोगोंके सामने ला रहा हूँ। बड़े शौकसे बड़े भाई मौ० शौकत अलीके साथ हाथापाही करनेमें दिलचस्पी लूँगा। पर कब? जब हम दोनोंको यह यकीन हो जायगा कि अब तो बिना एक दूसरेका खून बहाए एकताका कोई उपाय ही बाकी नहीं रह गया है और जब हम देखेंगे कि हम दोनों भी सुलहसे एक साथ नहीं रह सकते तब मैं जरूर बड़े भाईसे कहूँगा तो फिर आओ, दो-दो हाथ करके सफाया कर लें। मैं जानता हूँ कि वे अपने भरे-पूरे पंजेमें पकड़ मरोड़कर मुझे टुकड़े-टुकड़े कर सकते हैं। लेकिन बस, उसी दिन हिन्दू-धर्म आजाद हो जायगा। अथवा वे एक हट्टे-कट्टे मल्लकी ताकत रखते हुए मेरे हाथों मर जाँयगे तो इस्लाम हिन्दुस्तानमें आजाद हो जायगा। उस अवस्थामें वे मानों आम तौरपर मुसलमानोंके हिन्दुओंको डराने-धमकानेका प्रायश्चित कर लेंगे। पर मैं इस बातसे तो सख्त नफरत रखता हूँ कि दोनों दलोंके गुण्डोंके बीच यह खूनी खिलवाड़ होता रहे। अपने भुजबलकी आजमाइशके सहारे जो सुलह होगी वह अन्तको कटुतामें बदले बिना न रहेगी। हिन्दुओंकी भीरुता दूर करनेका उपाय तो यह है कि हिन्दुओंका पढ़ा लिखा समाज इन गुण्डोंसे लड़ें। हम शौकसे लाठियोंका तथा दूसरे स्वच्छ हथियारोंका इस्तेमाल करें। मेरी अहिंसा उसे बरदाश्त कर लेगी। उसमें हमारा संहार हो जायगा। पर उससे हिन्दू और मुसलमान दोनोंके दिलकी मलामत दूर हो जायगी। उससे हिन्दुओंकी भीरुता तुरंत दूर हो जायगी। पर अगर मौजूदा तरीका जारी रहा तो हर जमात अपने-अपने गुण्डोंका गुलाम हो जायगा। इसका फल यह होगा कि फौजी हुकूमतका दौर-दौरा हो जायगा। इंगलैण्ड भी इसके खिलाफ मुल्की हुकूमतकी प्रधानताके लिये लड़ा था। उसकी जीत हुई और वह जीवित है। लार्ड कर्जनने हमें बहुत दुःख पहुंचाया है। पर उस समय उनका कहना बहुत ठीक था और उन्होंने बहुत वीरताका परिचय दिया था जब कि उन्होंने मुल्की हुकूमतकी प्रधानताके लिये आवाज उठाई थी। जब कि रोमपर सैनिक सत्ताका दौरा-दौरा हुआ उसका पतन हो गया। इस *ख्यालके खिलाफ कि हमारे धर्मकी रक्षाका सूत्र गुण्डोंके हाथमें चला जाय*, ठेठ मेरी अन्तरात्मासे ऊँची आवाज उठती है। इसलिये फिलहाल, हिन्दुओंको ही अपनी नजरमें रखकर बड़े अदब और सरगर्मीके साथ हरएक समझदार हिन्दूको चेतावनी देना चाहता हूँ कि अपने मन्दिरोंकी, अपनी और अपने बीबी-बच्चोंकी रक्षाके लिये गुण्डोंकी सहायतापर हसर न रखें। अपने कमजोर शरीरोंको लेकर ही उन्हें खुद अपने जगहपर खड़े रहकर बिना मारे अथवा मारकर मर मिटनेका निश्चय करना चाहिये। यदि जमनालालजी और उनके साथी शान्ति-रक्षा करते हुए मर भी जाते

तो उनकी मृत्यु बड़ी गौरवपूर्ण होती। डा० मुंजे या मैं यदि अकेले हाथों अपने मन्दिरोंकी रक्षा करते हुये मर जायं तो यह हमारे लिये गौरवपूर्ण मृत्यु होगी। वह होगी हमारे हृदयकी निर्भयता और वीरता।

पर इसके अलावा ऐसे काम भी किये जा सकते हैं जिसमें उससे कम बहादुरी दरकार हो। हमें नागपुरके बारेमें सची हकीकत खोज निकालनी चाहिये। मैं डा० मुंजेसे इसके लिये चिट्ठी पत्री कर रहा हूँ। देहलीके हिन्दू-मुसलमानोंसे अनुनय विनय कर रहा हूँ कि वे मुझे वहाँके फसादका मूल कारण बता दें। मैंने पंचायतके लिये अपनेको उनके हवाले कर दिया है। चाहे वे मुझे, अकेले पर सौंप दें या औरोंको भी शामिल करें। अभी तक वहाँकी दुर्घटनाका कोई विश्वस्त विवरण नहीं मिलता। मैं आपेसे बाहर कैसे होऊँ? मुझे इस बातका यकीन नहीं हुआ है कि हर बातमें और हर जगह अकेले मुसलमानोंका कसूर है। मुझे पता नहीं शुरुयाती बाइस क्या था? पर हाँ मैं यह जरूर जानता हूँ कि दोनों फरीकोंकी तरफके अखबार बेतहाशा सीधे-भोले हिन्दुओं और सीधे-सादे मुसलमानोंके दिलोंमें जहर फैला रहे हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि खानगी बात-चीतमें यह जहर और भी ज्यादह फैलाया जा रहा है और बातें इस तरह बढ़ा-चढ़ाकर छापी जाती हैं जिसकी कोई हद नहीं। इस अन्धकार, दुबिधा और निराशाके सागरके तहतक पहुँचनेमें मैं कोई बात उठा न रक्खूंगा। यह हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य राष्ट्रके तमाम स्वच्छ सार्वजनिक जीवनको नष्ट करनेकी धमकी दे रहा है। उसके ठीक-ठीक निपटारेके लिये यह अनिवार्य है कि पहले घटनाओं और हकीकतोंका एक सच्चा विवरण तैयार किया जाय। इस तनाजेका निपटारा करनेकी मेरी आन्तरिक अभिलाषा भी इस बातका एक कारण है जिसने मुझे स्वराजियोंकी तथा औरोंकी शरण जानेपर मजबूर किया है।

हिन्दी—नवजीवन
२१ सितम्बर, १९२४

❀

गांधीजी

खंड

ग्यारह

साम्प्रदायिक समस्या

द्वितीय भाग

सम्पादक-मण्डल

मूल्य एक रुपया आठ आना मात्र

(प्रथम संस्करण : मार्च, १९५०)

मुद्रक तथा प्रकाशक

जयनाथ शर्मा

व्यवस्थापक

काशी विद्यापीठ प्रकाशन विभाग

तथा

विद्यापीठ मुद्रणालय,

बनारस छावनी

सूची

*

प्रकाशकका वक्तव्य

गांधीजी ग्रंथमालाका यह दसवां प्रकाशन ग्रंथमालाके ग्यारहवें खंडका द्वितीय भाग है। साम्प्रदायिक समस्यापर पूज्य बापूकी लेखनीसे जो अमूल्य विचारधारा मानव-जगत्को प्राप्त हुई है उसका यह द्वितीय संग्रह है। आशा है एक और भागमें साम्प्रदायिक समस्या सम्बन्धी लेख समाप्त होंगे। इस भागके संकलन तथा संपादनमें श्री विद्यारण्य शर्मा तथा श्री बागेश्वरी प्रसादसे बड़ी सहायता मिली है। हम इनके आभारी हैं।

काशीके प्रसिद्ध कांग्रेस कार्यकर्ता तथा गांधीभक्त श्री रामसूरत मिश्र, श्री कृष्णदेव उपाध्याय, स्वर्गीय श्री बैजनाथ केडिया, स्वर्गीय श्री कन्हैयालाल शास्त्री तथा कारमाइकल पुस्तकालयके संग्रहोंसे हमें बड़ी सहायता मिली है। हम उनके भी आभारी हैं।

इस भागके प्रकाशनकी अनुमति देकर श्री जीवनजी डाह्याभाई देसाई, व्यवस्थापक ट्रस्टी, 'नवजीवन ट्रस्ट', अहमदाबादने जो कृपा की है उसके लिए हम कृतज्ञ हैं।

गांधीजी ग्रंथमालामें अबतक भारतीय नेताओंकी श्रद्धांजलियाँ दो भाग, कवियोंकी श्रद्धांजलियाँ, अहिंसा सम्बन्धी लेखोंके चार भाग, साम्प्रदायिक समस्या एक भाग, हरिजनोद्धार एक भाग, कुल नव अंक प्रकाशित हो चुके हैं। जिस खंडकी सामग्री तैयार हो जाती है उसे हम प्रकाशित कर देते हैं। इससे विज्ञापित क्रममें व्यतिक्रम तो अवश्य पड़ता है, किन्तु खंडोंकी क्रम-संख्या वही रखी जाती है जो पहलेसे निश्चय हो चुकी है। क्रमशः सब खंड प्रकाशित किये जायेंगे। इस अंकके बाद हरिजनोद्धार दूसरा भाग तथा साम्प्रदायिक समस्या तीसरा भाग प्रेसमें है।

हमने अपने ग्राहकोंकी असुविधाका विचार करके यह निश्चय किया है कि प्रायः तीन अंक एक साथ ही ग्राहकोंकी सेवामें भेजा जाय। इससे डाक-व्ययमें कमी होगी तथा ग्राहकगण अनेक असुविधाओंसे बच जायेंगे। तदनुसार साम्प्रदायिक समस्या दो भाग तथा हरिजनोद्धारका एक भाग, यह तीन अंक इस बार एक साथ भेजे जा रहे हैं। आशा है, ग्राहक तथा पाठक इस कारण हुए विलम्बके लिए हमें क्षमा करेंगे।

हमें हर्ष है कि ग्रंथमालामें प्रकाशित अब तकके सब भागोंका प्रथम संस्करण समाप्त हो गया है। उनके द्वितीय संशोधित संस्करणका प्रबन्ध किया जा रहा है। इस आशातीत प्रचारसे हमें जो बल उत्साह तथा साहस प्राप्त हो रहा है उससे पूर्ण विश्वास है कि गांधी साहित्यके प्रसार तथा प्रचारके शुभ अनुष्ठानमें हम सफल होंगे।

❀

मेरा उपवास

मैं पाठकोंको यकीन दिलाना चाहता हूँ कि मैंने यह उपवास बिना सोचे समझे शुरू नहीं किया है। सच पूछिये तो जबसे असहयोगका जन्म हुआ है तभीसे मेरा जीवन एक बाजी हो रहा है। मैंने आँख मूँदकर उसमें हाथ नहीं डाला। इसके साथ रहनेवाले खतरोंकी काफी चेतावनी दी गई थी। मैं अपना कोई काम बिना प्रार्थना किये नहीं करता। मनुष्य स्खलनशील है। वह कभी निर्भ्रान्त नहीं हो सकता। जिसे वह अपनी प्रार्थनाका उत्तर समझता है, संभव है कि वह उसके अहंकारकी प्रतिध्वनि हो। अचूक मार्ग दिखानेके लिये मनुष्यका अन्तःकरण पूर्ण निर्दोष और दुष्कर्म करनेमें असमर्थ होना चाहिये। मैं ऐसा दावा नहीं कर सकता। मेरी तो भूलती-भटकती, गिरती-पड़ती, उठती और प्रयत्न करती अपूर्ण आत्मा है। सो मैं अपनेपर तथा अपनोंपर प्रयोग करके ही आगे बढ़ सकता हूँ। मैं ईश्वरके और इसलिये मनुष्य जातिके पूर्ण एकत्वको मानता हूँ। हमारे शरीर यदि भिन्न-भिन्न हैं तो क्या हुआ ? आत्मा तो हमारे अन्दर एक ही है। सूर्यकी किरण परावर्तनसे अनेक दिखाई देती हैं। पर उनका आधार-उगम एक ही है। इसलिये मैं अपनेको अत्यन्त दुष्टात्मासे भी अलग नहीं मान सकता (और न सज्जनोंके साथ तद्रूपतासे ही इन्कार किया जा सकता है)। ऐसी अवस्थामें मैं चाहूँ या न चाहूँ अपने तमाम सजातियोंको, मनुष्यको—अपने प्रयोगमें अनायास शामिल किये बिना नहीं रह सकता। और न प्रयोग किये बिना ही मेरा काम चल सकता है। जीवनको प्रयोगोंकी एक अत्यन्त मालिका ही समझिये।

मैं जानता था कि असहयोग एक खतरनाक प्रयोग है। अकेला असहयोग खुद एक अस्वाभाविक, बुरी और पापमय वस्तु है। पर, मुझे निश्चय है कि शान्तिमय असहयोग प्रसंगोपात्त एक पवित्र कर्तव्य है। मैंने इसे अनेक बातोंमें साबित कर दिखाया है। पर हाँ, बहुजन-समाजपर उसको आजमानेमें गलतियाँ होनेकी बहुत संभावना थी। लेकिन असाध्य-भीषण रोगका इलाज भी दारुण ही करना पड़ता है। अराजकता तथा उससे भी बुरी बुराइयोंके लिये शान्तिमय असहयोगके सिवा दूसरा कोई उपाय ही न था। पर चूँकि वह शान्तिमय था, मुझे अपनी जिन्दगी तराजूपर रखनी पड़ी।

जो हिन्दू-मुसलमान दोनों दो बरस पहले खुल्लम-खुल्ला एक साथ मिल-जुलकर काम करते थे वही अब कुछ जगह कुत्ते-बिल्लीकी तरह लड़ रहे हैं। यह इस बातको भलीभाँति दिखाता है कि उनका वह असहयोग शान्तिमय न था। मैंने बम्बई, चौरी-चौरा तथा दूसरे छोटे-बड़े मौकोंपर इसका चिन्ह देख लिया था।

मैंने उन मौकोंपर प्रायश्चित भी किया। उस बातमें उसका असर भी हुआ। पर इस हिन्दू-मुस्लिम तनाजेका तो ख्याल भी नहीं हो सकता था। जब कोहाटकी दुर्घटनाका समाचार मैंने सुना तो यह मेरे लिये असह्य होगया। साबरमतीसे देहली रवाना होनेके पहले सरोजनी देवीने मुझे लिखा था कि शान्तिके लिये भाषणों और उपदेशोंसे काम न चलेगा। आपको जरूर कोई रामबाण दवा ढूंढ निकालनी चाहिये। उनका मेरे सिर इसकी जिम्मेवारी डालना ठीक ही था। क्या मैं लोगोंके अन्दर इतना जीवन डालनेमें साधनीभूत न हुआ हूँ? और यदि वह जीवन-शक्ति आत्म-नाशक साबित होती हो तो मुझीको उसका उपाय खोजना लाजिमी है। मैंने उन्हें जवाबमें कहा कि यह तो प्रयासके द्वारा ही हो सकता है। कोरी प्रार्थना निस्सार आडम्बर होगी। उस समय मैं यह बिल्कुल नहीं जानता था कि वह दवा होगी यह लम्बा उपवास। इतना होने पर भी यह उपवास इतना लम्बा मुझे मालूम नहीं होता कि जिससे मेरी व्यथित आत्माको शान्ति मिले। क्या मैंने गलती की है? क्या धीरजसे काम नहीं लिया है? क्या मैंने पापके साथ समझौता कर लिया है? मुझसे यह सब बन पड़ा हो या न बन पड़ा हो, मैं तो जो अपने सामने देखता हूँ वही जानता हूँ। यदि उन लोगोंने जो आज लड़ रहे हैं सच्ची अहिंसा और सत्यको समझा होता तो यह खूनी द्वन्द्व-युद्ध जो आजकल हो रहा है, असंभव होता। इसमें कहीं न कहीं मेरी जिम्मेदारी जरूरी है।

अमेठी, संभल और गुलबर्गाकी दुर्घटनाओंसे मेरा दिल बड़े जोरके साथ दहल उठा था। मैं अमेठी और संभलकी, हिन्दू-मुसलमान मित्रोंके द्वारा लिखी, रिपोर्ट पढ़ चुका था। मैं गुलबर्गा गये हिन्दू और मुसलमान मित्रोंके द्वारा एक मतसे भेजा पत्र पढ़ चुका था। मैं बड़े दुःखित हृदयसे उनके बारेमें लेख आदि लिखता था—पर उसके इलाजके लिये लाचार रहता था। कोहाटके समाचारोंसे मेरे हृदयका वह धुआंधार भकसे जल उठा। कुछ न कुछ करना जरूरी था। दो रात मैंने मनोव्यथा और बेकरारीमें गुजारी। बुधवारको दवा मिल गई। बस, मुझे प्रायश्चित करना चाहिये। सत्याग्रह आश्रममें रोज प्रातःप्रार्थनाके समय हम कहते हैं—

> "कर-चरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
> श्रवण-नयनजं वा मानसं वापराधम्।
> विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
> जय जय करुणाब्धे श्री महादेव शंभो!"

मेरा प्रायश्चित है एक विदीर्ण और क्षतविक्षत हृदयकी प्रार्थना कि परमात्मन् मेरे अनजानमें किये पापोंको क्षमा कर। यह उन हिन्दुओं और मुसलमानोंके लिये एक चेतावनी है जो मेरे साथ प्रेमभाव बताते हैं। यदि वे सचमुच मेरे साथ प्रेम रखते हैं और सचमुच, मैं उसका पात्र हूँ तो वे मेरे साथ, अपने हृदयसे ईश्वरको हटा देनेके घोर पापका प्रायश्चित करें। एक दूसरेके धर्मको गालियाँ देना, अन्धाधुन्ध वक्तव्य प्रका-

शित करना, असत्य बोलना, निर्दोष लोगोंके सिर फोड़ना, मन्दिरों या मसजिदोंको तोड़ना, अवश्य ईश्वरको न मानना है। हमारी इस 'यादवी' को दुनिया कोई खुशीके साथ और कोई दुःखके साथ निहार रही है। हम शैतानके दाँवमें फँस गये हैं। धर्मका लक्षण, फिर उसे आप किसी भी नामसे पुकारिये, यह नहीं है। हिन्दुओं और मुसलमानोंके लिये प्रायश्चित विधि उपवास नहीं बल्कि अपने कदम पीछे हटाना, अपनी गलती सुधारना है। एक मुसलमानके लिये सच्चा प्रायश्चित यही है कि वह अपने किसी हिन्दू भाईके साथ दुर्भाव न रखे और एक हिन्दूके लिये भी यही सच्चा प्रायश्चित है कि वह किसी मुसलमान भाईके प्रति जरा भी दुर्भाव न रखे।

मैं किसी भी हिन्दू या मुसलमानसे यह नहीं कहता कि वह अपने धर्म सिद्धान्तको अणु-मात्र छोड़ें। पर वह अपना यह निश्चय जरूर कर ले कि यह सचमुच धर्मका अंग है। लेकिन मैं हर हिन्दू और मुसलमानसे यह जरूर कहता हूँ कि वह किसी पार्थिव लाभके लिये एक दूसरेसे न लड़ें। यदि किसी भी जातिको मेरे उपवासके निमित्त किसी सिद्धान्तकी बातमें झुकना पड़ा तो मेरे हृदयको अत्यन्त व्यथा होगी। मेरा उपवास तो ईश्वर और मेरे बीचकी बात है।

मैंने किसी मित्रसे इसकी चर्चा न की। हकीम साहबसे भी नहीं, जो कि बुधवारको बड़ी देरतक मेरे साथ रहे थे और न मौलाना मुहम्मद अलीसे, जिनके घरमें अतिथि-सत्कारका सौभाग्य प्राप्त कर रहा हूँ। जब कोई मनुष्य ईश्वरसे अपना हिसाब कर लेना चाहता हो तब वह किसी तीसरेसे सलाह करने नहीं जाता। उसे जाना भी न चाहिये। यदि उसे उसके बारेमें कुछ शक-सुबहा हो तो जरूर सलाह-मशवरा करना चाहिये। पर मुझे इस बातकी आवश्यकतामें जरा भी शक-सुबहा नहीं था। मित्रलोग मुझे उपवास करनेसे रोकना अपना कर्तव्य समझते। ऐसी सलाह-मशवरे या दलीलोंकी विषय नहीं होती। यह तो हृदयकी व्याकुलताकी बात है। जब रामने अपने प्राप्त कर्तव्यका पालन करनेका निश्चय कर लिया तब न तो वे अपनी पूज्य माताके रोदन-क्रन्दनसे, न गुरुके उपदेशसे, न प्रजा-जनके अनुनय विनयसे, और यहाँ तककी न पिताकी मृत्युकी निश्चित संभावनासे भी अपनी प्रतिज्ञासे जरा भी डिगे। ये बातें क्षणिक हैं। यदि रामने मोहके ऐसे अवसरों पर अपने हृदयको वज्र न बना लिया होता तो हिन्दू-धर्ममें धर्मांश बहुत न रह जाता। वे जानते थे कि यदि मुझे मानव-जातिकी सेवा करनी है और भावी पीढ़ियोंके लिए आदर्श बनना है तो ऐसी तमाम यंत्रणाओंसे गुजरना ही होगा।

पर क्या एक मुसलमानके घरमें बैठकर मुझे यह उपवास करना उचित था? हाँ, जरूर था। मेरा उपवास किसी भी प्राणीके प्रति दुर्भावसे प्रेरित होकर नहीं अंगीकार किया गया है। मेरा एक मुसलमानके घरमें रहना इसके खिलाफ एक

गारन्टी ही होगी। एक मुसलमानके घरमें इस उपवासका शुरू और खतम होना बिलकुल ही उचित है।

और मुहम्मदअली भी कौन हैं? अभी उपवासके दो ही दिन पहले, एक खानगी मामलेमें हमारी बात-चीत होती थी। मैंने कहा, जो मेरी चीज है सो आपकी है, जो आपकी है सो मेरी। मुझे सर्वसाधारणसे कृतज्ञता-पूर्वक यह बात कहनी चाहिये कि मुहम्मदअलीके घरपर जैसा स्वागत-सत्कार मेरा हो रहा है, वैसा मेरा कहीं न हुआ होगा। मेरी हर जरूरतका पहलेसे ख्याल रक्खा जाता है। उनके घरमें हर शख्सके दिलमें सबसे ज्यादा ख्याल इसी बातका रहता है कि किस तरह मुझे और मेरे साथवालोंको आराम पहुँचावें। डा० अनसारी और डा० अब्दुल रहमानने अपनेको मेरा डाक्टर ही बना लिया है। वे रोज आकर मुझे देख जाते हैं। मुझे अपने जीवनमें अनेक सुखदाई अवसर मिले हैं। यह अवसर पिछलोंसे कम नहीं है। भोजन-पान ही सब कुछ नहीं। यहाँ तो मैं उत्कृष्ट प्रेमका अनुभव कर रहा हूँ। यह मेरे लिए भोजन-पानसे कहीं अधिक है।

कुछ लोग कानों-कान कह रहे हैं कि मैं मुसलमान मित्रोंके बीच इतना रहकर अपनेको हिन्दुओंका दिल जाननेके अयोग्य बना रहा हूँ। पर हिन्दुओंका दिल मुझसे कोई भिन्न चीज है? जब कि मेरे शरीर और मनका एक-एक जर्रा हिन्दू है तो निश्चय ही हिन्दुओंके मनकी बात जाननेके लिए मुझे हिन्दुओंके बीच रहनेकी कोई जरूरत नहीं है। मेरा हिन्दू-धर्म क्षुद्र वस्तु होगी यदि वह अत्यन्त प्रतिकूल प्रभावोंके अन्दर भी न फल-फूल सके। मैं सहज स्फूर्तिसे ही इस बातको जानता हूँ कि हिन्दू-धर्मके लिए किन बातोंकी आवश्यकता है। लेकिन मुसलमानोंके दिलका हाल जाननेके लिए जरूर मुझे प्रयास करना होगा। उत्कृष्ट मुसलमानोंके घनिष्ट सम्पर्कमें जितने ही अधिक आऊँगा उतना ही मुसलमानों और उनके कार्योंके विषयमें मेरा अन्दाज अधिक न्याययुक्त होगा मैं इन दोनों जातियोंके बीच एक सन्धि-साधन बननेका प्रयत्न कर रहा हूँ। यदि आवश्यकता हो तो अपना खून देकर भी इन दोनों जातियोंमें सन्धि करा देनेके लिए मैं लालायित हूँ। लेकिन ऐसा करनेके पहले मुझे मुसलमानोंको यह साबित कर देना होगा कि मैं उन्हें उतना ही प्यार करता हूँ जितना कि हिन्दुओंको। मेरा धर्म मुझे सिखाता है कि सबपर समान प्रेम रक्खो। ईश्वर इसमें मेरा सहायक हो। और बातोंके अलावा मेरे उपवासका एक उद्देश्य यह भी है कि मैं उस समभावपूर्ण और निःस्वार्थ प्रेमभावको प्राप्त कर सकूं।

हिन्दी-नवजीवन
२८ सितम्बर, १९२४

❀

ईश्वर एक है

पिछले गुरुवारकी रात्रिको पहलेसे वक्त मुकर्रर करके कुछ मुसलमान मित्र मुझसे मिलने आये थे। उनमें मुझे सरगर्मी सचाई दिखाई देती थी। शुद्धि और संगठनके खिलाफ उन्हें बहुत कुछ कहना था। मैं इन हलचलोंके बारेमें अपने विचार पहले ही प्रकाशित कर चुका हूँ। जहाँतक हो सके इस शुभ दिनोंमें विवादास्पद विषयोंपर कुछ भी कहना नहीं चाहता। यहाँ तो उनके बताये एकताके उपायकी ओर पाठकोंका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। उन्होंने कहा—"हम वेदोंकी अपौरुषेयताको मानते हैं। हम श्रीकृष्णमहाराज और रामचन्द्रजी महाराज (विशेषण उन्हींके हैं) को भी मानते हैं। फिर हिन्दू क्यों कुरानको अपौरुषेय मानकर हमारे साथ नहीं कहते 'लाइलाहिलिल्लाह महम्मदरसूलिल्लाह' (अर्थात् सब देवोंमें खुदा एक है और मुहम्मद उसका नबी है)? हमारा मजहब संकुचित, विवर्जक नहीं है उल्टा वह तो खसूसन समावेशिक-व्यापक है।

मैंने उनसे कहा कि आपका उपाय उतना आसान नहीं है जितना कि आप बताते हैं। आपका यह मकसद चाहे सुशिक्षित लोगोंके लिए ठीक हो, पर राह चलते लोगोंके लिए वह काम न देगा। क्योंकि हिन्दुओंके दृष्टिमें गो-रक्षा और हरिकीर्त्तन जिसको बाजेके साथ बेरोक संगीत करते हुए, फिर मसजिदके आगे होकर जाना हो तो भी, जाना हिन्दू-धर्मका सार है और मुसलमानोंके ख्यालमें गो-बध और बाजे बजानेकी रोक इस्लामकी सार-सर्वस्व है। इसलिए यह जरूरी है कि हिन्दूलोग मुसलमानको गो-कुशी छोड़ देनेपर मजबूर करना छोड़ दें। उसी प्रकार मुसलमान लोग हिन्दुओंके बाजे बन्द करनेपर लाचार करना छोड़ दें। गो-कुशी और बाजे बजानेके नियम-विधानका काम दोनों जातियोंके सद्भावपर छोड़ दिये जायं। ज्यों-ज्यों दोनोंमें सहनशीलताके भाव बढ़ते जायगें त्यों-त्यों दोनोंके रिवाजोंका रूप यथायोग्य हो जायगा। पर इस नाजुक सवालका अधिक विस्तार यहाँ करना नहीं चाहता।

मैं तो यहाँ उन मुसलमान-मित्रोंके बताये आकर्षक सूत्रपर विचार करना चाहता हूँ और कहना चाहता हूँ कि उसमेंसे कमसे कम मैं क्या मान सकता हूँ। मेरा सहज स्वभाव हिन्दू है और इसलिए मैं जानता हूँ कि इसपर मैं जो कुछ कहूँगा वह हिन्दुओंके बहुजन-समाजको भी पसन्द होगा।

सच पूछिए तो औसत दर्जेके मुसलमान ही वेदोंकी तथा दूसरे हिन्दू-धर्मग्रंथोंकी अपौरुषेयताको या कृष्ण अथवा रामके पैगम्बर या अवतार या देवता होनेकी बातको न कबूल करेंगे। हिन्दुओंके लिए तो कुरानशरीफ या पैगम्बर साहबको भला-बुरा कहनेका यह नया तरीका निकला है। हिन्दुओंकी जमातमें मैंने पैगम्बरके प्रति आदर-भाव देखा है यहाँतक कि हिन्दुओंके गीतोंमें इस्लामकी तारीफ पाई जाती है।

अब सूत्रके पहले भागको लीजिये। ईश्वर वाकई एक है। वह अगम, अगोचर और मानव-जातिके, बहु-जन समाजके लिए अज्ञात है। वह सर्वव्यापी है।

वह बिना आँखोंसे देखता है, बिना कानोंके सुनता है। वह निराकार और अभेद है। वह अजन्मा है, उसके न माता है न पिता है, न सन्तान; फिर भी वह पिता, माता, पत्नी या सन्तानके रूपमें पूजा ग्रहण करता है। यहाँतक कि वह काष्ठ और पाषाणके भी पूजा-अर्चाको अंगीकार करता है। हालाँ कि वह न तो काष्ठ है, न पाषाण आदि ही है। वह हाथ नहीं आता चकमा देकर निकल जाता है। अगर हम उसे पहचान लें तो वह हमारे बिल्कुल नजदीक है। पर यदि हम उसकी सर्व-व्यापकताको अनुभव न करना चाहें तब वह हमसे अत्यन्त दूर है। वेदमें अनेक देवता हैं। दूसरे धर्मग्रंथ उन्हें देवदूत या नबी कहते हैं। पर वेद तो एक ही ईश्वरका गुणगान करते हैं।

मुझे कुरानको ईश्वर-प्रेरित माननेमें कोई संकोच नहीं होता, जिस प्रकारकी बाइबिल, जेन्दावस्ता या ग्रंथ साहब तथा दूसरे पुण्यग्रंथोंको माननेमें नहीं होता। ईश्वरी प्रकाश किसी एक राष्ट्र या जातिकी संपत्ति नहीं है। यदि मुझे हिन्दू-धर्मका कुछ भी ज्ञान है तो वह समावेशक, व्यापक, सदा वर्तमान और परिस्थितिके अनुसार नवीन रूप धारण करनेवाला है। उसके यहाँ कल्पना-तर्कना और तर्कके लिए पूरा-पूरा अवकाश है। कुरान और पैगम्बर साहबके प्रति आदर भाव उत्पन्न करनेमें हिन्दुओंके नजदीक जरा भी दिक्कत महसूस न की। पर हाँ मैंने मुसलमानोंके अन्दर वही आदर-भाव वेदों और अवतारोंके प्रति उत्पन्न करनेमें अलबत्ते दिक्कते महसूस की है। दक्षिण अफ्रीकामें मेरे एक मुसलमान मुवक्किल थे। अफसोस है, अब वे दुनियामें न रहे। हमारा वकील-मुविक्कलका रिश्ता आगे चलकर घनिष्ठ साथियोंके रूपमें परिणत हो गया था। हम बहुत बार धार्मिक बहस भी किया करते। मेरे वे मित्र किसी अर्थमें विद्वान तो नहीं कहे जा सकते, पर उनकी कुशाग्रकी तरह बुद्धि तेज थी। वे कुरानकी सब बातें जानते थे। दूसरे धर्मोंकी कुछ बातोंका भी उन्हें ज्ञान था। मुझे इस्लाम स्वीकार करानेमें वे दिलचस्पी रखते थे। मैंने उनसे कहा, मैं कुरान-शरीफ और पैगम्बर साहबके प्रति पूरा-पूरा आदर भाव रख सकता हूँ, पर आप वेदों और अवतारोंको न माननेका इसरार क्यों करते हैं? उन्हींकी मददसे तो मैं आज तो कुछ हूँ, हो पाया हूँ। भगवद्गीता और तुलसीदासकी रामायणसे मुझे अजहद शान्ति मिलती है। मैं खुल्लम-खुल्ला कबूल करता हूँ कि कुरान, बाइबिल तथा दुनियाँके अन्य धर्मके प्रति मेरा अति आदर भाव होते हुए भी मेरे हृदयमें उनका उतना असर नहीं होता जितना कि श्रीकृष्णकी गीता तथा तुलसीदासकी रामायणसे होता है।" तब वे मुझसे ना-उम्मीद हो गये और उन्होंने बेखटके मुझसे कहा जरूर कुछ आपके दिमागमें खामी है। उनकी यह एक ही मिसाल नहीं है। उसके बाद ऐसे कितने ही मुसलमान मित्रोंसे मेरी मुलाकात हुई जो ऐसे ही विचार रखते हैं फिर भी मैं मानता हूँ कि यह मनःस्थिति चन्दरोजा है। मैं जस्टिस अमीरअलीके इस विचारसे सहमत हूँ कि हारूँ-उल्-रशीद और मामूके जमानेमें इस्लाम दुनियाँके तमाम मजहबोंमें

सबसे ज्यादा सहिष्णु था। पर आगे चलकर उनके जमानेके धर्म-गुरुओंकी प्रतिपादित उदार-वृत्तिके खिलाफ प्रत्याघात शुरू हुआ। इन प्रतिगामियोंमें भी बड़े विद्वान और प्रभावशाली लोग थे और उन्होंने इस्लामके उदार और सहिष्णु धर्म-गुरुओं और तत्त्ववेत्ताओंको प्रायः दबा लिया था। उस प्रत्याघातके प्रभावसे आज भी हम भारतमें दुःख पा रहे हैं। लेकिन इस बातमें तिलमात्र सन्देह नहीं कि इस्लामके अन्दर इस अनुदारता और असहिष्णुताको निकाल डालनेकी पूरी-पूरी क्षमता है। हम बड़ी तेजीसे उस कालके नजदीक पहुँच रहे हैं जब कि इन मित्रोंका सुझाया सूत्र सारी मनुष्य जातिको मान्य हो जायगी। इस समय आवश्यकता इस बातकी नहीं है कि सबका धर्म एक बना दिया जाय, बल्कि इस बातकी है कि भिन्न-भिन्न धर्मोंके अनुयायी और प्रेमी परस्पर आदर-भाव और सहिष्णुता रक्खें। हम सब धर्मोंको मृतवत एक सतहपर लाना नहीं चाहते। बल्कि कहते हैं विविधतामें एकता। पूर्व परम्परा तथा आनुवंशिक संस्कार, जलवायु और दूसरी आस-पासकी बातोंके प्रभावको उन्मूलित करनेका प्रयत्न केवल असफल ही नहीं बल्कि अधर्म होगा। आत्मा सब धर्मोंकी एक है। हाँ, वह भिन्न आकृतियोंमें मूर्तिमान होती है और यह बात कालके अन्ततक बनी रहेगी। इसलिए जो बुद्धिमान हैं समझदार हैं वे तो ऊपरी कलेवरपर ध्यान न देकर भिन्न-भिन्न आकृतियोंमें उसी एक आत्माका दर्शन करेंगे। हिन्दुओंके लिए यह आशा करना कि इस्लाम, ईसाई-धर्म और पारसी-धर्म आदि भारतसे निकाल दिये जायगें एक निरर्थक स्वप्न है। इसी तरह मुसलमानोंका भी यह उम्मीद करना कि किसी दिन अकेले उनके कल्पनागत इस्लामका राज्य सारी दुनियाँमें हो जायगा, कोरा ख्वाब है। पर इस्लामके लिए एक ही खुदाको तथा उसके पैगम्बरोंकी अनन्त परंपराको मानना काफी होता है तो हम सब मुसलमान हैं। इसी तरह हम सब हिन्दू और ईसाई भी हैं। सत्य किसी एक ही धर्म-ग्रन्थकी एकान्तिक सम्पत्ति नहीं है।

हिन्दी-नवजीवन
२८ सितम्बर, १९२४

❀

मैत्रीकी इच्छा

"परिषद धीरे-धीरे आगे बढ़ रही है। अन्तको यह चिरस्मरणीय हो जायगी। पर मैं ऐसी आशा नहीं रखता कि कुछ चमत्कार दिखाई देगा। इसका फल इतना ही हो सकता है कि सच्चे विचार जाग्रत हो जायंगे। गांधीजीने अपने इस पुर-असर कार्यके द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकताके आवश्यक प्रश्नके हल करनेकी ओर देशका ध्यान एकाग्र किया है। कड़ी धरतीपर रास्ता धीरे ही धीरे पड़ता है परन्तु विचार सदा पहले ऊपरके तहपर जमते

हैं और फिर ठेठ निश्चलेतक पहुंच जाते हैं। इससे पहले दोनों पक्षोंमें वैर-भाव प्रकट उठता था। आज जो लोग श्रेष्ठ माने जाते हैं, जो मार्ग दर्शक माने जाते हैं उनके बीच अप्रकट वैर-भावकी वह प्रतिध्वनि मानी जाती थी। आज भी एकता करनेवाली दो ही कड़ियाँ दिखायी देती हैं—एक कड़ी बृटिश राज्यके प्रति दोनों जातियोंका वैर-भाव और दूसरी कड़ी गान्धीजी और अलीभाइयोंका शुद्ध, गहरा और व्यक्तिगत प्रेम। पहली कड़ी मिथ्या है और बृटिशको यदि हटा लें तो वह टूट सकती है। दूसरी बात सच है, अधिक शुभ बातोंके आगमनका आरंभ-रूप है। गान्धीजी दोनों जातियोंको जोड़नेवाली एक-मात्र कड़ी हैं। इसीसे 'गान्धीजीकी जय' इस घोषणाको आज नवीन अर्थ और महत्व मिलता है।

पूर्वोक्त उद्गार श्री आर्थर मूर 'स्टेट्समैन' पत्रके सम्पादकने देहली छोड़नेके पहले प्रकट किये थे। इस अंग्रेज सज्जनके निष्पक्ष उद्गारोंमें अपार सत्य भरा हुआ है। यहां इतना कह देना चाहता हूँ कि गो-वध सम्बन्धी अत्यन्त विवादोत्तेजक प्रस्तावके पास होनेके पहले ही श्री मूर देहलीसे चले गये थे। जिस दिन उन्होंने देहली छोड़ी उस दिन उन्होंने विषय-समितिमें अत्यन्त कटुता-पूर्ण विवाद देखा था। फिर भी उन्होंने जो आगाही दी थी, वह आज सच हो रही है।

यदि कोई यह कहे कि इस परिषद्के द्वारा एकता हो गई है तो उसे सीधा-भोला ही कहना चाहिये। कोई अपने दिलको यह तसल्ली नहीं दे सकता कि इस परिषदके द्वारा दिलके जख्म भर गये हैं, दिलसे मिल गये हैं, हार्दिक एकता हो गयी है। यह मान लेनेकी कोई जरूरत नहीं है कि 'महात्मा गांधीजीकी जय' पुकारनेवालोंने गांधीजीकी मुराद सोलहो आना पूरी कर दी है। पर यह कहे बिना नहीं रह सकते कि जो हुआ है वह अच्छा ही हुआ है।

पहले दो प्रस्तावोंमें परिषदका महत्व है। इन प्रस्तावोंमें पश्चाताप है, अहिंसाके अमल करनेका निश्चय है, झगड़ा होनेपर भी लाठीके बलपर उसका फैसला न करनेका सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। यह बात कोई ऐसी-वैसी नहीं है। गो-रक्षा और बाजे-बजानेके प्रस्तावोंमें अदली-बदलीकी बू आती है। पर इसमें भी महत्वकी बात यह है कि यह बात समस्त पक्षोंके धार्मिक और राजनैतिक-नेताओंने मिलकर तय की है। विदेशी सत्तासे युद्धमें प्रवृत्त देशका ध्यान आज अपने घरके टन्टे सुलझानेकी ओर झुका है और आज हम धीमे-धीमे कदम बढ़ाते हुए ऐसी तजवीजमें हैं कि कहीं एक दूसरेके पैर न छिल जायं। यह इस बातकी हदको सूचित करता है कि हम किस अधोगतिको आ पहुंचे हैं। पर इस प्रस्तावमें पुनः इस इच्छाकी जागृति दिखायी देती है कि हम अधिक नीचे नहीं गिरना चाहते, आगे ही बढ़ना चाहते हैं, एकता करना चाहते हैं और स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं।

श्री मूरने जो कहा है कि गांधीजी ही दोनों जातियोंको एक शृंखलामें बाँधने-वाली कड़ी हैं, वह वास्तवमें वस्तुस्थिति है। पर गांधीजी ऐसा नहीं चाहते कि यह वस्तुस्थिति इस प्रकार चलती रहे। उनके उपवासका उद्देश्य यह है कि गांधीजीके

खातिर नहीं, बल्कि अपने जीवनके खातिर, दोनों जातियाँ प्रेमसे एक दूसरेके गले मिलें। यदि गांधीजी परिषद्में होते तो शायद प्रस्तावोंकी भाषा और भी अच्छी होती। उसमें कम वकालत होती, कम लेन-देनकी गन्ध होती। पर गांधीजीका न होना ही ठीक हुआ जिससे सबोंने अपने शक्तिके अनुसार, अपनी जुर्रतके मुताबिक ही प्रस्ताव पास किये हैं। जब गो-वध संबंधी प्रस्ताव पास हुआ तब 'गान्धीजीकी जय'का हर्षनाद हुआ और कुछ देर बाद परस्पर विरुद्ध पक्षके नेता एक दूसरेके गले मिले। अगले दिनके पश्चात्ताप-सूचक प्रस्तावसे शुद्ध होकर उनका एक दूसरेके गले मिलना इस बातको सिद्ध करता है कि यदि उनमें एकता न हुई तो कमसे कम दुश्मनी जरूर भूल गये हैं।

गांधीजीके उपवाससे यदि गांधीजीके दिलके जख्मका अन्दाज सब लोग कर सकें, तो उन्हें भी थोड़ी बहुत चोट पहुंचे बिना न रहेगी। परिषद्में आने और 'महात्मा गांधीजीकी जय' पुकारनेवाले इन अपूर्ण प्रस्तावोंका भी पालन यदि पूरी तरह करेंगे तो थोड़े ही समयमें संपूर्ण प्रस्ताव पूर्ण करनेका समय आ जायगा।

जब मैं बीसनगर (गुजरात) गया था तब एक मुसलमान सज्जनने कहा था कि कुरान शरीफमें कहा है कि किसीके दिलको दुखाना मानों काबा जैसे पाक जगहको नापाक करना है। धार्मिक हिन्दू तो 'मम हृदय भवन प्रभु तोरा' में विश्वास रखते हैं। हिन्दू और मुसलमान यदि अपने इस अटल सिद्धान्तपर दृढ़ रहकर एक दूसरेके दिलको न दुखानेकी प्रतिज्ञा कर लें, यह मानने लगें कि एक दूसरेके दिलको दुखाना ईश्वरके प्रति अपराध करना है, तो एकता होनेमें देर न लगे। यह स्थिति आज नहीं है—यह स्थिति परिषद्के प्रस्तावोंमें नहीं है। प्रस्ताव पास करनेवालोंमेंसे कितने ही लोगोंके दिलमें यह भाव अभी बाकी रहा है कि 'वे यदि ऐसा करें तो हम ऐसा करें।' पर सब लोगोंने इतनी बात स्वीकार कर ली है कि दोस्ती करना है और दोस्ती करनेका उपाय है पापके लिए पश्चात्ताप और अहिंसा। उदासीनता और उपेक्षाकी जगह अब मैत्रीकी इच्छा पैदा हो गई है और उसके साथ ही स्वराज्य प्राप्त करनेकी लालसाका भी पुनर्जन्म हुआ है। इसे ऐसी-वैसी बात नहीं कह सकते। परन्तु मैत्री तथा स्वराज्य प्राप्त करनेके संकल्पके लिये तथा उसके हेतु एकताके प्रश्नका सदाके लिए निपटारा करने योग्य हिम्मत आनेमें अभी समय लगेगा।

हिन्दी-नवजीवन
५ अक्टूबर, १९२४

आशाकी किरणें

ऐक्य-परिषद् निरर्थक न हुई। उसने जो कुछ किया है उसका अमल हो तो भी बहुत है। गांधीजीके प्रायश्चित्तका असर बहुतेरे स्थानोंमें पाया जाता है। गान्धीजीके प्रायश्चित्तके सम्बन्धमें 'स्टेट्समैन' पत्रमें जो लेख प्रकाशित किये गये हैं वे आनन्दाश्चर्य दिलानेवाले हैं। उसके सम्पादकने गत ८ ता० को अर्थात् पारणाके

दिन 'ऐक्य अंक' निकाला था। उसमें अनेक नेताओंने और गवर्नरों तथा वाइसराय और स्टेट सेक्रेटरीने भी संदेश भेजे हैं। 'इंगलिशमैन' पत्रने भी जो हमारी सब हलचलोंका सिर्फ मजाक उड़ाया करता था गांधीजीके उपवासके संबन्धमें बड़े गम्भीर भावमें लिखा है —

"हम आशा करते हैं कि हिन्दू-मुसलमानके ऐक्यके लिए ही अब महात्माजी अपना उपवास छोड़ देंगे। हम जानते हैं कि वे उसे प्रायश्चित समझते हैं। यह प्रायश्चित बड़े उदारताके साथ किया गया है। लेकिन उन्होंने जो शक्ति उत्पन्न की उसके परिमाण-स्वरूप यदि भिन्न-भिन्न जातियोंमें झगड़े हुए हों तो उन्हें उन लोगोंके साथ खड़े रहना चाहिये जो उस शक्तिको शान्ति कार्यमें लगा देनेका प्रयत्न कर रहे हैं। उनके उपवासका जो कुछ भी बाह्य असर होना था सो हो गया। अहिंसावादी होनेके कारण अब उन्हें उपवास करनेकी कोई जरूरत नहीं है। गांधीजीकी अहिंसानिष्ठा अव्यभिचारिणी है। इसमें किसीको कुछ सन्देह नहीं।"

उपवासके संबंधमें बहुतसे अंग्रेजोंके और ईसाइयोंके पत्र आये हैं और अभी आ रहे हैं। कुछ ईसाई ऐसी आशा करते हैं कि हजरत ईसाकी मेहरबानी गांधीजी-पर उतरे और आखिरमें उन्हें ईसाई-धर्ममें शान्ति मिले। और कुछ गांधीजीके प्रायश्चितका रहस्य समझकर ऐसी प्रार्थना करते हैं कि वह सफल हो। शिमलासे एक अंग्रेज सज्जन लिखते हैं—

"आपके ध्येय ऐक्यके सम्बन्धमें क्या भारतका 'ईसाई-धर्म संघ' कुछ सेवा कर सकता है? यदि वह कर सके तो उसे किस तरह काम करना होगा? कृपा-कर लिख भेजें। संयमके द्वारा ऐक्य साधन करनेकी आपकी अभिलाषाको मैं खूब अच्छी तरह समझ गया हूँ। श्री ऐण्ड्रूजकी बहन लिखती हैं—

बापूजी यदि न हों तो देशके लिए मुझे कुछ भी आशा नहीं रहेगी। किन्तु अभी मेरी आशा नष्ट नहीं हुई है और आज (दूसरी तारीख) से बापूका पारणा होने तक मैं भी उपवास करूँगी। हे ईश! हमपर दया कर, हमारे हृदयको नवीन कर दे, उसमेंसे अप्रेमको निकालकर प्रेम भर दे। और हमलोग जो नाम-मात्रके लिये ईसाई हैं, ईसाका अनुसरणकर सच्चे ईसाई और जगतमें शान्ति स्थापित करनेवाले बनें।

गांधीजीके नामके पत्रमें सूत भेजकर वे लिखती हैं—

मेरे प्रेम और प्रार्थनाके चिन्ह-स्वरूप यह सूत भेज रही हूँ। यह नहीं कि इतना ही काता है, काता बहुत है। अपना कर्तव्य करनेका प्रयत्न कर रही हूँ। लेकिन यह तो देव-कपास है। इसका उद्योग मनुष्य नहीं, देव कर सकते हैं, इसलिये यह आपके लिए ही भेजा है। यह सूत मेरी बाड़ीके कपासका है। प्रभात समयमें दैवी अश्रुओंसे भीगे कोमल कपासको अपने हाथोंसे तोड़ा है, बिनौले निकाले और पक्के मीलन स्पर्शसे बचाकर यह सूत निकालकर भेज रही हूँ। उसे कातते समय मैं जप कर रही थी। अब उसे मैं अपने आंसुओंसे भिगोती हूँ। क्योंकि आपका और भारतवर्षका ख्याल आनेसे मेरे हृदयमें भय हो रहा है।

हिन्दी-नवजीवन

१ अक्टूबर, १९२४

हिन्दू और मुसलमान

ऐक्य-परिषद् तो ऐक्यका आरंभ-काल है। उसके प्रस्ताव अपूर्ण, उसमें उपस्थिति लोग अपूर्ण इससे उसका आरंभ भी अपूर्ण है। फिर भी यह परिषद् बहुत महत्व-पूर्ण था। उसकी जड़ें गहरी जायंगी। उसके रोपे कोमल वृक्षको रक्षा करना, उसे पानी देना हमारा काम है।

गहरा विचार करनेपर हमें दिखायी देगा कि यह जटिल प्रश्न एक ही तरहसे हल हो सकता है। कोई कानूनको अपने हाथोंमें न ले। मैं मानता हूँ कि वह घर मेरा है, पर इतनेसे ही उसपर कब्जा करके बैठ जाना जंगलीपन है। मुझे अपना हक पंचमें या अदालतमें साबित करना चाहिये और पंचके अथवा अदालतके प्रस्तावोंको शिरोधार्य करना चाहिये। जहाँ इस नियमका पालन नहीं होता, उस समाजका नाश होता है। यदि इस सुनहले नियमका पालन दोनों पक्ष करें तो फिर कुछ कहनेकी जरूरत ही नहीं रहती। परन्तु जहाँ एक पक्ष मार-पीट ही करना चाहता हो वहाँ भी यदि दूसरा पक्ष उक्त नियमका पालन करे तो बस है। अन्तमें जाकर उस पक्षकी हानि नहीं हो सकती, यह निश्चित बात है। फर्ज कीजिये कि मेरे घरपर एक तीसरे ही शख्सने कब्जा कर लिया। अब सुव्यवस्थित समाज मुझे मेरा कब्ज़ा जरूर वापस दिलावेगा। कनिष्ट प्रकारके समाजमें वह काम अदालत करती है। पंचका दण्ड होता है लोकमत, अदालतका दण्ड कैदखाना या बन्दूक होता है। हर प्रकारकी व्यवस्थामें मारपीट न करनेवाला शख्स फिर अपना कब्जा पा सकता है।

जबतक हम इस अनिवार्य नियमके अधीन न होंगे तबतक हमारे अन्दर झगड़े बराबर होते रहेंगे। इसमें कोई शुबहा न करें और जबतक ऐसे झगड़े चलते रहेंगे, तबतक शान्त उपायोंके द्वारा हम कभी स्वराज्य न ले सकेंगे। इसे एक तरह स्वयंसिद्धि ही समझिये। हो सकता है कि हिन्दू और मुसलमान दोनोंमेंसे किसीको स्वराज्य दरकार न हो, स्वराज्यसे ज्यादे झगड़े ही पसन्द हों, ऐसोंके लिए एक भी दलील कामकी नहीं, परन्तु जो स्वराज्य चाहते हैं उन्हे पूर्वोक्त नियम शिरो-धार्य करना होगा। हम लोग जिन्हे कि स्वराज्यके बिना जीवित रहना कठिन है, कभी मारपीटके जंगली कानूनके आधीन न होंगे।

परन्तु पंचमें या अदालतमें जानेके दृढ़ निश्चयके होते हुए भी कितने ही ऐसे मौके आ सकते हैं, जब कि मनसे या बेमनसे मार-पीटमें शरीक होनेका, अथवा भाग जानेका या शान्तिके साथ मृत्युके अधीन होनेका समय आ जाता है। मैं भजन-कीर्तन करता हुआ मसजिदके सामनेसे निकलता हूँ और मुझपर कोई हमला करता है, तब मुझे क्या करना चाहिये? मेरे ही घरमें जब कोई कब्र बनाने लग जाय तब मुझे क्या करना चाहिये? अथवा एक गरीब मुसलमान खानगी तौरपर अपने घरमें गो-वध करता है और उसपर हिन्दू लोग टूट पड़ें तो उसे क्या करना

चाहिये ? इन तीनों मिसालोंमें इतना समय नहीं है कि कानूनकी राह देखी जाय। तब उन लोगोंको क्या करना उचित है ? यदि वे शान्तिके साथ मरना जानते हों तो यह अवश्य उत्तम उपाय है। पंच भी उसतक नहीं पहुँच सकते । परन्तु सभी लोग ऐसा बलिदान नहीं कर सकते। तब क्या भाग जाना चाहिये ? यह तो कायरताका लक्षण है । तब रहा आम तौरपर एक ही इलाज। ऐसे समय उन लोगोंको मार-पीट करके भी अपनी रक्षा जरूर करनी चाहिये। सुव्यवस्थित तंत्रमें यह हक हरएक व्यक्तिका है और होना भी चाहिये।

परन्तु ऐसे अवसरपर क्वचित ही आते हैं। सौमें एक बार शायद ही भले आदमीकी ऐसी कसौटी होती है। साधारण अनुभव तो ऐसा है कि जो शख्स शान्त बैठा रहता है उसीकी कसौटी ईश्वर नहीं करता । यदि हम निष्पक्ष दृष्टिसे देखेंगे तो सौमें निन्यानवे उदाहरण हमें ऐसे दिखायी देंगे जहाँ कि मार-पीटमें दोनों पक्ष थोड़े बहुत जिम्मेवार होते हैं । इन तमाम मिसालोंमें यदि एक पक्ष भी दोषरहित रहनेका निश्चय करे तो रह सकता है और जो उदाहरणोंसे बच जायगा उसीकी जीत समझिये ।

हिन्दी-नवजीवन
२६ अक्टूबर, १९२४

सफलताकी कुंजी

मैं जब यरोड़ा जेलमें था, तब कुछ उर्दू-साहित्य मेरे हाथ लग गया था । उसके द्वारा इस्लामके हाल जाननेका मुझे अपूर्व लाभ मिला। मौलाना अबुलकलाम आजादका दिया हुआ 'हिन्दुस्तानी शिक्षक' तो मेरे पास था ही । उसे पढ़कर और भी पढ़नेकी मेरी उत्सुकता बढ़ी । श्री इवेब कुरेशीके पास जो पढ़ने लायक पुस्तकें मालूम हुई, मैंने मंगा ली थी। लेकिन मैं तो बड़ा अधीर हो गया था । इसीलिए जेलके पुस्तकालयमें देशी भाषाकी कुछ पुस्तकोंकी तलाश की। आनन्द और आश्चर्यके साथ मुझे मालूम हुआ कि वहाँ उर्दू, मराठी, तामिल, कानड़ी और गुजराती पुस्तकें हैं। यह सच है कि पुस्तकें थोड़ी थीं, लेकिन उस समय मेरे कामके लायक पुस्तकें वहाँ मौजूद थीं। मुझे जो सूची मिली थी उसमें मुसलमान कैदियोंके लिए उर्दू-धार्मिक पाठ्य-पुस्तकोंकी भी कुछ प्रतियाँ थीं । मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। मेरे मनमें विचार आया कि इससे केवल मेरा उर्दूका ही ज्ञान न बढ़ जायगा, बल्कि इन पाठ्य-पुस्तकोंके द्वारा मुझे यह भी देखनेका मौका मिला कि मुसलमान बालकोंको क्या-क्या सिखलाया जाता है। दूसरी पाठ्य-पुस्तकों कितने ही उपयोगी और शिक्षाप्रद पाठ हैं। एक पाठमें पैगम्बरके कुछ जीवन-प्रसंगोंका वर्णन है। पैगम्बर साहबकी नम्रता, उदारता, शत्रु मित्रके प्रति समभाव, क्षमाशीलता, समय सूचकता और ईश्वर-

के डरका परिचय देनेवाली कथायें उसमें हैं। उदाहरणके तौरपर, जो यहूदी साहूकार पैगम्बर साहबको गाली देनेके लिए और उनकी निन्दा करनेके लिए गया था, उसके साथका उनका बर्ताव लीजिये। हजरत उमरको मालूम हुआ कि उसके मुर्शिदका बड़ा अपमान हो रहा है। वे उसे सहन न कर सके। लेकिन पैगम्बर साहबने अपने मुरीदको बुरा-भला कहकर कहा कि उसकी असली रकम तो दे ही दो और अपने कसूरके प्रायश्चित स्वरूप उसे थोड़ा रकम और ज्यादा दो। इस अपूर्व बर्तावका परिणाम ऐसा हुआ कि जिसकी हजरत उमरने उस वक्त जरा भी आशा न रक्खी थी। कहा जाता है कि उस यहूदीने इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लिया। इसी पाठमें एक गैर-मुस्लिमकी बात भी आती है। एक समय पैगम्बर साहबको एक पेड़के नीचे अकेले, बिना हथियार सोते देखकर वह शख्स उनके पास गया और कहने लगा, बोल मुहम्मद! इस वक्त तुम्हें कौन बचा सकता है? उत्तर मिला 'अल्लाह'। वह थर-थर काँपने लगा और उसके हाथसे तलवार गिर पड़ी। पैगम्बर साहबने तलवार ले ली और फिर उससे पूछा, अब तुम्ही कह, तुझे कौन बचा सकता है? उस नास्तिकने काँपते-काँपते उत्तर दिया 'तेरे सिवा कोई नहीं।' पैगम्बर साहबने उसकी जान न ली, उदारतासे उसे माफी बख्शी। वह गैर-मुस्लिम उसी क्षण मुस्लिम बन गया।

शत्रुओं और विरोधियोंके प्रति नम्रता दिखानेके ये एक-दो उदाहरण ही नहीं है। मौलाना शिबलीके लिखे पैगम्बर साहबके जीवन-चरित्रमें ऐसे बड़े-बड़े प्रसंगोंके वर्णन हैं। तबलीग या शुद्धिका तरीका बताते हैं—आदर्श बर्ताव। यही मेरे नम्र विचारके अनुसार सच्चा और उचित धर्मप्रचार है। आदर्श बर्तावके द्वारा प्रचार करना ही निर्दोष, निष्कलंक, अमोघ और अबाधित प्रचार है।

यह दिखानेके लिए मैं लिख नहीं रहा हूँ कि किस तरह प्रचार करना चाहिये। मेरा उद्देश्य तो है—पैगम्बर साहबके जीवनसे सबको शिक्षा ग्रहण करना। यदि हम हार्दिक ऐक्य स्थापित करना चाहते तो पैगम्बर साहबकी क्षमाशीलता और सहिष्णुताका अनुकरण करना होगा।

यदि इस लेखको पढ़नेवाले पाठकोंपर पैगम्बर साहबके जीवन प्रसंगोका असर न हो तो उन्हें रामायण तथा महाभारतके पन्ने उलटना चाहिये। उसमेंसे उन्हें उदारतायुक्त सहिष्णुताके अनेकों उदाहरण प्राप्त होंगे। हमें विधि-निषेधात्मक सविस्तर प्रस्तावोंकी आवश्यकता नहीं हैं। हमलोग यदि केवल अपने-अपने धर्मके मूल-तत्वोंके अनुसार ही काम करें तो हम समझ जायंगे कि गत दो वर्षोंमें हममेंसे कितने ही लोग धर्म-द्रोही और ईश्वर-द्रोही बने हैं। एक दूसरेपर अपना अधिकार करनेके लिए बलात्कार करके हम स्वयं अपनी आत्माका बलात्कार कर रहे हैं। दोनों कौमें अपना काम करनेके बजाय अपने कर्तव्यका पालन करके अधिकार प्राप्त करनेके बजाय केवल अधिकारपर ही जोर दे रही हैं और कर्तव्य करना भूल गई हैं।

भारतवर्ष एक पक्षी है। हिन्दू और मुसलमान उसके दो पंख हैं। आज

ये दोनों पंख अपंग हो गये हैं और पक्षी आसमानमें उड़कर स्वतंत्रताकी आरोग्य-प्रद और शुद्ध हवा लेनेमें असमर्थ हो गया है । इस प्रकार देशको अशक्त असमर्थ बना देना न हिन्दुत्वका सिद्धान्त है न मुसलमानका । क्या मुसलमानोंको दुर्बल बना देना हिन्दुओंका धर्म है ? क्या हिन्दुओंको दुर्बल बना देना मुसलमानोंका धर्म है ? क्या मुसलमानोंकी मदद न करना हिन्दुओंका और हिन्दुओंकी मदद न करना मुसलमानोंका धर्म है ? क्या धर्म प्राणपोषक न होकर प्राणनाशक, स्वातंत्र्यनाशक और मनुष्यत्व-नाशक बनेगा ?

हिन्दू हो या मुसलमान, पारसी हो या ईसाई, यहूदी हो या दूसरी कोई कौम हो, लेकिन हिन्दुस्तानी कहलानेवाले सबमें सहिष्णुताका होना ही ऐक्य और स्वातंत्र्यकी शर्त है। हिन्दुओंको और मुसलमानोंको यह समझानेके लिए ही 'कामरेड' और 'हमदर्द' फिर शुरू हुए हैं।

'कामरेड' और 'हमदर्द'को शुरू कर मौलाना मुहम्मदअली अपने सिरपर एक बड़ी भारी जिम्मेदारी ले रहे हैं। किन्तु, खुदासे डरनेवाले हैं। उनको खुदा पे पर भरोसा है। ईश्वर ही हमें प्रगाढ़ अन्धकारसे प्रकाश दिखाता है। इसलिए उनकी प्रार्थनाके साथ मैं भी उनसे यह प्रार्थना करूँगा कि उनका कार्य सफल हो, उनकी कलमसे हमेशा शत्रु-मित्र, सबके लिए उचित शब्द ही निकले, वे खुद और उनके सहायकगण कभी क्रोध या आवेशमें आकर कुछ न लिखें। कामरेड और हम-दर्दमें लिखा एक-एक शब्द अपने देशका और उनके द्वारा मानव जातिके कल्याणके सामर्थ्यसे भरा हुआ हो, और इस बहुधर्मवाले देशमें उनके दोनों अखबार शान्ति और अद्वेषकी प्रगति करावें।

अलीभाई और मेरे दरम्यान जो दिली दोस्ती है उसे जाहिर करनेका एक मौका मैंने नहीं गवाँया है। वे कट्टर मुसलमान होनेका दावा करते हैं और हैं भी। मैं कट्टर हिन्दू होनेका दावा करता हूँ किन्तु इस बातसे हमारे दरम्यान सच्चा प्रेम और अन्योन्य सम्पूर्ण विश्वास रहनेसे कभी कोई बाधा नहीं हुई। यदि ऐसी दोस्ती कुछ मुसलमानोंमें और हिन्दुओंमें रह सकती है तो हम त्रैराशिकके हिसाबसे यह भी कह सकते हैं कि यदि लाखों हिन्दू और मुसलमान ऐसी दोस्ती करनेका निश्चय करें तो उनमें भी हो सकती है।

हिन्दी—नवजीवन
२ नवम्बर, १९२४

कोहाटकी दुर्घटना

भारत सरकारने कोहाटकी दुर्घटनापर परदा डाल दिया है। वायसरायने मालवीयजीको उत्तर देते समय ही, देशको ऐसे किसी प्रस्तावको सुननेके लिए तैयार कर रखा था जैसा कि आज देशके सामने उपस्थित हुआ है। यह निश्चय सरकारकी

बेरोक प्रभुता और लोकमतके प्रति लापरवाहीका नमूना है। साथही उससे हमारी राष्ट्रकी दुर्बलता भी जाहिर होती है। मेरी दृष्टिमें कोहाटकी यह दुर्घटना हिन्दू-मुस्लिम-अनैक्यका फल उतना नहीं है जितना कि वहाँके स्थानीय शासकोंकी नालायकी और निकम्मेपनका है। यदि उन्होंने धन-जनकी रक्षा करनेके अपने प्राथमिक कर्तव्यका पालन किया होता तो यह जो दिन दहाड़े मनमानी खून खराबी शुरू हुई और होती भी रही, सो रोकी भी जा सकती थी। रोमके जलते समय जिस तरह रोमका सम्राट नीरो उसे देखकर नाच-गानमें मशगूल रहा, उसी तरह अधिकारीगण भी उसे बामिजाज देखते रहे। शासक लोग अपने निरुपाय होनेका उज्र नहीं पेश कर सकते। इनके पास यथेष्ट साधन मौजूद थे। उन्हें अपनी ही सजाके योग्य गफलत और घातकताकी वजहसे कुछ उपाय न सूझा हो सो सही, परन्तु अपनी निरुपायतापर उन्हें तो कभी बेचैनी नहीं हुई थी।

अब तो भारत सरकार भी उनके कामोंकी लिपा-पोती करके और उनकी लापरवाही बल्कि जुर्मको धीरज और साहस बताकर उनके पापकी हिस्सेदार हो गयी है। आशा तो यह की जा सकती थी कि इसकी पूरी खुलेआम और स्वतंत्र जाँच होगी। किन्तु उसकी जगह जाँच तो केवल सरकारी मुहकमेके द्वारा हुई और उसमें भी सर्व-साधारणसे कुछ भी नहीं पूछताछ की गई। इसके फैसलेपर सर्वसाधारणको कुछ भी एतबार नहीं हो सकता। रायबहादुर सरदार माखन सिंहसे लेकर प्रायः तमाम कोहाटियोंसे मैं और मेरे मुसलमान साथी मिले। उन्होंने यह स्वीकार कर लिया कि लाला जीवनदासने एक पर्चा जिसमें कि बहुत ही अपमानजनक कविता थी प्रकाशित किया था, किन्तु साथ ही उन्होंने यह भी कहा था कि हिन्दुओंने उसके बदले भरपूर प्रायश्चित्त कर लिया था और हिन्दुओंने आत्म-रक्षामें तभी गोलियाँ चलायी जब मुसलमानोंने खून-खराबी शुरू कर दी थी। तब कोहाटके मुसलमानोंकी तरफसे कहा गया था कि उस पर्चेके लिए यथेष्ट प्रायश्चित नहीं किया गया और मुसलमानोंने तभी मार-काट करना और गोलियाँ चलाना शुरू किया जब हिन्दू गोली चला चुके थे और मुसलमानोंकी जानें ले चुके थे। दुर्भाग्यसे कोहाटके मुसलमान रावलपिण्डीमें नहीं आये थे। इसलिए हमें सभी बातका पता न लग सका। इस हालतमें भारत-सरकारने जिस प्रकार दोनों जातियोंके सिर दोषका बंटवारा कर दिया है, उसे गलत कहना कठिन है। तो भी उनका निर्णय पक्षपात-हीन या मानने योग्य नहीं कहा जा सकता। कोहाटके हिन्दुओंसे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे इस निर्णयको मान लेंगे और कबूल कर लेंगे और न इसलिए कि यह मुसलमानोंके पक्षमें दिखायी देता है इससे कोहाटके मुसलमानोंको ही तसल्ली होगी। क्योंकि मुसलमानोंके लिए यह बेजा होगा यदि केवल इस कारण कि इस बार सरकार उनकी ओर ढलती-सी दीख पड़ती है वे उसके निर्णयपर तालियां बजावें। कोई भी निर्णय, सबको संतोष तभी दे सकता है जब वह उन हिन्दुओं और मुसलमानोंका किया हुआ हो, जिनकी निष्पक्षता सिद्ध हो चुकी है। इसलिए भारत-सरकारका निश्चय दोनों जातियोंके लिए एक प्रकारको

चुनौती ही है। यह निश्चय हिन्दुओंको अपमानजनक शर्तोंको स्वीकार करके कोहाट जानेका हुक्म देता है और मुसलमानोंको उनके हिन्दू-भाइयोंका अपमान करनेका प्रलोभन देता है। मैं आशा करता हूँ कि हिन्दू लोग कोहाटके बाहर मान सहित गरीबी-के जीवनको कोहाटमें अपमानके साथ किन्तु सुखी जीवनसे अधिक पसन्द करेंगे। मुझे आशा है कि मुसलमान इतने पुरुषार्थका परिचय देंगे कि वे सरकारको दी हुई इस लालचको नामंजूर करेंगे और अपने उन हिन्दू-भाइयोंका जो वहाँ अत्यन्त ही अल्पसंख्यक हैं, अपमान करनेमें हाथ बटानेसे इन्कार करेंगे। शुरूमें चाहे जिस जातिने भूल की हो और उत्तेजना दिलाई हो परन्तु यह बात तो ठीक ही है कि कोहाट-से हिन्दुओंको बाहर भागनेपर मजबूर होना पड़ा। इसलिए अब यह मुसलमानोंका कर्तव्य है कि वे रावलपिण्डी जावें और उनके जानोंमालकी पूरी हिफाजतका विश्वास दिलाते हुए, मित्र भावसे उन्हें कोहाट लौटा लावें और कोहाटके बाहरके हिन्दुओंको मुसलमानोंके लिए हिन्दुओंके पास इस कामके लिए जाना आसान कर देना चाहिये। कोहाटके बाहरके मुसलमानोंको वहाँके मुसलमानोंपर इस बातपर जोर देना चाहिए कि वे अल्पसंख्यक हैं। हिन्दुओंके प्रति अपने प्राथमिक कर्तव्यको पूरा करें। इस सवालके उचित और यथायोग्य फैसलेपर हिन्दू-मुस्लिम एकताके प्रयत्नोंकी सफलता बहुत कुछ निर्भर है।

हम सभी सहयोगी और असहयोगी, जितना शीघ्र सरकारकी रक्षाका भरोसा रखना छोड़ देवें, उतना ही हम लोगोंके हकमें यह अच्छा होगा और उतनी ही शीघ्रतासे और चिरस्थायी रूपसे हम इस मसलेको हल कर सकेंगे। इस दृष्टिसे देखनेपर, कोहाटके अधिकारियोंकी उदासीनता अच्छा ही फल लावेगी। यदि हिन्दुओंने अधि-कारियोंसे सहायता न मांगी होती, यदि वे घरपर ही बिना कोई बचाव किये अड़े रहते या—यदि अपनी, अपने धनकी और अपने आश्रितोंकी रक्षामें वे जल-भुनकर खाक हो जाते तो आज इतिहास दूसरे ही ढंगसे और अधिक आदरपूर्ण शब्दोंमें लिखा जाता। यदि सरकार ऐसा प्रस्ताव करे कि कोई उससे, जातीय झगड़ोंमें सहा-यताकी आशा न करे तो मैं ऐसे प्रस्तावका स्वागत करूँगा। यदि एक जाति दूसरे जातिकी ज्यादतीसे अपनी रक्षा करना सीख ले, तो हमलोग स्वराज्यके सही रास्ते-पर है, यह कहा जायगा। आत्म-रक्षा और आत्म-सम्मानकी, जिसे हम स्वराज्य ही कह सकते हैं, यह अच्छी तालीम होगी। आत्मरक्षणके दो ढंग हैं। सबसे अच्छा और पुरअसर काम तो है अपने स्थानपर बिना बचाव किये जोखिमको उठा लेना। दूसरा अच्छा किन्तु उतना ही गौरवपूर्ण तरीका है, आत्मरक्षार्थ बहादुरोसे लड़ना और सबसे अधिक खतरनाक जगहमें भी अपनेको डाल देना। अगर इस तरह खुल-कर कुछ लड़ाइयाँ हो चुकेगीं, तभी वे समझ सकेंगे कि एक दूसरेका सिर फोड़ना व्यर्थ है। इससे उन्हें यह शिक्षा मिलेगी कि इस प्रकार लड़नेसे वे ईश्वरकी सेवा नहीं करते हैं बल्कि शैतानकी सेवा करते हैं।

मैंने रावलपिण्डीमें ठहरे हुए कोहाटके देश-त्यागियोंको जो वचन दिया था,

उसीको फिर दोहराकर लेख समाप्त करता हूँ। कोहाटके मुसलमानोंके हार्दिक आमंत्रणके बिना वे यदि कोहाट न लौटेंगे तो मैं पहलेसे ही हाथमें लिए अपने और काम समाप्त करके तुरंत ही मौलाना शौकत अलीके साथ रावलपिण्डी जाऊंगा और दोनों जातियोंका झगड़ा मिटानेका प्रयत्न करूंगा। यदि मुझे इसमें सफलता न मिली तो मैं उनके लिए उचित कामका प्रबन्ध करनेमें सहायता दूँगा।

हिन्दी-नवजीवन
२१ दिसम्बर, १९२४

मारना कब ठीक है ?

देहलीसे लाला शंकरलाल कहते हैं कि ऐसा छपा है कि आपने हिन्दुओंको सलाह दी है कि कुछ खास मौकेपर तुम मुसलमानोंको मार सकते हो—जैसे जब कि वे गायका वध कर रहे हों। मैंने इस रिपोर्टको पढ़ा नहीं है। पर चूंकि यह मामला बहुत ही महत्वपूर्ण (अहम) है। इसलिए इसके बारेमें बिल्कुल ठीक-ठीक और निश्चित बात नहीं कही जा सकती। मेरा यह मत है कि सारी दुनिया या मुसलमानोंसे झगड़ा मोल लेकर गायकी रक्षा करना हिन्दू-धर्मका अंग नहीं है। अगर हिन्दू लोग इस किस्मकी कोई कार्वाई करेंगे तो वे जब्रन दूसरेसे अपना मत मनवानेके अपराधी (कुसूरवार) होंगे। उनका कर्तव्य सिर्फ इतना ही है कि वे गायकी अच्छी तरह प्रेमके साथ लालन-पालन करें। पर मुझे यहाँसे चलते-चलते यह भी कह देना चाहिये कि हिन्दू इस कर्तव्यका पालन करनेमें बहुत गफलत करते हैं। हिन्दू लोगोंके पास सारी दुनियाको गो-रक्षाके पक्षमें (हक) कर लेनेका सिर्फ एक ही उपाय (तदबीर) है, खुद उन्हें सब प्रकारसे गो-रक्षाका पदार्थ-पाठ पढ़ावें। लेकिन हाँ, दुनियाका हर शख्स और इसलिए हर हिन्दू इस बातके लिए बाध्य (मजबूर) है कि वह अपनी जान देकर भी अपनी माँ, बहन, बीवी और लड़की और सच पूछिए तो जिन-जिनकी रक्षाका भार खासतौरसे उसपर है, सबकी हिफाजत करे। मेरा धर्म मुझे शिक्षा देता है कि औरोंकी रक्षाके लिए अपनी जान दे दो। दूसरेको मारनेके लिए हाथ तक न उठाओ। पर मेरा धर्म मुझे यह कहनेकी भी छुट्टी देता है कि ऐसा मौका पेश हो कि एक ओर अपने जिम्मेके लोगोंको या कामको छोड़कर भाग जाने या हमला करनेवालेको मारनेमेंसे किसी बातको पसन्द करना हो तो यह हर शख्सका फर्तव्य है कि वे मारते हुये वहीं मर जांय, अपनी जगहको छोड़कर भागे हरगिज नहीं। मुझे ऐसे हट्टे-कट्टे पछत्ते लोगोंसे मिलनेका दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है, जो सीधे सरल भावसे आकर मुझसे कहते हैं और जिसे मैंने बड़ी शरमके साथ सुना है कि बदमाश मुसलमानोंको हिन्दू अबलाओंपर बलात्कार करते हुए हमने अपनी आँखों देखा है। जिस समाजमें जवाँमर्द लोग रहते हों वहाँ बलात्कारकी आँखों देखी गवाहियां देना प्रायः असंभव (गैरमुमकिन) होनी चाहिये। ऐसे

जुर्मकी खबर देनेके लिए एक भी शख्स जिन्दा न रहना चाहिये। एक भोला-भाला पुजारी जो कि अहिंसाके मतलबको नहीं जानता था, मुझसे खुशी-खुशी आकर कहता है, साहब! जब हुल्लड़बाजोंकी भीड़ मन्दिरमें मूर्ति तोड़नेके लिए घुसी तो मैं बड़ी होशियारी करके छिप रहा। मेरा मत है कि ऐसे लोग पुजारी होनेके बिल्कुल लायक नहीं हैं। उसे वहीं मर जाना चाहिये था। तब अपने खूनसे उसने मूर्तिको पवित्र कर दिया होता और उसे यह हिम्मत न थी कि अपनी जगहपर बिना हाथ उठाये और मुँहसे यह प्रार्थना करते हुए कि 'ईश्वर इस खूनीपर रहम कर!' मर मिटे तो उस हालतमें उन मूर्ति तोड़नेवालोंका संहार करना भी उसके लिए ठीक था। परन्तु उसका अपने इस नश्वर शरीरको बचानेके लिये छिप रहना मनुष्योचित न था। सच बात यह है कि कायरता खुद ही एक सूक्ष्म और इसलिए भीषण प्रकारकी हिंसा है और शारीरिक हिंसाकी अपेक्षा उसे निर्मूल करना बहुत ही मुश्किल है। कायर मनुष्य हरगिज अपनी जानको जोखमोंमें नहीं डालता। पर जो शख्स दूसरेको मारता है वह कभी-कभी उसे जोखमोंमें डालता है और एक अहिंसा—परायण मनुष्यको जान तो हमेशा उस शख्सके हवाले ही रहती है जो उसे लेना चाहता हो। क्योंकि वह जानता है कि इस शरीरके अन्दर बसनेवाली आत्माका नाश कभी नहीं होता और यह हाड़-मांसका शरीर क्षण भंगुर है। मनुष्य जितना ही अधिक अपनी जान देता है उतना ही अधिक वह उसे बचाता है। इस तरह अहिंसाके लिए युद्धके सैनिकोंसे बढ़कर जवांमर्दकी जरूरत होती है। गीता कहती है—सिपाही वह है जो खतरेमें पीठ दिखाना नहीं जानता।

हिन्दी-नवजीवन
८ जनवरी, १९२५

उलटा रास्ता

जमैयतुल–तबलीग इस्लामने मुझे अपनी बैठकमें हाल ही पास हुए नीचे लिखे प्रस्तावका अनुवाद भेजनेकी कृपा की है।

"यह निश्चय किया गया है कि कोहाटमें हाल ही हुए दंगोंके समय जो शोचनीय घटनाएँ हुई हैं और जिनके फलस्वरूप वहाँके लोगोंके जानो-मालको निहायत नुकसान पहुंचा है, उसकी जिम्मेदारी उन लोगोंपर है, जिन्होंने कोहाटमें ऐसे पर्चे शाया किये जो जोश और गुस्सा दिलानेवाले थे और जिनमें इस्लामपर बुरी तरह हमला किया गया था तथा मुसलमानोंके जजबातको गहरी चोट पहुंचायी थी। जिन हिन्दुओंने गोलियाँ चलायीं और मुसलमानोंकी जानें लीं वे भी उसके बादके हालातको और नाजुक बना देनेके जिम्मेवार हैं। यह जमैयत उन तमाम कोहाटके बाशिन्दोंके साथ, बिला जात-पाँतके भेद भावके हमदर्दी जाहिर करती है, जिनके इन दंगोंके दरम्यान जानोमाल जाया हुए हैं। एक मजहबी जमातकी हैसियतसे यह जमैयत महात्मा गांधीको तथा दूसरे राजनैतिक नेताओंको यह बताना चाहती है कि जबतक मजहब और मजहबोंके प्रवर्तकों तथा मजहबी

हलचलोंके नेताओंपर व्याख्यान और लेखोंके द्वारा किये जानेवाले हमले पूरी तरह न बन्द किये जायंगे तबतक हिन्दुस्तानमें हिन्दू-मुस्लिम-एकताकी कायमी और पुख्तगी हमेशा गैरमुमकिन होगी।"

मैं इस जमैयतको इस प्रस्तावपर बधाई देनेमें असमर्थ हूँ। अभीतक कोहाटकी दुर्घटनाकी कोई जाँच निष्पक्ष रूपसे नहीं हुई है। फिर भी ऐसा मालूम होता है कि दोनों पक्षके लोगोंने अपना-अपना मत बना डाला है। क्या यह बात साबित हो चुकी है कि कोहाटकी तमाम शोचनीय दुर्घटनाओंकी जिम्मेवारी उस या उन लोगोंपर है जिन्होंने कोहाटमें जोश और गुस्सा पैदा करनेवाले वे पर्चे छापे ? क्या वह बात भी साबित हो चुकी है कि 'जिन हिन्दुओंने गोलियाँ चलाई और मुसलमानोंकी जानें लीं वे भी उसके बाद हालातको नाजुक बना देनेके जिम्मेदार हैं। यदि पूर्वोक्त दोनों बातें असन्दिग्ध रूपसे सबित हो गयी हों तो उसमें या वहाँके हिन्दू अपनी जानों मालकी हानिके लिए जमैयतकी ओर से प्रकाशित की गयी किसी तरहकी हमदर्दीके मुस्तहक नहीं हैं। क्योंकि उनकी करनीका फल तो उन्हें मिल गया। ऐसी अवस्थामें जमैयतका हिन्दुओंके साथ हमदर्दी जाहिर करना असंगत है। और जमैयतके मुझे और दूसरे राजनैतिक नेताओंको यह दिखानेमें उसकी मन्शा क्या है कि 'जबतक मजहब और मजहबोंके प्रवर्तकों तथा मजहबी हलचलके नेताओं-पर व्याख्यान या लेखोंके द्वारा किये जानेवाले हमले बन्द न किये जाँयगे तबतक भारतमें हिन्दू-मुस्लिम-एकताकी कायमी और पुख्तगी हमेशा गैर-मुमकिन होगी'। जमैयतका ख्याल अगर सही है तो क्या एकताकी असंभावना ऐसी बात नहीं जिस पर राजनितिक नेताओंके साथ खुद उसका भी ध्यान जाना चाहिये ? और क्या इसलिये कि कुछ व्यक्ति मजहबपर हमला करते हैं, हिन्दू-मुस्लिम-एकता जरूर ही असम्भव होनी चाहिये ? जमैयतके मतानुसार एक अविचारी हिन्दू या अविचारी मुसलमान हिन्दू-मुस्लिम-एकताको असंभव बना देनेके लिये काफी है। सद्भाग्यसे हिन्दू-मुस्लिम एकता धार्मिक और राजनैतिक नेताओंपर अवलम्बित नहीं हैं। उसका आधार है कि दोनों जातियोंकी जनताके उच्च स्वार्थ भावपर। हमेशाके लिये उन्हें कोई गुमराह नहीं कर सकता। पर मैं आशा करता हूँ कि जमैयतका मूल प्रस्ताव इतना खराब न होगा जितना कि यह अनुवाद मालूम होता है

हिन्दी-नवजीवन
२६ जनवरी, १६२५

एकताकी ओर

सर्वदल परिषद्की समिति परिषद्के द्वारा सौंपे अपने कामके निमित्त बैठी थी। उसने इस प्रश्नपर विचार करनेके लिये कोई ५० सज्जनोंकी एक उपसमिति बनाई। उपसमितिने एक छोटी समिति बनाई और उसके जिम्मे यह काम दिया गया कि वह स्वराज्यकी ऐसी योजना तैयार करे जो सबको मंजूर हो सके और उसकी

चर्चाकी रिपोर्ट उपसमितिको करे। विदुषी बेसेण्टको जो इस छोटी समितिमें अपनी सदाकी तत्परता, एकाग्रता और उत्साहके साथ काम कर रही हैं देखकर युवकों और युवतियोंको शर्म आनी चाहिये। परन्तु हिन्दू-मुस्लिम सवालपर स्वभावतः ही ज्यादह ध्यान एकाग्र हुआ है। इसलिये नहीं कि वह मुझ जैसे व्यक्तियोंको छोड़कर औरोंके नजदीक दरअसल ज्यादह महत्वपूर्ण है, बल्कि इसलिये कि उसकी वजहसे स्वराज्यका रास्ता ही बन्द हो रहा है। इस समितिके लिये बाजाब्ता रूपसे काम करना मुश्किल होने लगा। इसलिये यह जरूरी मालूम हुआ कि समितिकी अपेक्षा यों ही आपसमें मिलकर चर्चा करें जिससे दिल खोलकर बातें हो सकें और उसमें और भी कम लोग शरीक हों। तदनुसार हकीम साहबके मकानमें हर जातिके कुछ सज्जन आपसमें मिलें। उसका नतीजा पंडित मोतीलालजी नेहरूने संक्षेपमें प्रकाशित किया ही है। हाँ, मैं भी मानता हूँ कि चिन्ता या निराशाका कोई कारण नहीं है, क्योंकि सब लोग इस सवालको हल करनेके फिक्रमें ही हैं। कुछ लोग आज ही इसका फैसलाकर लेना चाहते हैं, कुछ कहते हैं अभी वक्त नहीं आया है। कुछ तो इसे हल करनेके लिये कुछ छोड़ देनेके लिये तैयार हैं। कुछ होशियारीसे कदम रखना चाहते हैं और जबतक उन्हें उनकी कमसे कम और अपरिहार्य बातें न मंजूर हो जायँ तबतक इन्तजार करना चाहते हैं। पर इस बातपर सब लोग सहमत हैं कि इसका हल हो जाना स्वराज्यके लिए परमावश्यक है। और स्वराज्य तो सभीको दरकार है, इसलिए उसका उपाय उन लोगोंकी पहुंचके बाहर न होनी चाहिए जो इसकी तलाशमें लगे हुए हैं। जिस दिन हमलोग आखिरी बार मिले और फिर २८ फरवरीको इकट्ठा होनेका निश्चय किया, उस दिन इस एकताकी संभावना जितनी थी उतनी पहले कभी न हुई थी। इस बीच हर शख्स दोनोंके मिलापके नये-नये सूत्र खोजेंगे।

जातिगत प्रतिनिधित्वके विषयमें लोग मेरा मत जानना चाहेंगे। मैं तहेदिलसे इसके खिलाफ हूँ। परन्तु मैं तबतक किसी भी बातको मान लेनेको तैयार हूँ जबतक उससे सुलह बनी रहेगी और वह दोनों जातियोंके लिए सम्मानपूर्ण हो। पर अगर दोनों जातियोंकी ओरसे पेश की हुई तजवीजपर मिलाप न हो तो मेरा सुझाया उपाय काम दे सकता है। पर अभी मुझे उसकी चर्चा करनेकी जरूरत नहीं है। मैं आशा करता हूँ कि दोनों जातियोंके जिम्मेदार लोग चाहे खानगीमें बातें करके अथवा सर्व-साधारणमें अपनी रायें जाहिर करके एकताको साधनेमें कोई बात न उठावेंगे। मैं यह भी आशा रखता हूँ कि अखबारवाले भी कोई ऐसी बातें न लिखेंगे, जिससे दल-विशेषको उद्वेग हो और जहाँ वे अच्छी तरह सहायता न कर पावें वहाँ निश्चय-पूर्वक चुप रहेंगे।

हिन्दी-नवजीवन
५ फरवरी, १९२५

कोहाटी हिन्दू

मैं जानता हूँ कि पाठक इस सप्ताहके 'यंग-इण्डिया'के पन्नोंमें, कोहाटकी पिछले सितम्बरकी शोकमय घटनाके विषयमें मौ० शौकत अलीके और मेरे निर्णयोंको खोजेंगे। पर खेद है कि जिज्ञासुओंको उसे देखकर निराश होना पड़ेगा। क्योंकि मौ० शौकत अली मेरे साथ नहीं हैं और उन्हें दिखाये बिना इस विषयमें कोई बात छापना उचित न होगा। फिर भी मैं पाठकोंसे इतना तो कही देता हूँ कि मैंने जो राय कायम की है उनपर पं० मोतीलालजी, पं० मालवीयजी और हकीम साहब अजमल खाँ, डाक्टर अन्सारी और अलीभाइयोंसे भी चर्चा कर ली है। साबरमती आते हुए रास्तेमें मैंने उन्हें अभी लिखकर खतम किया है। तुरन्त ही वे मौलाना शौकतअलीको भेजी जायंगी और उन्हें मौलाना शौकतअलीकी पुष्टि अथवा कमो-बेशीके साथ प्रकाशित करनेकी आशा रखता हूँ। परन्तु हमारे निर्णयोंको छोड़कर मैं हिन्दुओंको फिर यही सलाह देता हूँ कि यदि मैं उनकी जगह होता तो जबतक बिना सरकारके दखल दिये मुसलमानोंसे इज्जतके साथ सुलह न हो, मैं वहाँ न जाता। यह इस मौकेपर मुमकिन नहीं है; क्योंकि बदकिस्मतीसे मुस्लिम कमेटीके लोग जो कि कोहाटके मुसलमानोंकी रहनुमाई कर रहे हैं, न तो हमसे मिलने आये और न आना जरूरी समझा है। हाँ, मैं देखता हूँ कि हिन्दुओंकी हालत नाजुक है। वे अपनी मिल्कियतको गँवाना नहीं चाहते। मौलाना साहब और मैं दोनों सुलह करानेमें कामयाब न हुए। हम तो कोहाटके खास-खास मुसलमानोंको बातचीतके लिए भी बुलानेमें समर्थ न हो सके और न मैं यही कह सकता हूँ कि हम आगे भी जल्दी सफल हो सकेंगे। ऐसी हालतमें हिन्दुलोग जो मुनासिब समझें करें। हमारे नाकाम-याब होते हुये भी मैं तो सिर्फ उन्हें एक ही रास्ता बता सकता हूँ, जबतक मुसलमान आपको इज्जत और गौरवके साथ न ले जांय कोहाट न लौटो। पर मैं जानता हूँ कि यह सलाह देकर सिवा उन लोगोंको जो कि अपने पैरोंपर खड़े रह सकते हैं और जिन्हें किसीकी सलाहकी जरूरत नहीं मैंने औरोंका कष्ट कुछ ज्यादह कम नहीं किया है। और कोहाटके आश्रितोंकी हालत भी ऐसी अच्छी नहीं है। मैंने अपने विचार पं० मालवीयजीतक पहुंचा दिये हैं। वही शुरुआतसे उनके पथ-दर्शक रहे हैं और उन्हें उन्हींकी सलाहके अनुसार चलना चाहिए। लालाजी पिण्डी आये थे, पर बदकिस्मतीसे वे बीमार होगये। मेरी अपनी राय जो बहुत विचारके बाद मैंने कायम की है अपने वक्तव्यमें दे दी है जो कि मौ० शौकतअलीके आस-पास पहुंच गया होगा। मगर यह बात तो मैं पहलेसे कबूल कर लेता हूँ कि उससे उन्हें कुछ भी तसल्ली न मिलेगी। मुझे तो एक टूटी नाव ही समझिये। यह भरोसा करने लायक नहीं।

परन्तु इस बारेमें कि वे जबतक कोहाटके बाहर हैं क्या करें, मैं उन्हें निःसंकोच सलाह दे सकता हूँ। मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि हट्टे-कट्टे और मजबूत हाथ-पैर रखनेवाले लोगोंका दानकी रकमोंपर बसर करना, अपने सत्वको गवाँना है। उन्हें चाहिए कि वे खुद अथवा वहाँके लोगकी मददसे कुछ न कुछ काम अपने लिये ढूँढ़ लें। मैंने उन्हें धुनकने कातने और बुननेका काम सुझाया है। पर वे कोई भी अपनी पसंदका अथवा जो उन्हें दिया जाय काम ले सकते हैं। मेरे कहनेका भाव यह है कि किसी भी स्त्री-पुरुषको जो काम करनेकी ताकत रखता है, दानपर पेट न भरना चाहिए। एक सुव्यवस्थित राज्यमें काम करनेकी इच्छा रखनेवाले हरएक शख्सके लिए काफी काम हमेशा होना चाहिए। आश्रित लोगोंको जबतक कि राष्ट्र उनका भरण-पोषण कर रहा है अपनी एक-एक मिनटका अच्छा हिसाब देना चाहिए। 'निकम्मा आदमी शैतानको निमंत्रण देता है' यह महज लड़कोंकी कहावत नहीं है। इसमें काफी सत्यांश है और उसकी गवाही हर शख्स दे सकता है। इसमें न तो गरीब-अमीरका न ऊंच-नीचका भेद-भाव है। सबपर एकसी मुसीबत छाई है, सब मुसीबतके मारे साथ हैं और धनी और खुशहाल लोगोंको तो खुद आगे बढ़ कर अच्छी तरह मेहनत करके मिसाल पेश करनी चाहिए, फिर चाहे वे खाना-दाना न भी लेते हों। यदि एक राष्ट्रके लोग मुसीबतके दिनोंमें ऐसा काम करना जानते हों जिससे उन्हें सहारा मिले तो इससे कितना भारी लाभ होगा? यदि ये आश्रित लोग धुनकना, बुनना या कातना जानते तो इनकी जिन्दगी इस हालतसे कहीं बेहतर और ऊँची रही होती। उस हालतमें आश्रितोंका वह पड़ाव, एक मधु-मक्खियोंका छत्ता ही बन गया होता जिसमें वे जितने दिनतक चाहते रह पाते। यदि वे लोग इसी समय न जानेका निश्चय करें तो अब भी वक्त नहीं गया है। सूखा आटा दाल देना गलती है। हाँ, व्यवस्थापक लोगोंके लिये ऐसा करनेमें आसानी है। पर इससे आश्रित लोगोंमें बड़ी बेतरतीबी फैलती है और इसमें चीजें बहुत बरबाद होती हैं। उन्हें चाहिए कि वे सिपाहियोंकी तरह संयम और नियम-पालन अख्तियार करें—नियमसे उठें, नियमसे नहावें, धोवें, नियमसे ईश्वर भजन करें, नियमसे खाना खावें, नियमसे काम करें और नियमसे सोवें। कोई वजह नहीं मालूम होती कि क्यों उनके अन्दर रामायणका अथवा और किसी धर्मपुस्तक आदिका पाठ न हो। इन सबके लिए विचार करनेकी, चिन्ता रखनेकी, ध्यान देनेकी और तत्परता रखनेकी बड़ी जरूरत है। ऐसा करनेपर यह मुसीबत एक आनन्दमय घटनाके रूपमें बदली जा सकती है।

हिन्दी-नवजीवन
१२ फरवरी, १९२५

कानपुरमें

डा० अब्दुस्समाद लिखते हैं—

"इसी २ तारीखको कानपुरमें एक झगड़ा हो गया। कानपुरमें महासभाकी आगामी बैठक होनेवाली है। इसलिये मुनासिब है कि इसकी असलियत आपको मालूम हो जाय और इसकी ताईद यहाँकी महासभाकी समितिके सभापति डा० मुरारीलालजीकी तरफसे भी हो जाय तो बेहतर हो कि आप उसे 'यंग-इंडियामें' प्रकाशित कर दें। अंग्रेजी अखबारोंमें उसका जो ब्यौरा छपा है वह बिल्कुल भ्रम पैदा करनेवाला है। आशा है आप इसकी असलियत जानकर उसे प्रकाशित करेंगे।

इन दिनों स्वामी दयानन्दका वार्षिकोत्सव मनाया जा रहा है। भजन-मण्डलियोंके सहित जलूस शहरमें घूमते रहे हैं। २ फरवरीको एक मण्डली मेस्टन रोडसे जो कि एक चौड़ी सड़क है, प्रधान कार्यालयकी ओर आरही थी। वह एक भजन गा रही थी जो कि बहुत ही आपत्तिजनक था।

एक पिछले मौकेपर भी उन्होंने एक ऐसा ही भजन गाया था। पर इस बार जब कि वे सड़कका एक बड़ा हिस्सा तय कर चुके थे कुछ नवजवान मुसलमानोंने उनकी ध्वजाएँ छीन लीं और हमला किया। उन लोगोंने भी जवाबमें प्रहार किया। पर शुरुवातकी थी मुसलमान युवकोंने। तुरंतही आर्यसमाजके नेता वहाँ आ पहुंचे, क्योंकि उनका दफ्तर नजदीक था। भजनकी बात उनसे कहनेपर उन्होंने अफसोस जाहिर किया और यह बात तय पाई कि अब आगे चुने हुए भजन ही गाये जायँगे और तब तमाम मण्डलियोंका संयुक्त जुलूस शहरमें घुमा। समाजियोंके अनुरोधपर कुछ (एक या ज्यादह, मैं ठीक नहीं कह सकता) मुसलमान जुलूसके साथ रहे और सब काम शान्तिपूर्वक समाप्त हुआ। सारा किस्सा यही है।

अब इस शहरके हिन्दू-मुस्लिम ताल्लुकातके बारेमें दो शब्द लिखे देता हूँ। जब कि सारे उत्तरी भारतमें तनाजा छा रहा था डा० मुरारीलाल तथा कुछ मुसलमानोंने अपने मनमें यह अहद कर लिया था कि कानपुरमें तो ये दर्दनाक वाकया हरगिज न होने पावें। एक एकता-मण्डल कायम किया गया था, उसके द्वारा थोड़ा काम हुआ। ज्यादा काम तो उन कुछ कार्यकर्त्ताओंने किया जिन्होंने झगड़ेके किसी कारणके पैदा होते ही तुरंत उसे अपने हाथोंमें ले लिया। नतीजा यह हुआ शहर सब तरहसे बच रहा, हालाँकि कुछ आर्य-समाजी कुछ न कुछ अपनी करामात बतलाते रहे और उनके भजनों तथा व्याख्यानोंके बदौलत शान्तिमें थोड़ा-बहुत खलल पड़ता रहता है। अभी महासभाको दस महीने हैं और इस दरम्यान यहाँ कोई दुर्घटना न होनी चाहिये जिससे कि हमारी सभा सचमुच राष्ट्रीय हो। मैं आशा करता हूँ कि आप इस शहरके राष्ट्रीय कार्य-कर्त्ताओंको ऐसी प्रेरणा देवें कि जिससे इस शहरके जीवनमें ऐसी घटनाओंका होना असम्भव हो जाय।"

मैंने इसकी ताईदके लिए मुरारीलालको नहीं लिखा क्योंकि डाक्टर अब्दुससमादका वक्तव्य खुद ही निर्लेप और निर्दोष होगा तो उसे मैं खुशीसे प्रकाशित करूंगा। झगड़े तो अच्छे-अच्छे व्यवस्थित समाजमें भी हो जाते हैं। पर झगड़ेके बाद दोनों तरफके लोगोंने जिस सद्भावसे काम लिया वह सराहनीय है। अब रही कुछ आर्य-समाजियोंके इल्जामकी बात, सो मैं नहीं कह सकता, वे कहाँतक उसे कबूल करेंगे। मैं आशा करता हूँ कि कानपुरके हर समाजके लोग अधिकसे अधिक संयम रखनेका और उपद्रवी लोगोंको अपने काबूमें रखनेका भरसक प्रयत्न करेंगे एवं हमेशा अपनेसे भिन्न २ धर्म-मत या राजनैतिक विचार रखनेवाले प्रतिस्पर्धियोंके प्रति उदारता रखनेके लिए सदा तैयार रहेंगे।

हिन्दी—नवजीवन
१२ फरवरी, १९२५

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न

एक सज्जन लिखते हैं—

"आपने 'यंग इंडियामें' एक पत्र-लेखककी इस पुकारको स्थान दिया है कि तालीमके बारेमें मुसलमान लोग बहुत पिछड़े हुए हैं। पर मैं अब आपके सामने एक ऐसी पुकार पेश करना चाहता हूँ कि जो तालीमवाली पुकारसे भी ज्यादह बेतुकी है। वह यह है कि हिन्दुस्तानमें मुसलमानोंकी संख्या कम है। कितनी ही बार यह बात कही गई है और कितनी बार राजनैतिक बातोंमें यह दलील चुपचाप मान ली गई है। पर क्या दरअसल उनकी अल्पसंख्या है? अगर उसके सिर्फ एक ही फिरके, सुन्नीको ले लें तो क्या वह हिन्दुओंकी किसी भी एक फिरकेकी संख्यासे बढ़कर नहीं है? बल्कि भारतके ईसाई, पारसी, सिख, जैन, यहूदी, बौद्ध और किसी भी धर्मवालोंसे ही बढ़कर नहीं हैं? और क्या यह बात सच नहीं है कि हिन्दूलोग कितनी ही जातियों और फिरकोंमें बंटे हुये हैं जो कि सामाजिक बातोंमें उतने ही एक दूसरेसे दूर हैं जितने कि मुसलमान गैर-मुसलमानसे? अच्छा तो फिर अछूतोंका क्या होगा? क्या उनकी तादाद 'मुस्लिम अल्पसंख्या' के बराबर नहीं है? हिन्दुस्तानके मुस्लिम जब पृथक और विशेष व्यवहार, रक्षा और गारन्टी चाहते हैं तब अछूतोंका दावा कितना मजबूत होगा? वे तो सदियोंसे दलित-पीड़ित होते आये हैं। उनकी अवस्थासे तो किसी भी मुसलिम या स्पृश्य लोगोंकी अल्पसंख्याके 'भविष्यकी आशंका' की तुलना हो सकती है। साक्ष्यके तौरपर वायकोम सत्याग्रह, पालघाटका झगड़ा और बम्बईके टूक-टूक कर देनेकी प्रतिज्ञा करनेवालोंको लीजिए। उन आदिम जातियोंका तो मैं यहां जिक्र ही नहीं करता हूँ जिनकी गिनती हिन्दुओंमें की जाती है, तब क्या अकेले मुसलमानोंकी ही अल्पसंख्या है?"

यह पत्र सरगर्मीसे भरा हुआ है, इसलिये इसे छापा है। फिर भी मेरी, एक निष्पक्ष निरीक्षककी दृष्टिमें लेखककी वह दलील लचर है जिसके द्वारा वे यह दिखलाना चाहते हैं कि हिन्दुस्तानमें मुसलमानोंकी अल्पसंख्या नहीं है। लेखक इस बातको भूल जाते है कि दावा तो सारे मुसलमानोंका सारे हिन्दुओंके खिलाफ है। दही और मही दोनों नहीं खा सकते। यद्यपि हिन्दुओंके आपसमें बहुत कुछ दला-दली है, तथापि वे अकेले मुसलमानोंका ही नहीं तमाम अ-हिन्दुओंका कम-ज्यादा एक होकर मुकाबिला कर रहे हैं। मुसलमान भी आपसमें अनेक दलोंमें विभक्त हैं, तो भी कुदरती तौरपर तमाम गैर-मुस्लिमोंका मुकाबिला एकदिल होकर रहे हैं। हकीकतको आँखोंके ओट करके या अपनी तजवीजोंके मुआफिक उनको बैठाकर हम कभी इस सवालको हल नहीं कर सकते। हकीकत यह है कि मुसलमान सात करोड़ हैं और हिन्दू बाईस करोड़। हिन्दुओंने कभी भी इस बातको नामंजूर नहीं किया। अब हम यह भी देखें कि मामला दरअसल क्या है? अल्प संख्यक लोग, बहु-संख्यक लोगसे हम महज इसलिये नहीं डरते कि उनकी बहुसंख्या है। मुसलमान हिन्दुओंकी बहुसंख्यासे इसलिये डरते हैं कि उनका कहना है, हिन्दुओंने हमेशा ही हमारे साथ इन्साफ नहीं किया है, हमारे मजहबी जजबातकी इज्जत नहीं की है और उनका कहना है कि हिन्दू लोग तालीम और धन-दौलतमें हमसे बढ़े-चढ़े हैं। ये बातें ऐसी ही हैं या नहीं, इस सवालसे हमें यहाँ कोई मतलब नहीं। हमारे लिये इतना ही काफी है कि मुसलमान इस बातपर विश्वास रखते हैं और हिन्दुओंकी बहुसंख्यासे डरते हैं। मुसलमान लोग इस डरका इलाज कुछ अंशोंमें पृथक निर्वाचन और विशेष प्रतिनिधित्वके द्वारा कुछ जगहोंमें तो अपनी संख्यासे भी ज्यादा करना चाहते हैं। हिन्दू लोग तो मुसलमानोंकी अल्पसंख्याको मानते हैं पर उनके इन्साफ न करनेके इलजामसे इन्कार करते हैं। इसलिये इसकी तसदीक करनेकी जरूरत है। मैंने हिन्दुओंको इस कथनका खण्डन करते हुये नहीं देखा है कि वे तालीम और धन-दौलतमें मुसलमानोंसे बढ़कर हैं।

इधर हिन्दू भी मुसलमानोंसे डरते हैं। उनका कहना है कि जब कभी मुसलमानोंके हाथमें हुकूमत आयी है उन्होंने हिन्दुओंपर बहुत-बहुत ज्यादतियाँ की हैं और कहते हैं हालाँकि हमारी बहुसंख्या है तो भी मुट्ठी भर मुसलमानोंके हमले हमारे छक्के छुड़ा देते हैं। हिन्दुओंके सामने उन पुराने तजुर्बोंका खतरा हमेशा खड़ा रहता है और अग्रगण्य मुसलमानोंकी नेकनियत्ति होते हुये भी वे मानते हैं कि मुसलमान जनता किसी भी मुसलमान गुण्डेका साथ दिये बिना नहीं रहेगी। इसलिए हिन्दू-मुसलमानोंकी कमजोरीके तर्कको नामंजूर करते हैं और लखनऊके ठहरावके तत्वको व्यापक करनेके विचारको दिलमें स्थान देनेसे इन्कार करते हैं। यहाँ भी यह सवाल नहीं उठता कि हिन्दुओंका डर कहाँतक ठीक है? हमें यही मानकर चलना होगा कि यह वस्तुस्थिति है। किसी भी जातिके या नेताकी नीयतको बुरा बताना अनुचित होगा। मालवीयजी या मियाँ फजलीहुसैनपर अविश्वास

करना मानों इस प्रश्नके निपटारेको स्थगित करना है। ऐसी हालतमें अक्लमन्दी इसी बातमें है कि तमाम छोटे-छोटे सवालोंको एक ओर रख दें और स्थिति जैसी कुछ हो उसका मुकाबिला करें और न कि अपनी कल्पनाके अनुसार चाही हुई स्थितिका।

इसलिये मेरी रायमें लेखकने, चाहे अनजानसे ही हो अपने पक्षको जरूरतसे ज्यादा सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है। हाँ, उनका यह कहना सच है कि खुद हिन्दू ही परस्पर विरोधी दलोंमें विभक्त हैं। उनमें ऐसे दल हैं जो अपने लिये अलग-अलग व्यवहारका दावा लेकर खड़े होते हैं। उनका यह भी कहना ठीक है कि पृथक प्रतिनिधित्वके लिये मुसलमानोंकी अपेक्षा अछूतोंका पक्ष कहीं मजबूत है। लेखकने मुसलमानोंकी अल्पसंख्याकी हकीकतके विरोधमें आवाज नहीं उठाई है। उन्होंने यह दिखलाया है कि लखनऊके ठहरावके सिद्धान्तका विस्तार करनेसे असंख्य उप-जातियों और दूसरी जातियोंके लिये जातिगत प्रतिनिधित्वका सवाल खड़ा हुए बिना न रहेगा। ऐसा करना स्वराज्यके शीघ्र आगमनको अनिश्चित समयतक स्थगित करना है। लखनऊ ठहरावके सिद्धान्तका विस्तार करना या उनको कायम तक रखना भयावह है। मुसलमानोंके दुःख दर्दोंपर ध्यान न देना भी मानों उन्हें हम महसूस ही न करते हों। स्वराज्यको मुल्तवी करना है। ऐसी हालतमें स्वराज्यके प्रेमी तबतक दम नहीं ले सकते जबतक कि इस सवालका निपटारा न हो जाय जैसे एक ओर मुसलमानोंकी आशंका दूर हो जाय और दूसरी ओर स्वराज्यके लिये भी खतरा न रह जाय।

ऐसा निपटारा असंभव नहीं है। एक तो यही सुन लीजिये मेरी रायमें मुसलमानोंके इस दावेको, कि बंगाल ओर पंजाबमें उसकी बहुमति उनकी संख्याके अनुसार रहे माने बिना नहीं रह सकते। उत्तर-पश्चिमके डरके कारण इस दावेको रोक नहीं सकते। हिन्दू अगर स्वराज्य चाहते हों तो उन्हें जोखिमके मौकेके सामने सिर देना चाहिये। जबतक बाहरी दुनियाँसे डरते रहेंगे तबतक हमें स्वराज्यका ख्याल छोड़ देना चाहिये। पर स्वराज्य तो हमें लेना ही है। इसलिये मैं मुसलमानोंके न्यायोचित दावेका विचार करते समय हिन्दुओंकी डरकी दलीलको खारिज करता हूँ। अपनी भावी सहीसलामतीको खतरेमें डालकर भी हमें इन्साफ पर कायम रहनेकी हिम्मत होनी चाहिये।

मुसलमान जो पृथक निर्वाचन चाहते हैं वह पृथक निर्वाचनके लिये नहीं बल्कि इसलिये कि वे धारा-सभामण्डलमें तथा दूसरे निर्वाचनमें खुद अपने सच्चे प्रतिनिधि भेजना चाहते हैं। यह तो कानूनके जरिये अनिवार्य करनेकी अपेक्षा खानगी तौर पर हुई तजवीज कर लेनेसे अच्छी तरह हो सकता है। खानगी तौरपर तजवीजमें घटा बढ़ीकी गुंजाइश रहती है मगर कानूनी कारवाईसे ज्यादह सख्त हो जानेकी संभावना रहती है। खानगी तजवीज सिर्फ दोनों दलके पारस्परिक आदर और

विश्वासकी परख करती होगी। पर कानूनी कारवाई ऐसे आदर और विश्वासका मौका आने ही नहीं देती। खानगी तजवीजके मानी हैं, घरेलू झगड़ेका घरेलू निपटारा और दोनोंके दुश्मन अर्थात् विदेशी हकूमतका सबकी तरफसे मिलकर मुकाबिला। पर कहते हैं कि जो खानगी तजवीज मैं सुझा रहा हूं उस मुताबिक काम करनेमें कानून बाधक होता है। यदि ऐसा है तो हमें उस कानूनी विघ्न दूर करनेकी कोशिश करनी चाहिए। नकि नई पैदा करने और जोड़नेकी। इसलिए मेरी तजवीज यह है कि पृथक निर्वाचनका ख्याल छोड़ दिया जाय और हल्के-विशेषमें दोनोंकी संयुक्त सम्मतिसे चाहे हुए और तय शुदा तादादमें मुस्लिम तथा दूसरे उम्मीदवारकी सूरत पैदा की जाय। मुसलिम उम्मीदवार पहलेसे प्रसिद्ध मुस्लिम संस्थाओंके द्वारा नामजद किये जाय। इस मौकेपर नियतसे अधिक तादादमें प्रतिनिधि रखनेके सवालमें पड़नेकी जरूरत नहीं। जबकि खानगी ठहरावके उसूलको सब लोग कबूल कर लेंगे तब इसके रास्तेकी तमाम दिक्कतों पर विचार कर लिया जायगा।

हाँ इसमें कोई शक नहीं कि मेरे इस प्रस्तावमें पहलेसे यह बात गृहीत कर ली जाती है कि इस सवालमें लगे हुए तमाम लोग स्वराज्यको ध्यानमें रखकर इसको हल करनेकी कोशिश सच्चे और साफ दिलसे चाहते हैं। यदि जातिगत प्रमुख हमारा मकसद हो तो हर तरहकी खानगी तजवीज बेकार होगी। पर अगर स्वराज्य ही हम सबका लक्ष्य हो और दोनों पक्षके लोग महज राष्ट्रीय दृष्टि बिन्दुसे ही उसे हल करना चाहे तो फिर उसके बेकार होनेके अन्देशाकी मुत्लक जरूरत नहीं। उल्टा हर फरीक नेकनीयतीके साथ उसके अनुसार चलनेमें अपना हित समझेगा।

फिर भी कानूनके द्वारा अगर कुछ करना है तो वह यह कि मताधिकार न्यायोचित हो जिससे कि हर जातिके लोग यदि चाहें तो अपनी तादादके लिहाजसे मतदाताओंका नाम दर्ज करा सकें। मत दाताओंकी सूची ऐसी होनी चाहिये जिससे संख्याके लिहाजसे प्रतिनिधि पहुंच सकें। पर इसके लिए वर्तमान मताधिकारकी कार्य-रीतिकी छान-बीन करनी होगी। मेरी नजरमें तो वर्तमान मताधिकार किसी भी स्वराज्य योजनामें स्थान पाने योग्य नहीं है।

हिन्दी-नवजीवन
१९ फरवरी, १९२५

एक वहम

बंगालके एक जमीदारने हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य, अस्पृश्यता और स्वराज्यके विषयके चर्चा करते हुए मुझे एक बड़ी लम्बी चिट्ठी भेजी है। चिट्ठी इतनी लम्बी

है कि यहाँ प्रकाशित नहीं की जा सकती। और उसमें कोई नई बात भी नहीं कही गई है। फिर भी नमूनेके तौरपर उसमेंसे एक वाक्य यहाँ देता हूँ—

"पचासो बरस हुए हिन्दुओंका और मुसलमानोंका संबंध दुश्मनोंका सा रहा है। बृटिशोंका राज्य होनेके बाद एक नीतिके तौरपर हिन्दू मुसलमान उस जाति गत दोषको भूल जानेपर विवश किये गये थे और अब उन दोनों जातियोंमें वैसी कटुता और दुश्मनी नहीं रही लेकिन इन दोनों जातियोंके स्वभावका स्थायी भेदभाव अब भी मौजूद है। मेरा विश्वास है कि हिन्दू-मुसलमानोंका वर्तमान सुसंबंध बृटिश राज्यके कारण ही है और नवीन हिन्दू-धर्मकी उदारताके कारण नहीं।"

मैं इसे सिर्फ एक वहम मानता हूँ। मुसलमानोंके राज्यमें दोनों जातियाँ आपसमें सुलह शान्तिके साथ रहती थीं। यह स्मरण रखना चाहिये कि मुसलमानोंके राज्य फलके पहले भी कितने ही हिन्दुओंने इस्लामको अंगीकार किया था। मेरा यह विश्वास है कि यदि बृटिश राज्य यहाँ न होता तो जिस प्रकार यहाँ ईसाई लोग होते ही, उसी प्रकार मुसलमानोंका राज्य यदि न हुआ होता तो भी यहाँ मुसलमान तो जरूर ही होते। मेरा विश्वास है कि बृटिशोंकी इस "भेद उत्पन्न करके राज्य करने" की नीतिने हमारे भेदोंको और भी बढ़ा दिया है। और जबतक इस नीतिके होते हुए भी, हम यह न समझ जायँ कि हमें एक हो जाना चाहिये, तबतक वह हमारे भेदोंको बढ़ाती ही रहेगी। लेकिन यह तबतक मुमकिन नहीं जबतक हम अधिकार और जगहोंके लिए झगड़ते रहेंगे। आरंभ हिन्दुओंको ही करना चाहिये।

हिन्दी—नवजीवन
२६ फरवरी १९२५

*

फिर मनाही

वायसरायके प्राइवेट सेक्रटरी और मेरे दरम्यान तारके जरिये जो-जो लिखा-पढ़ी हुई है उसे मैं नीचे देता हूँ—

मेरा तार — ९—२—२५

"मार्चके आरंभमें मुझे और मेरे साथीको कोहाट जानेकी इजाजत अब वाइसराय साहब दे सकेंगे?"

वाइसरायके मंत्रीका उत्तर

१३—२—२५

"श्री मान् वाइसरायने मुझे फरमाया है कि मैं आपको आपके तारके लिये और तार करनेकी शिष्टताके लिये धन्यवाद दूँ।

आपके इच्छानुसार आपको इजाजत देनेसे श्रीमानको बड़ी खुशी होती। लेकिन उनका ध्यान कोहाटी हिन्दुओंको यगङइन्डियामें दी गई आपकी इस सलाहकी ओर गया है कि सरकारकी मध्यस्थताके बिना ही जबतक मुसलमान लोग उनके साथ बाइजत सुलह न करें जबतक वे कोहाट वापस न जाँय। इस लेखसे वे सिर्फ यही तात्पर्य निकाल सकते हैं कि यदि आप कोहाट गये तो वे ख्याल करते हैं कि आपके प्रभावका झुकाव हालमें ही हुए उस समझौतेको तोड़नेकी ओर ही रहेगा जिसे कि वाइसराय साहब बड़ा महत्वपूर्ण मानते हैं और जिसके द्वारा वे मानते हैं कि परस्पर स्थायी समझौता हो जायगा। अतएव वाइसराय साहबको यह यकीन है कि आप खुद ही इस बातको ठीक-ठीक समझ पायेंगे कि आपको इच्छाके अनुकूल होना उसके लिये कितना असंभव है।"

मेरा दूसरा तार

१६—२—२५

"तारके लिये धन्यवाद। आपके तारमें 'यं० इं०'के जिस लेखका उल्लेख है उसमें आदर्श सुझाया है। परन्तु जो मुकदमें उठा लिये गये हैं उनमें मैं बिल्कुल दखल देना नहीं चाहता। सच्ची शान्ति स्थापित करना मेरा उद्देश्य है और मैं मानता हूँ कि सरकारकी मध्यस्थताके अथवा सच विचार करें तो गैर-सरकारी और स्वयंस्फूर्ति प्रयत्नके बिना वह प्रायः असंभव है। जिस दरजे तक सरकारी यत्नके द्वारा पक्की सुलह होती होगी उस दरजे तक तो मेरी और मेरे साथियोंकी मध्यस्थता उसमें सहायक ही हो सकती है। उत्तर साबरमती दीजियेगा।"

इसका उत्तर २२—२—२५

"आपके तारके लिए श्रीमान् वाइसराय साहब धन्यवादके लिए आज्ञा देते हैं। जो सुलह आज बड़ी कठिनाईसे हुई है वह दौर सरकारी दोनों जातियोंके लोगोंकी अपने आप मिली सहायताके फलस्वरूप हो पायी है। निश्चय ही वह दोनों जातियोंमें हुआ ठहराव है। और यदि उनकी शर्तोंमें कुछ भी गड़बड़ी की जाय तो सारा ठहराव छिन्न-भिन्न हो जायगा। और फिर इस ठहरावके आधारपर ही श्रीमान् वाइसराय साहब अत्यन्त आत्म-परीक्षाके बाद मुकदमें उठा लेनेपर राजी हुए हैं। ऐसी हालतमें यद्यपि वाइसराय साहब भी समझते हैं कि आप शान्ति-रक्षा ही करना चाहते हैं, तथापि वे समझते हैं कि यदि आप वहाँ जायंगे तो फिरसे सारा मामला नये सिरेसे खोलना पड़ेगा। इस कारण निहायत अफसोसके साथ उन्हें अपने पहले निश्चयपर ही कायम रहना चाहिए।"

यह बात बिल्कुल सच है कि मेरे कोहाट जानेसे वहाँके हिन्दू-मुसलमानोंके समझौतेका मामला जहाँतक वह मूलतः ही खराब होगा, फिरसे खुले बिना न रहेगा। पर वह समझौता दबावका फल है। क्योंकि मुकदमे चलानेकी धमकी तो दोनों फरीकके सिरपर खड़ी ही थी। यह ठहराव दोनोंके स्वेच्छ पूर्वक नहीं हुआ जिससे कि दोनोंको पसन्द हो। हिन्दू और मुसलमान दोनोंने जो कि रावलपिण्डीमें मौ० शौकतअलीसे और मुझसे मिले थे, ऐसा ही कहा था। परन्तु मेरे कोहाट जानेसे

चाहे कुछ भी नतीजा निकले या न निकले, उससे दोनों फरीककी अनबनमें बढ़ती तो हरगिज नहीं हो सकती। ऐसी हालतमें यदि मुझे अपने मुसलमान मित्रोंके साथ कोहाट जाने दिया जाता तो शान्ति-स्थापनाका ध्येय जिसका कि दावा मेरे वाइसराय साहब भी बराबर करते हैं, बहुत अंशोंतक सिद्ध हुआ होता। उस समय जब कि कोहाटमें आग धधक रही थी, मेरा न जाने दिया जाना कुछ-कुछ समझमें आ पाया था परन्तु इस समयकी मनाही समझमें नहीं आती। कितने ही मित्रोंने मुझे सूचित किया है कि बिना इजाजत लिए अथवा खबर किए ही मुझे कोहाट पहुँचकर मुमानीयती हुक्मकी जोखिम सिरपर ले लेना चाहिए था। पर यह मैं उसी हालतमें कर सकता था जब किसी भी हुक्मका अनादर करके जेल जानेको न्योता देनेकी मुझे इच्छा होती। पर मैं मानता हूँ कि देशमें आज ऐसी किसी कारवाईके योग्य वायुमण्डल नहीं है। इसलिए मैं इस जोखिमको सिर नहीं ले सकता। मुझे आशा है कि जिस सावधानीके साथ मैं सविनय भंगके किसी भी कदमसे दूर रहता हूँ, उसकी कदर सरकार करेगी और इस सावधानीमें भी मेरा हेतु यह है कि जहाँतक हो सके ऐसा कोई भी काम न किया जाय जिससे लोग अप्रत्यक्ष-रूपसे भी हिंसामें प्रवृत हो सकें। पर हाँ ऐसा समय आये बिना न रहेगा जब कि अधीत्व परिणामोंका लेश-मात्र विचार किए बिना सविनय भंग करना मेरा धर्म हो जायगा। मैं नहीं जानता कि यह समय कब आवेगा। पर मैं इतना जरूर मानता हूँ कि वह आ सकता है। जब वह वक्त जायगा तब मुझे आशा है कि मेरे मित्र मुझे पीठ दिखाते न देखेंगे। तबतक वे मुझे निबाह लें।

हिन्दी-नवजीवन

२६ फरवरी, १९२५

हिन्दू-मुस्लिम समस्या

अखबारोंमें छपे वक्तव्यसे पाठकोंको मालूम होगा कि सर्वदल-परिषद् नियुक्त उप-समिति इस महा समस्याका निपटारा करनेमें समर्थ न हो पायी है। लेकिन मैं कुछ नहीं कर सकता था। शायद यह अच्छा ही हुआ जो कुछ निपटारा न हो पाया। ऐसे निपटारेके अनुकूल वायुमण्डल अभी नहीं है। हर फरीक दूसरेको अविश्वासकी दृष्टिसे देखता है। ऐसी हालतमें दोनोंकी एक सामान्य भित्तिपर कोई काम नहीं किया जा सकता। हर फरीक अपनेसे जितना कम हो सके छोड़ना चाहता है और न दोमेंसे किसीके भी दिलमें ऐसे निपटारेकी सच्ची उत्कण्ठा किसीको दिखायी देती है। फिर भी निराशाका कोई कारण नहीं है। हो सकता है कि असफलताके ही आधारपर आगेकी सफलताकी बुनियाद पड़े, बशर्ते कि वे लोग जो एक दूसरेपर विश्वास रख

सकते हैं और जिन्हें एक दूसरेका डर नहीं है अपने अकीद: पर बराबर अटल रहें और निपटारेके लिए उद्योग करते रहें। कोई निपटारा राष्ट्रीय तभी होगा जब वह सरकारपर अवलम्बित न रहता हो अर्थात् वह स्वयं कार्य-क्षम हो और उसकी कार्य-पूर्ति सरकारकी सदिच्छापर अवलम्बित न हो।

हिन्दी–नवजीवन
५ मार्च, १९२५

कोहाटकी जाँच

कोहाटकी दुर्घटनाके संबंधमें मैं अपना और मौलाना शौकतअलीका वक्तव्य प्रकाशित कर सका हूँ। इससे पहले उसे प्रकाशित करना संभव न था क्योंकि मैं और मौलाना दोनों सफरमें रहते थे और हमेशा दोनों एक जगह नहीं ठहरते थे। मैं यह निश्चित रूपसे नहीं कह सकता कि इस अवसरपर इन वक्तव्योंके प्रकाशित करनेसे कोई बड़ा लाभ होगा, सिवा इसके कि इससे मेरा वादा पूरा होगा, जो मुझे किसी न किसी तरह पूरा करना चाहिए था। लेकिन इनके प्रकाशित हो जानेसे प्रकारान्तरसे एक फायदा जरूर होगा। हम लोगोंने वहीं प्रमाणोंपरसे जो अनुमान निकाले हैं, उनमें बड़ा भारी वास्तविक भेद है। गवाहोंको गवाहीपर विश्वास रखनेके हमारे परिमाणमें भी भेद है। जब हमने इस मतभेदको महसूस किया तो हमें बड़ा दुःख हुआ और इस मतभेदको जहाँतक हो सका दूर करनेकी कोशिश की। हमारे इस मतभेदको हमने हकीम साहब और डाक्टर अनसारीके सामने पेश किया और उनसे मदद माँगी। सद्भाग्यसे उस समय जब हम इसपर विचार करते थे, पंडित मोतीलालजी भी वहाँ मौजूद थे। इस वादविवादमें हमें कोई बात ऐसी न मिली जो हमारी दृष्टिमें वास्तविक परिवर्तन कर दे। यह बहस देहलीमें हुई थी। हमने फिर यह निश्चय किया कि कुछ घंटे हम दोनों साथ-साथ सफर करें और अपने हृदयकी इस दृष्टिसे परीक्षा करें कि हम अपने वक्तव्यको फिर बदल सकते हैं या नहीं। कुछ बातोंको बदल देनेके सिवा हमारा मतभेद दूर नहीं हो सकता। हम लोगोंने हकीम साहबकी इस सूचनापर भी विचार किया कि हमारा वक्तव्य प्रकाशित ही न किया जाय। कुछ अंशतक पं० मोतीलालजीने भी इसका समर्थन किया था। लेकिन हम कमसे कम मैं तो इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि जनता जो मुझे और अली भाइयोंको कुछ सार्वजनिक प्रश्नोंपर हमेशा एक मानती थी उसे यह भी जान लेना चाहिए कि कुछ प्रश्नोंपर हममें भी मतभेद हो सकता है। लेकिन हमें एक दूसरेके प्रति यह शंका नहीं हो सकती कि हममेंसे कोई जानकर पक्षपात करता है या सत्य प्रमाणोंको तोड़-मरोड़कर उससे अपना मतलब निकाल

लेता है। और हमारे परस्पर प्रेममें भी कोई बाधा नहीं आ सकती। हम यदि खुले तौरसे अपने मतभेदोंको स्वीकार कर लेंगे तो उससे जनताको आपसमें सहनशील बननेका सबक भी मिलेगा। जन समाजसे मैं यह कह देना चाहता हूँ कि इस मतभेदको दूर करनेके प्रयत्नमें मैंने या मौलाना साहबने कोई बात उठा न रक्खी है। लेकिन अपनी रायको छिपानेका भी कोई प्रयत्न नहीं किया गया था। हमारे असल वक्तव्यमें हमने कुछ रद्दो बदल की है लेकिन दोमेंसे एक भी किसी बातमें अपने निश्चित मतका त्याग नहीं किया है। हम दोनोंने कुछ जगहोंमें किसीको बुरा न मालूम हो, इसलिए भाषाको मुलायम बनाया है लेकिन इसके सिवा असल वक्तव्योंमें कुछ भी वास्तविक रूपान्तर नहीं किया गया है।

हिन्दी-नवजीवन
२६ मार्च, १९२५

❀

गांधीजीका वक्तव्य

मौलाना शौकतअली और मैं कोहाटके हिन्दू आश्रितोंको और उन मुसलमानोंको मिलनेके लिए, जिन्हें मौलानाने पत्र लिखकर बुलाये थे और जो रावलपिण्डी आनेवाले थे, ता० ४को रावलपिण्डी पहुँचे। एक दिन बाद लाला लाजपतराय भी आ पहुंचे। लेकिन दुर्भाग्यसे वे बुखार लेकर ही आये थे और जबतक हम लोग रावलपिण्डी रहे उन्हें बिछौनेमें ही रहना पड़ा।

जिन मुसलमानोंकी हमने गवाही ली उनमें मौलवी अहमदगुल और पीर साहब-कमाल मुख्य थे। हिन्दुओंने तो पहले ही अपना लिखा और छपा हुआ वक्तव्य प्रकाशित कर दिया था। उन्हें उससे अधिक कुछ नहीं कहना था। कोहाटमें जो मुस्लिम-कार्यवाहक समिति काम कर रही है वह न आना ही चाहती थी और न आई। उसने मौलाना साहबको इस मतलबका तार भेजा है कि 'हिन्दू और मुसलमानोंमें समाधान हो गया है। हमारी रायमें इस सवालको फिर छेड़ना उचित नहीं है। इसलिए यदि मुसलमान लोग अपने प्रतिनिधि रावलपिण्डी न भेजें तो उन्हें आप क्षमा करेंगे।'

मौलवी अहमदगुल और जो दूसरे सज्जन रावलपिण्डी आये थे वे इस कार्यवाहक-समितिके सदस्य थे। लेकिन उन्होंने कहा कि वे खिलाफ कमेटीकी हैसियतसे आये थे, इस कार्यवाहक-समितिके सदस्यकी हैसियतसे नहीं।

ऐसी हालतमें प्रत्यक्ष स्थानका पूरा निरीक्षण किए बिना ही और दूसरे गवाहोंसे गवाही लिए बिना सभी बातोंका निश्चित परिणाम निकालना बड़ा ही

मुश्किल है। हम लोग यह न कर सके। हम कोहाट न जा सके और न हमारा यह इरादा ही था कि छोटी-छोटी बातोंपर ध्यान देकर गड़े मुर्दे उखाड़ें। हमारा मकसद तो यह था कि यदि मुमकिन हुआ तो दोनों दलोंमें एक्य स्थापित कर दें। इसलिए हम लोगोंने मुख्य-मुख्य बातोंको ही जितना बन सका स्पष्ट करनेकी कोशिश की।

मौलाना साहबके साथ सब बातोंका मशविरा किए बिना ही यह लिख रहा हूँ। इसलिए इसमें सिर्फ मैंने अपना ही निर्णय प्रकाशित किया है। मौलाना चाहें तो उसका समर्थन करें या अपना वक्तव्य अलग ही प्रकाशित करावें।

ता० ९ सितम्बर और उसके बाद जो घटनाए हुई उसके कई कारण थे। उसमें एक यह भी था कि हिन्दू पुरुष और विवाहित स्त्रियोंको मुसलमान (मेरी रायमें ऐसे धर्मान्तरको वास्तविक धर्मान्तर नहीं कह सकते) बनानेसे हिन्दू लोग बिगड़े और उन्होंने उसके विरुद्ध जो कारवाई की उससे और भी ज्यादह बिगड़ उठे। कोहाटके हिन्दू व्यापारियोंको निकाल देनेकी पराचाओं (मुसलमान व्यापारी) की इच्छा दूसरा कारण था और तीसरा कारण यह अफवाह थी कि सरदार माखनसिंहजीके पुत्रने किसी विवाहित मुसलमान लड़कीका हरण किया था। उसे सुनकर मुसलमान कौम बड़ी बिगड़ी हुई थी।

इन सब कारणोंका एकत्र परिणाम यह हुआ कि दोनों कौमोंमें बड़ा वैमनस्य और कटुता फैल गयी। जिस कारणसे यह आग भड़क उठी वह कारण तो रावलपिण्डीमें प्रकाशित की गयी और कोहाटमें दाखिल की गयी श्री जीवनदासकी प्रसिद्ध पत्रिकाकी एक कविता थी। उसमें श्री कृष्ण और हिन्दू-मुस्लिम एक्यकी कविताएं छपी हुई थीं। लेकिन उसमें एक बड़ी अपमानजनक कविता भी थी जो मुसलमानोंके दिलोंको निःसन्देह दुखानेवाली समझी जा सकती है। श्री जीवनदास उसके रचयिता न थे। उन्होंने मुसलमानोंको चिढ़ानेके लिए उसे कोहाटमें दाखिल नहीं किया था। जब सनातन धर्म सभाका ध्यान इस बातपर दिलाया गया उसने उस कविताके लिए लिखकर माफी मांगी और बची हुयी प्रतियोंमेंसे उसे निकलवा दिया। उससे मुसलमानोंको संतोप हो जाना चाहिए लेकिन उन्हें संतोष न हुआ। बची हुई प्रतियाँ मुसलमानोंके ख्यालके मुताबिक ५०० से कुछ अधिक और हिन्दुओंके ख्यालके मुताबिक ९०० से कुछ अधिक टाऊनहालमें लाई गयी और डिप्टी कमिश्नर और मुसलमानोंकी एक भीड़के सामने सार्वजनिक तौरपर जला दी गयी। पत्रिकाके पृष्ठपर श्रीकृष्णकी तस्वीर भी थी। श्री जीवनदासको गिरफ्तार किया गया। यह घटना ३ सितम्बर १९२४ को हुई। ११ता० को वे अदालतमें पेश किए जानेवाले थे। हिन्दुओंने अदालत छोड़कर आपसमें ही निपटाराकर लेनेकी कोशिश की। इसके लिए पेशावरसे खिलाफत वालोंका एक शिष्ट-मंडल भी आया था। मुसलमान शरीयतके मुताबिक जीवनदासका इन्साफ करना चाहते थे। हिन्दुओंने इसे इन्कार किया लेकिन खिलाफतवालोंके निर्णयको

कबूल करनेके लिये राजी हो गये। लेकिन सब कोशिशें बेकार गई इसीलिये हिन्दुओंने श्री जीवनदासको छोड़ देनेकी अरजी की। ता० ८ सितम्बरको जमानत लेकर और इस शर्तपर कि वे कोहाट छोड़कर चले जायगे, छोड़ दिये गये। उन्होंने तो कोहाट एक दम छोड़ दिया। लेकिन इस प्रकार उनके मुकदमेंसे बच जानेके कारण मुसलमानोंका क्रोध भड़क उठा। ता० ८ सितम्बरकी रातमें उनकी एक सभा हुई उसमें बड़ा जोश फैला हुआ था और बड़े जोशीले व्याख्यान हुए थे। उसमें यह निर्णय हुआ कि वे सब मिलकर डिप्टी कमिश्नरके पास जायं और जीवनदासको फिर गिरफ्तार करनेके लिए और सनातन धर्म सभाके कुछ और सदस्योंको गिरफ्तार करनेके लिए कहें। यदि डिप्टी कमिश्नर उनकी बातें न सुने तो हिन्दुओंसे पूरा-पूरा बदला लेनेके लिए धमकी भी दी गयी थी। सुबह इन लोगोंमें शामिल होनेके लिए आस-पासके गावोंमें सन्देश भेजे गये थे। दूसरे दिन पीर कमाल शाहके कहनेके मुताबिक गुस्सेसे भरे हुए कोई दो हजार मुसलमान टाऊनहालकी तरफ रवाना हुए। डिप्टी कमिश्नरने उनसे प्रार्थना की कि उनमेंसे कुछ थोड़े लोग आकर उनसे मिलें। लेकिन उन्होंने न माना और उन्हें मजबूरन बाहर आकर इतनी बड़ी भीड़का सामना करना पड़ा। उनकी मांगोंको उन्होंने स्वीकार कर लिया और अपनी विजयपर खुश होती हुई भीड़ हटने लगी।

अगले हफ्तेमें हिन्दू लोग डरके मारे घबड़ा गये थे। उन्होंने ६ सितम्बरको एक पत्र लिखकर मुसलमानोंमें फैले हुए जोशकी डिप्टी कमिश्नरको खबर दी थी। लेकिन उनकी हिफाजतके लिए डिप्टी कमिश्नरने कुछ भी तैयारी न की थी। ८ ता० की रातमें जो सभा हुयी थी उसकी उन्हें खबर थी। इसलिए उन्होंने ९ तारीखकी सुबहको अपना भय अधिकारियोंपर प्रकट करके लिए कितने ही तार भेजे और श्री जीवनदासको फिर गिरफ्तार न करनेकी अर्ज की। अधिकारियोंने कुछ भी ध्यान न दिया। टाऊनहालसे वापस आकर भीड़ने क्या किया इसपर बड़ा ही मतभेद है। मुसलमान कहते हैं कि हिन्दुओंने ही पहले गोली चलायी थी उससे एक मुसलमान लड़का मर गया और दूसरेको चोट लगी। उससे उस भीड़का गुस्सा भड़क उठा और उसका नतीजा यह हुआ कि उस रोज लूट, घरोंका जलाना इत्यादि ज्यादतियाँ हुई। हिन्दुओंका कहना है कि मुसलमानोंने ही पहले गोली चलायी थीं और हिन्दुओंने बादको आत्म रक्षाके लिए गोलियाँ चलायीं थीं। वे कहते हैं कि यह लूटना, आग लगाना आदि कार्य पहले ही से निश्चित और नियंत्रित था और उसी प्रकार पहलेसे ही निश्चित किये हुए इशारे पानेपर ही सब काम किया गया था।

इसका कोई ठीक प्रमाण नहीं मिलता। इसलिये मैं कोई निश्चित निर्णय नहीं दे सकता हूँ। मुसलमानोंका कहना है कि यदि हिन्दुओंने पहले गोली न चलाई होती तो कुछ भी नुकसान नहीं होता। मैं इसे नहीं मान सकता। मेरा ख्याल तो यह है

कि हिन्दुओंने अगर गोली चलाई होती या न भी चलाई होती तो भी कुछ नुकसान तो होना जरूरी था। किसीने पहले गोली क्यों न चलाई हो, मैं यह निश्चय मानता हूँ कि हिन्दुओंने गोली छोड़ी उसके पहले ही सरदार माखनसिंहजीका बाग भीड़के लोगोंने उजाड़ दिया था और मकानमें आग लगा दी थी। इसमें कोई शक नहीं कि हिन्दुओंने कुछ मौकों पर गोलियाँ जरूर चलाई थी उनसे कुछ मुसलमान मारे गये और कुछ ज्यादह जख्मी हुए थे। मेरा ख्याल यह है कि अपनी विजयपर इतराती हुई जब वह भीड़ चारों तरफ बिखरने लगी तब जाते-जाते उसने हिन्दुओंके घरों और दुकानोंके सामने उत्पात जरूर किये होंगे। जैसा कि मैं उपर कह गया हूँ हिन्दू घबड़ा ही रहे थे अगर उन्हें हरदम आफत आनेका डर लगा हुआ था। इसलिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं यदि वे उनके उपद्रवोंको देखकर काँप उठे हों और उनमेंसे किसीने गोली चलाकर उन्हें भगा देना चाहा हो। लेकिन मुसलमानोंका गुस्सा तो इससे जरूर ही बढ़ता क्योंकि उन्हें हिन्दुओंकी तरफसे होने वाले मुकाबलेको देखनेकी आदत ही न थी। पीर साहब कहते हैं कि सीमा प्रान्तके मुसलमान अपनेको 'नायक' (रक्षक) और हिन्दुओंको 'हमसाया' (रक्षित) मानते हैं। इसलिये हिन्दुओंने जितना अधिक दृढ़ होकर मुकाबिला किया उतना ही उस भीड़का क्रोध अधिक बढ़ता गया।

इसलिये इस घटनाका कौन कितना जिम्मेवार है उसका निर्णय करते समय मेरी दृष्टिमें पहले गोली किसने चलाई इस प्रश्नका कुछ अधिक महत्व नहीं है। बेशक यदि हिन्दुओंने आत्मरक्षाके लिये भी उनका सामना न किया होता अथवा उन्होंने पहले गोली न चलाई होती—यदि चलाई हो तो—तो मुसलमानोंका उपद्रव जल्दी ही शान्त हो गया होता। लेकिन जिनके पास हथियार थे और जो उनका थोड़ा बहुत उपयोग करना भी जानते थे उन हिन्दुओंसे यह आशा नहीं रक्खी जा सकती थी। मुसलमान गवाहोंको ९तारीखको मारे गये या जख्मी हुए हिन्दुओंकी संख्याके संबंधमें शंका है। लेकिन मैं यह निश्चय मानता हूँ कि उस रोज मुसलमानोंके हाथ बहुतसे हिन्दू मारे गये या जख्मी हुए थे। हताहतोंकी कुल संख्या देना मुश्किल है। मुझे यहाँ इसके लिखनेमें बड़ी खुशी होती है कि कुछ मुसलमानोंने हिन्दुओंके दोस्त बनकर उन्हें आश्रय दिया था।

यह तो आमतौरपर स्वीकार कर लिया गया है कि ता० १० सितम्बरको मुसलमानोंके क्रोधकी कुछ सीमा न थी। बेशक हिन्दुओंके हाथसे मारे गये मुसलमानोंकी मृत्युके समाचार बहुत बढ़ाकर फैलाये गये थे और आसपासके गावोंमें रहने वाले देहाती मुसलमान दिवालोंमें छेद करके या दूसरे रास्तोंसे शहरमें दाखिल हुए। सारे शहरमें कत्ल और लूट शुरु होगई। सरहदकी पुलिस भी इसमें शामिल हुई और अधिकारी लोग जो इसे रोक सकते थे, देखते हो खड़े रहे। यदि हिन्दुओंको उनकी जगहोंसे हटाया न जाता या छावनीमें उन्हें न पहुँचा दिया जाता

तो शायद ही उनमेंसे कोई बच पाता। इस बातपर बड़ा जोर दिया जाता है कि मुसलमानोंका भी नुकसान हुआ है और देहाती मुसलमानोंने जब एक मरतबा लूटना शुरु किया तो फिर वे यह नहीं देखते कि यह हिन्दू है या मुसलमान। हालांकि यह बात सच है, फिर भी मैं यह नहीं मानता कि हिन्दुओंके बराबर प्रमाणमें मुसलमानोंको कुछ भी नुकसान न पहुंचा हो। मुझे मानपूर्वक यह भी कह देना चाहिये कि खिलाफतके कुछ स्वयंसेवकोंने जिनका कर्तव्य ऐसे समयमें हिन्दुओंको अपना भाई मानकर उनकी रक्षा करना था, अपना फर्ज अदा नहीं किया। वे सिर्फ लूटमें ही शामिल न हुए बल्कि उभाड़नेके लिये की गई कोशिशमें भी शामिल थे।

लेकिन सबसे ज्यादह बुरी बात तो कहना बाकी ही है। झगड़ेके दिनोंमें मन्दिरोंको भी जिनमें एक गुरुद्वारा भी शामिल था नुकसान पहुँचाया गया और मूर्तियां तोड़ दी गई थीं। बहुतसे जबरदस्ती धर्मान्तर किये गये थे या कहने भरको ही धर्मान्तर किये गये थे अर्थात् अपनी जान बचानेके लिये कुछ लोगोंने धर्मान्तर किया था। दो हिन्दुओंको सिर्फ इसलिये बुरी तरहसे कत्ल किया गया था, क्योंकि वे (एक निश्चय ही, दूसरा अनुमानसे) इस्मालको स्वीकार करना नहीं चाहते थे। ऐसे धर्मान्तरका एक मुसलमान गवाह इस प्रकार वर्णन करता है—हिन्दू-मुसलमानोंके बापू आये और उन्होंने अपनी शिखा काट लेने और जनेऊ तोड़ देनेके लिये उनसे कहा, अथवा जिन मुसलमानोंके पास वे आश्रय पानेके लिये गये उन्होंने उनसे कहा यदि तुम अपनेको मुसलमान जाहिर करो और हिन्दूधर्मके चिन्ह निकाल फेंक दो तो तुम्हारी रक्षा हो सकती है।" यदि हिन्दुओंके कहने पर विश्वास किया जाय तो सत्य तो इससे भी भयंकर है। इस मुसलमान मित्रको न्याय करनेके लिये मुझे यहाँ यह कह देना चाहिये कि वे ऐसे धर्मान्तरके कार्यका सही होना स्वीकार ही नहीं करते हैं। इसके सौम्य रुपमें भी यदि इसका विचार किया जाय तो यह हिन्दू-मुसलमान दोनोंको नीचा दिखाने वाला काम है। मुसलमानोंने यदि उन नामर्द हिन्दुओंको हिम्मत दी होती और हिन्दू रहने पर भी और हिन्दू धर्मके चिन्ह पास रखने पर भी उनकी रक्षा की होती तो मैं उनकी बड़ी तारीफ करता। हिन्दुओंने भी यदि सिर्फ जिन्दा रहनेके लिये बाह्याचारमें भी अपने धर्मको इन्कार करनेके बजाय मर जाना अधिक पसन्द किया होता तो भविष्यकी प्रजा, सिर्फ हिन्दू ही नहीं सारी मानव-जाति, उन्हें वीर और शहीद समझकर उनका आदर करती।

मुझे अब सरकारके बारेमें भी कुछ लिखना चाहिये। मुझे कहना चाहिये कि स्थानिक अधिकारियोंने अपने कर्तव्यके प्रति हृदय-हीन उदासीनता, अयोग्यता और कमजोरी दिखाई है।

उस अपमानजनक कविताके निकाल देनेके बाद पत्रिकाका जलाना भूल थी।

श्री जीवनदासको पकड़ना ठीक था लेकिन उन्हें ११ तारीखके पहले छोड़ देना एक भूल हुई। छोड़नेके बाद उन्होंने फिर पकड़ना एक जुर्म था।

८ सितम्बरको दी हुई और फिर ९ सितम्बरको पहुँचाई गई हिन्दुओंकी इस चेतावनी पर कि उनके जानोमाल खतरेमें हैं उसका ध्यान न जुर्म था।

आखिर जब दंगा हुआ उस समय उनकी रक्षा न करना भी जुर्म था।

आश्रितोंको वहाँसे हटानेके बाद उन्हें खाना न देना और उन्हें रावलपिन्डी पहुँचानेके बाद उनको उन्हींके साधनोंके भरोसे छोड़ देना एक अमानुस कार्य था।

भारत सरकारने इस मामलेकी और इससे संबंध रखने वाले अधिकारियोंकी जाँच करनेके लिये एक निष्पक्ष कमीशन नियुक्त नहीं किया। इसमें उसने अपने कर्तव्यके प्रति बड़ी लापरवाही दिखाई।

अब रही भविष्यकी बात। मुझे अफसोस है कि वह अधिक अच्छा नहीं दिखाई देता। बड़े ही दुःखकी बात है कि मुस्लिम कार्यवाहक समितिने हमारी जाँचके समय अपना प्रतिनिधि नहीं भेजा। जिस साधनका जिक्र किया गया है वह साधनका दोनोंके खिलाफ मुकदमें चलानेकी धमकी देकर दिया गया। यह समझ नहीं आता कि ऐसी बलवती सरकार ऐसी सुलहमें कैसे शामिल हुई। यदि देहाती मुसलमान फिर दंगा मचावेंगे इस डरसे सरकार मुकदमें चलाना नहीं चाहती थी तो उसे यह बात साफ-साफ कह देनी चाहिये थी और फिर मुकदमे उठा लेने थे। और बादको दोनों कौमोंमें बाइज्जत सुलह मैत्री करानेका उसे प्रयत्न करना चाहिये था।

यह सुलहके मूलमें ही दोष है। क्योंकि इससे खोया हुआ और नष्टप्राय माल वापस दिलानेका कोई यकीन नहीं दिलाया गया है। इसलिए वह भी बुरी है। क्योंकि श्री जीवनदास पर जो इसके व्यर्थ ही शिकार हो रहे हैं अब भी मुकदमा चलाया जानेवाला है।

इसलिए यदि सचमुच दिलोंकी सफाई करना है और सच्ची सुलह करनी है तो यह आवश्यक है कि मुसलमान हिन्दू-आश्रितोंको निमन्त्रण दें और उन्हें उनकी हिफाजतके लिए यकीन दिलावें और उनके मन्दिर और गुरुद्वारोंको फिरसे बनानेमें मदद करनेका वचन दें।

लेकिन सबसे महत्वकी जमानत तो उन्हें इस बातकी देनी होगी कि जबरदस्ती किसीका भी धर्मान्तर नहीं किया जावेगा और दोनों कौमें ऐसे धर्मान्तरोंको कबूल भी न रक्खेगी। सिर्फ वही धर्मान्तर कबूल रक्खा जायगा जिसके साक्षी दोनों कौमके अगुआ रहेंगे और जिसका धर्मान्तर हो रहा हो वह यह समझता हो कि वह क्या कर रहा है। मैं स्वयं तो यही पसन्द करूँगा कि धर्मान्तर और शुद्धि सब बन्द कर दिए जांय। किसी भी व्यक्तिके धर्मका संबंध स्वयं उसीके साथ होता है। बालिग उमरके स्त्री या पुरुष जब या जितनी दफा चाहें अपना धर्म बदल सकते हैं। यदि मेरा बस चलता तो मैं सिवा इसके कि मनुष्य अपने चरित्रसे दूसरेपर असर डाले और सब प्रकारके प्रचार कार्य बन्द करा देता। धर्मान्तरका सम्बन्ध हृदय और विवेक बुद्धिके साथ है। और चरित्र ही से उसपर असर डाला जा सकता है।

सीमा प्रान्तपर किसी सच्चे धर्मान्तरके होनेका ख्याल भी मैं नहीं कर सकता हूँ। हिन्दू लोग सिर्फ व्यापारकी गरजसे वहाँ रहते हैं, संख्यामें बहुत ही अल्प हैं और हथियार चलानेकी वैसी शिक्षा भी उन्हें प्राप्त नहीं है। फिर भी वे ऐसे बहु-संख्यक लोगोंके साथ रहते हैं जो शारीरिक शक्ति और हथियार चलानेमें उनसे कहीं बढ़कर हैं। ऐसी परिस्थितिमें दुर्बल हृदयके मनुष्यको सांसारिक लाभके लिए भी इस्लामको अंगीकार करनेका मोह अनिवार्य होता है।

ऐसी जमानत उनकी तरफसे मिले या न मिले, हृदयका सच्चा परिवर्तन संभव हो न हो, मुझे तो जो रास्ता लेना चाहिए, वह स्पष्ट ही दिखायी देता है। जबतक यह परदेशी सत्ता कायम रहेगी, उसके साथ कहीं न कहीं संबंध रखना भी अनि-वार्य होगा। लेकिन जहाँ मुमकिन हो वहाँ हमें सब प्रकारका ऐच्छिक संबंध त्याग-कर देना चाहिए, यही एक रास्ता है जिससे कि हम लोग स्वतंत्रताका अनुभव कर सकते हैं तथा उसका विकास कर सकते हैं। जब एक बहुत बड़ी संख्यामें लोग स्वतन्त्रताका अनुभव करने लगेंगे हम स्वराज्यके लिए तैयार हो जायगे। स्वराज्यकी परिभाषाके अनुकूल ही हम ऐसे सवालोंका जवाब दे सकेंगे। इसलिए मैं भविष्यके राष्ट्रीय लाभके वेदीपर व्यक्तिगत लाभोंका बलिदान देना चाहता हूँ। यदि मुसलमान हिन्दुओंके पास मित्र भावसे जानेके लिए इन्कार करें और कोहाटके हिन्दुओंको सब कुछ खोकर नुकसान उठाना पड़े तो भी मैं यही कहूँगा कि जबतक उनमें और मुसलमानोंमें पूरी-पूरी तरह सुलह न हो जाय और जबतक वे यह मह-सूस न करें कि वे उनके साथ ब्रिटिश सरकारकी बन्दूकोंके बिना ही शान्तिके साथ रह सकेंगे, तबतक उन्हें कोहाट लौटनेका विचार भी न करना चाहिए। लेकिन मैं यह जानता हूँ कि यह तो आदर्शकी बात हुई और इसलिए यह संभव नहीं कि वे उसके अनुसार चल सकें। फिर भी मैं दूसरी सलाह नहीं दे सकता मैं तो सिर्फ यही एक व्यवहारिक सलाह दे सकता हूँ। यदि वे इसकी कदर नहीं कर सकते तो उन्हें अपने ही ख्यालके अनुसार काम करना चाहिए। वे ही अपनी शक्तिका अच्छी तरह नाप निकाल सकेंगे। वे देश भक्त या देश सेवककी हैसियतसे तो कोहाट गये न थे और न वे अब देश सेवककी हैसियतसे वहाँ वापस लौटना चाहते हैं। वे तो अपने मालका कब्जा लेनेके लिए ही वहाँ जाना चाहते हैं। इसलिए वे वही काम करें जो उन्हें लाभदायी और कारआमद मालूम हो। उन्हें सिर्फ दो बातें एक साथ नहीं करनी चाहिए अर्थात् मेरी सलाहपर अमल करना और साथ ही साथ सरकारकी सुलहकी शर्तोंके लिए लिखा-पढ़ी भी करना। मैं जानता हूँ कि वे असह-योगी नहीं हैं। उन्होंने ब्रिटिशोंकी मददपर हमेशा भरोसा रक्खा है। मैं तो उन्हें परिणामपर ध्यान देनेको कहता हूँ। और अपना रास्ता पसन्द करनेका भार उन्हीं-पर छोड़ देता हूँ।

मुसलमानोंके लिए भी मेरी सलाह तो वैसी ही सरल है। जबरदस्ती किये गये या ऐसे ही नाम मात्रसे धर्मान्तर होनेसे हिन्दुओंको उद्वेग हो और कुछ व्यक्ति अपनी

खोयी हुई स्त्रियोंको वापस लानेका प्रयत्न करें तो उनमें मुसलमानके नाराज होनेकी कोई बात नहीं है ।

मैं यह जानता हूं कि सरदार माखनसिंहका पुत्र अदालतसे स्त्री-हरणके दोपसे निर्दोप होकर छूट गया, फिर भी बहुतसे मुसलमान उसे निर्दोष नहीं मानते हैं । लेकिन यह मान भी लें कि उसने यह कसूर किया था तो भी उसके, एकके दोपके कारण सारी जातिपर उसका ऐसा भयंकर बैर लेना उचित नहीं है ।

उस पत्रिकाको जिसमें अपमान करनेवाली कविता छपी थी मंगाना और खासकर कोहाट जैसी जगहमें उसे मंगाना दर असल बुरा था । परन्तु सनातन धर्म सभाने बहुतेरी मांफी मांगकर उसका प्रायश्चित कर लिया था । लेकिन मुसलमानोंको उससे सन्तोप न हुआ और उन्होंने उस पत्रिकाको श्रीकृष्णकी तस्वीरके साथ ही जला देनेपर सभाको मजबूर किया । उसके बाद जो कुछ भी उन्होंने किया वह सब आवश्यकतासे बहुत ही अधिक था । मैं यह निश्चित रूपसे नहीं कह सकता कि पहले गोली किसने चलायी थी । लेकिन यदि यह मान भी लें कि हिन्दुओंने ही पहले गोली चलायी थी तो उन्होंने डरकर, घबड़ाकर आत्म-रक्षाके निमित्त ही गोली चलायी थी । इसलिए उसे उचित नहीं कह सकते थे तो यह क्षम्य तो अवश्य ही था । इसलिए जितनी भी ज्यादतियाँ की गयीं थीं सब अनुचित और अनावश्यक थी ऐसी हालतमें मुसलमानोंका स्पष्ट कर्त्तव्य है कि वे जिस कदर बन पड़े हिन्दुओंको इस नुकसानकी भरपायी कर दें । इसकी कोई वजह दिखायी नहीं देती कि वे हिन्दुओंके खिलाफ सरकारकी मदद और हिफाजतपर भरोसा रखकर रहें । यदि हिन्दू चाहें भी तो उन्हें कुछ नुकसान नहीं पहुंचा सकते । लेकिन यहाँ फिर मेरी बात निर्मूल हो जाती है । मुझे अबतक कोहाटके उन मुसलमानोंसे परिचय करनेका भी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है जो मुसलमान जनताके सलाहकार हैं । इसलिए इस बातको तो वे ही अच्छी तरह जान सकेंगे कि मुसलमानोंके लिए और हिन्दुस्तानके लिए लाभदायी क्या होगा ।

यदि दोनों पक्ष सरकारकी दरम्यानगी चाहते हैं तो मेरी सेवा बिल्कुल ही बेकार होगी । क्योंकि मुझे ऐसी दरम्यानगीकी आवश्यकतामें विश्वास ही नहीं है । और सरकारके साथ समाधानीके लिए जो बातचीत की जायगी उसमें मैं किसी भी प्रकारसे भाग न ले सकूंगा । यह सच है कि मुसलमानोंसे सभ्य व्यवहार पाने और मांगनेका हिन्दुओंका हक है । लेकिन दोनों कौमोंको मिलकर सरकारसे अपनी रक्षा करनी चाहिए । क्योंकि एक कौमको दूसरीके खिलाफ कर देना ही उसकी नीति है । सीमाप्रान्तकी हुकूमत खुद मुख्तयार है । अधिकारीकी इच्छा ही वहाँ कानून है । इस हालतमें दोनों कौमोंको हाथसे हाथ मिलाकर राजकाजमें प्रतिनिधित्व प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करना चाहिए । लेकिन जबतक दोनों कौम एक दूसरेका विश्वास न करें और ऐसा प्रतिनिधित्व प्राप्त करनेकी आकांक्षा कौममें व्याप्त न हो जायगी तबतक यह होना सम्भव नहीं है ।

हिन्दी-नवजीवन
२६ मार्च, १९२५

मौलाना शौकतअलीका वक्तव्य

कोहाटके कम नसीब मामलेके बारेमें जब मैंने पहले-पहल सुना तबसे देहलीमें एक्य परिषद् हुई और महात्माजीने २१ दिनका उपवास किया। उस दरम्यान और रावलपिण्डीमें हिन्दू-मुसलमान दोनोंके साथ जो आखिर दिन बिताया तबसे इन मामलोंपर मैं बराबर दिलसे गौर करता चला आया हूँ। इस हालतमें जितनी भी जाँच बन पड़ी है मैंने की है। और उसपरसे मैंने कुछ राय भी कायम की है। यद्यपि मेरी राय सामान्य तौरपर महात्माजीकी रायसे मिलती जुलती है फिर भी कुछ अंशोंमें वह उनकी रायके खिलाफ हैं, और क्योंकि कुछ बातोंपर मैंने बड़ा जोर दिया है, यही बेहतर है कि मैं अपनी रिपोर्ट अलग पेश करूँ। यह दिखानेके लिए कि मैंने अपनी यह राय कैसे कायम की है छोटी-छोटी बातोंके जिक्र करनेकी और लम्बा चौड़ा बयान पेश करनेकी कोई जरूरत नहीं दिखायी देती है।

यह तो सब कोई जानता है कि जहाँ कहीं हिन्दू-मुसलमान आपसमें लड़े हैं या लड़ रहे हैं वहाँ जानेके लिए मैंने हमेशा इन्कार किया है। मेरी रायमें ऐसी जगहोंमें रहनेवाले हिन्दू-मुसलमानोंने बाहरके हिन्दू-मुसलमान जो आपसमें भ्रातृ-भावसे एक दूसरेके साथ अमनसे रहना चाहते हैं उनकी मदद और सहयोग प्राप्त करनेका सारा हक गुमा दिया है। हर एक पक्ष इत्तफाक करना तो नहीं चाहता लेकिन अपने-अपने मददगारोंको ही ढूँढ़ता फिरता है। दंगे करनेवाले दोनों दलके गुण्डे दूसरोंको भी अपना सा बनाना चाहते हैं।

एक घटनाके हो जानेपर फिर उसकी कितनी भी जाँच क्यों न हो उसका नतीजा कुछ भी नहीं होता। बड़ी होशियारीके साथ वे अपना मामला पेश करते हैं और हमारी दखल कुछ काम नहीं आती प्रत्येक दल अपने विपक्षियोंका ही दोष निकालता है और उसके खिलाफ यदि इन्साफ किया जायगा तो वह कबूल नहीं करता। बहुतसे मामलेमें तो दोनों पक्षोंका ही दोष होता है और किसका और कैसा दोष है यह दिखाना यद्यपि मुश्किल है—करीब-करीब असम्भव है—फिर भी यदि ऐसा प्रयत्न किया जाय तो उससे कुछ फायदा नहीं होता। सच पूछो तो इससे गड़े मुरदे फिर फिर उखाड़े जाते हैं और अखबार और व्याख्यानोंके जरिये वे फिर बार-बार लड़ा करते हैं।

यह कोहाटके मामलेने—सिर्फ इसीमें मैंने भाग लिया है मुझे यह स्पष्ट औरसे साबित कर दिखाया है कि मेरा यह ख्याल सही था। शुरूमें निष्पक्ष हिन्दू और और मुसलमान मित्रोंके जरिये मैंने जो कुछ सुना था उससे मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि अखबार वालोंके एक विभागने इस मामलेको जितना एक तरफा बना दिया है उतना ही एकतरफा यह नहीं है। कोहाटमें जो लोग उस समय मौजूद थे उनसे

अधिक परिचय होनेके बाद और उसके मुतल्लिक अधिक बातें जाननेके बाद मेरी यह राय यह और भी पुख्ता दृढ़ हो गई है। मैं दूसरी जगहोंके बारेमें कुछ नहीं कह सकता लेकिन कोहाटमें तो यदि मुसलमान बहुत सी बातोंके लिये जिम्मेवार हैं तो हिन्दुओंको भी तो बहुतसी बातोंके लिये जवाब देना होगा। नीचे लिखे बातोंपर ध्यान देना जरूरी है—

(अ) पंजाब और संयुक्त प्रान्तमें कौम-कौमके बीच जो द्वेष और कटुता फैली हुई है उनका कोहाटपर भी असर पड़ा था। और वहाँ रहनेवाले हिन्दू-मुसलमानोंका आपसमें पहले जैसा अच्छा रिश्ता न रहा था। सब बातोंको सुनने पर यह बात तो सच साबित होती है कि वहाँ भी हिन्दू-मुसलमान दोनों असंयत होकर आपसमें गाली-गलौज कर रहे थे।

(ब) सीमा प्रान्तके जाहिल और कम शिक्षा पाये हुए खानोंको अपनी इज्जत और मरतबेका बड़ा ख्याल रहता है। और वे अपनी मूर्खता और गलतियोंके कारण बरबाद हो गये हैं। फिर भी ऊपर-ऊपर वे बड़ा ठाट दिखाते हैं। आज हिन्दुओंका अब वहाँ उनकी मितव्ययिता और व्यापार-कुशलताके कारण खासा वजन पड़ता है। उन्होंने ठीक-ठीक धन इकट्ठा कर लिया है और कभी-कभी वे अपनी श्रीमन्ताईकी अकड़ भी दिखाते हैं। दोनों कौमोंका वह पुराना रिश्ता अब बदल रहा था और अधिकारीगण यद्यपि हिन्दुओंकी ताकत बढ़ने देना नहीं चाहते थे फिर भी मुसलमानोंको कमजोर बनानेके लिये वे इस स्थितिका लाभ उठा रहे थे। उस प्रान्तमें सरकारको मुसलमानोंसे ही खतरा था हिन्दूसे नहीं। कोहाटमें अकेले मुसलमानोंने ही तर्के-मवालात (असहयोग) शुरू किया था और उन्हींको उसके लिए कष्ट सहन भी करना पड़ा था। इसलिए इस प्रान्तके लिए तो सरकारके अधिकारी लोग ही अधिक खतरनाक हैं और हिन्दू-मुसलमानोंको इनसे अपनी रक्षा करनी चाहिये।

(क) जब इस प्रकार दोनों कौममें एक दूसरेके प्रति द्वेष भाव फैला हुआ था उस समय वह पत्रिका कोहाटमें आयी जिसकी एक कवितामें काबा और पाक पैगम्बरकी बेइज्जती की गई थी। यह पत्रिका कोहाट सनातन धर्म सभाके मंत्री जीवन दासके लिए खास छापी गई थी। यह कहना न होगा कि कोहाटके मुसलमान तो क्या, किसी जगहके मुसलमानोंपर उसका कैसा खतरनाक असर हो सकता है। "इण्डियन डेली न्यूज" के एक लेखपर कलकत्ताके और सारे भारतके मुसलमान गुस्सासे जल उठे थे। वह उसके पेरिसके एक संवाददाताका पत्र था। उसमें उसने लिखा था 'अफ्रिकाके अरब जिन्हें लड़ाईके वक्त गटर साफ करनेका काम सौंपा गया था वे मैलेको उतनी ही प्यार और इज्जतकी दृष्टिसे देखते थे जितनी कि इज्जतके साथ वे पैगम्बर साहबकी कब्रको देखते हैं।' इसपर मुसलमानोंने आग बबूला होकर सारे हिन्दुस्तानका विरोध जाहिर करनेके लिये कलकत्तेमें एक सभा की। सरकारने यह सभा रोक दी और जुलूस बनाकर आनेवाले मुसलमानोंपर गोलियाँ चलाईं जिससे

बहुतसे मुसलमान मारे गए और बहुतसे जख्मी हुए। उस समय मुसलमानोंके दिलमें क्या हो रहा था उसका मैं खूब अन्दाज लगा सकता हूँ। ऐसे लेख छिपाये नहीं छिपते। इसलिए इसमें मैं मौलवी अहमदगुलका दोष नहीं निकाल सकता।

(ख) हिन्दुओंका पक्ष पूरा है और उन्होंने बड़ी होशियारीसे उसे तैयार किया है। कोहाटमें बहुतसे अच्छी शिक्षा पाये हिन्दू हैं उनमें कुछ बैरिस्टर और वकील भी हैं। इसके अलावा हिन्दू जातिके दूसरे भी समर्थ और प्रसिद्ध हिन्दुओंकी मदद उन्हें मिलती है। लेकिन मुसलमानोंका पक्ष हमें पूरा नहीं मालूम हुआ। वे दो हिस्सेमें बटे हुए हैं। पहले वे दोनों असहयोगी थे। लेकिन अब वे एक दूसरेके अलग-अलग विरोधी हो गए हैं। उनका एक होना संभव नहीं था और उन्हें बाहरके मुसलमानोंकी सलाह और मदद नहीं मिली थी। मेरे बुलानेपर ये लोग आये इसलिए मैं उनका शुक्रगुजार हूँ। दूसरे सरकारी मण्डलकी तरह जिसे मुसलमानोंकी प्रतिनिधि कार्यवाहक समिति कहते हैं वे भी इन्कार कर सकते थे। लेकिन वे आये और अपनी गवाही दी। सैयद पीर जेलानी और मौलवी अहमदके गवाहीमें वास्तविक फर्क कुछ ज्यादह न था। उन दोनोंने इस बातको इन्कार किया कि ता० ९ सितम्बरको हिन्दुओंके खिलाफ जेहाद शुरू करनेकी या सामान्य तौरपर उनपर हमला करनेकी कोई तैयारी की गई थी। श्री जीवनदासके यकायक छोड़ देने पर—जिसका किसीको भी ख्याल न था—मुसलमानोंने ता० ८की रातको डिप्टी कमिश्नरके पास जानेका निश्चय किया। डिप्टी कमिश्नरकी दोमुखी नीतिपर उन्हें निश्चय ही बड़ा क्रोध हुआ था। मुसलमानोंसे एक बात कहते थे तो हिन्दुओंसे दूसरी ही बात कहते थे।

(ग) हिन्दुओंको सैयद पीर जेलानीसे कोई शिकायत न थी। वे खिलाफत समितिके मंत्री मौलवी अहमद गुलका दोष निकालते थे। दोनों तरफके बयानसे यह साबित होता है कि २५ अगस्त १९२४ तक उनका व्यवहार अच्छा था। उस पत्रिकाका मामला हो जानेके बाद वे अपनेको संभाल न सके और सरकारकी तरफ चले गये। मौजूदा बिगड़ी हुई हालतमें जातिगत द्वेषके कारण बहुतसे पुराने और कसे हुये हिन्दू-मुसलमान कार्यकर्त्ता भी तो पंजाब और दूसरे प्रान्तोंमें अपनेको संभाल न सके हैं। मौलाना अहमद गुल भी सामान्य मुस्लिम जनताकी सार्वजनिक रायके सामने टिक न सके। वे टल गये और हिन्दू-मुसलमान इत्तफाकमें उन्हें कुछ भी यकीन न रहा। यदि वे चाहते तो वे या दूसरा कोई हिम्मतवर नेता इस झगड़ेको रोक सकता था लेकिन उस समय ऐसा कोई शख्स न मिला। दीवान अनन्तरायने हम लोगोंसे कहा कि वे बड़े बीमार थे और इसलिये कुछ काम न आ सके वरना यह कमनसीब घटना होने ही नहीं पाती। हिन्दुस्तानके दूसरे हिस्सोंका मुझे जो ज्ञान है उसपरसे मैं मौलवी अहमदगुल जैसी स्थितिके आदमीसे कुछ ज्यादह उम्मीद नहीं रख सकता था। फिर भी वे जनताको अपने हाथमें नहीं रख सकते थे तो उन्हें स्वयं

अलग रहना चाहिये था। लेकिन इसके साथ ही उनके बारेमें हिन्दुओंने जो कुछ भी कहा है उन सबको मैं स्वीकार भी नहीं कर सकता हूँ।

हमें हमारे ही ख्यालके मुताबिक कोहाटके मामलेपर विचार नहीं करना चाहिए। वह अन्याय होगा। वहाँकी हालत वैसी नहीं जैसी कि हमारी है। खाली माफी मांग लेनेपर हम लोगोंको सन्तोष हो सकता था, फिर पुस्तकं जलानेकी कोई जरूरत नहीं थी। लेकिन कोहाटके मुसलमानोंको उनकी तहरीरी माफीसे और पत्रिका जलानेसे भी संतोष नहीं हुआ। कोहाटमें दोनों कौमोंमें सुलह करानेवाला एक-एक आदमी भी होता, तो सब बात मित्रभावसे शान्तिके साथ तय हो जाती। पेशावरके खिलाफतके शिष्ट-मण्डलने, जिसके श्री हाजी जानमहम्मद, अमीरचन्द्र बम्वाल, सैयद लालबादशाह और अली गुल सदस्य थे, सुलह करानेके लिए भरसक कोशिश की लेकिन नतीजा कुछ भी न हुआ।

मैं हिन्दुओंकी इस कल्पनापर विश्वास नहीं रखता कि ९ सितम्बरका दिन जेहादके लिए मुकर्रर किया गया था और उसके लिए पहले ही से निमंत्रण भेजे गये थे। सीमा प्रान्तके देहाती पठान लड़ना जानते हैं लेकिन वे व्यर्थ ही अपनी जान गवाँ देनेके लिए उत्सुक नहीं रहते। यदि दर असल वे हिन्दुओंको कत्ल करना चाहते थे तो दिनका प्रकाश उनके अनुकूल था और उनके विरोधियोंको मुकर्रर तारीख भी मालूम नहीं हो सकती थी। उस समय उन्होंने यकायक हमला करनेका प्रबन्ध किया होता। अलावा इसके ९ सितम्बर अर्थात् पहले दिनकी लड़ाई दोनों तरफसे करीब-करीब बराबर ही रही थी। दोनों तरफके बयानमें यही मालूम होता है कि यदि ज्यादह नहीं तो कितने हिन्दू मारे गये और जख्मी हुए थे। मैं मुसलमानोंकी इस कल्पनापर भी, जो देहलीमें मेरे सामने रखी गई थी, विश्वास नहीं रख सकता था कि हिन्दू मुसलमानोंको सबक सिखानेके लिए उनपर हमला करनेकी तैयारी कर रहे थे। यह कहा जाता था कि हथियारोंसे सजकर और आड़में रहकर यदि वे लड़ेंगे तो एक ही अकस्मात किये गए हमलेसे यह दिखा देंगे कि वे मुसलमानोंसे शक्तिमें कहीं अधिक हैं। फिर जब पुलिस और फौज आ जायगी, मामलेका निपटारा करनेके लिए उसे कानूनकी अदालतपर छोड़ दिया जायगा। कोहाटके मुसलमानोंने तो यह स्पष्ट कह दिया है कि ऐसा होना गैरमुमकिन है।

मेरी रायमें ९ तारीखको जो लड़ाई हुई और गोली चली वह अकस्मात ही हुई थी। इसके लिए पहलेसे तैयारी नहीं की गई थी। तारीख ८ सितम्बरको जीवन दासको अचानक छोड़ देने पर हिन्दुओंके गर्मभिजाज लोगोंको बड़ी खुशी हुई होगी और उन्होंने अपनी मुस्लिमोंपर विजय जतानेके लिए खुले तौरपर वह खुशी जाहिर की होगी। लेकिन दूसरे ही दिन डिप्टी कमिश्नरने जब मुसलमानोंकी सरगर्मी देखी उन्हें जीवनदासके छोड़ देनेपर जो भूल हुई थी वह मालूम हुई और जीवनदास और दूसरे सनातन-धर्म-सभाके सदस्योंको पकड़नेके लिए उन्होंने

हुक्म जारी किया। तब मुसलमानोंकी अपने विजयपर खुशी जाहिर करनेकी बारी आई और उसपर लड़ाई छिड़ गई।

(घ) पहले गोली किसने चलाई? मुसलमान कहते हैं कि बाजारमें सरदार माखन सिंहके मकानके पास एक मुसलमान लड़का और एक दूसरा आदमी मरा पाया गया था। हिन्दू कहते हैं कि पहले 'पराचाओंके तीन फेरा' पहलेसे ही निश्चित किया हुआ हमला करनेके लिए मुसलमानोंको इशारा था। मैं इस आखिरी बातको नहीं मानता क्योंकि वह हिन्दुओंकी एक कल्पना मात्र है और उसका एक भी प्रमाण मुझे नहीं मिला।

ता० ८ सितम्बरकी रातको मुसलमानोंने एक बड़ी और गुस्सेसे भरी हुई सभामें निश्चय किया था कि वे दूसरे दिन सुबह कमिश्नरके पास अपनी मांग पेश करनेके लिये जाँयगें। लेकिन डिप्टी-कमिश्नरने उनके खिलाफ फैसला किया तो फिर वे यह भी देख लेगें कि वे इस बारेमें दूसरा क्या कर सकते हैं। डिप्टी-कमिश्नरने उनकी मांगको पूरा स्वीकार कर लिया था। सिर्फ जीवनदास ही नहीं बल्कि सनातन-धर्म-सभाके दूसरे सदस्य भी गिरफ्तार किये गये थे। भीड़ने जो मांगा था वह उसे मिल गया था और इसलिये वह बड़ी खुश हो रही थी। उनके ख्यालसे उनके धर्मके मान-इज्जतकी रक्षा हो गई थी। इसलिये अब उन्हें हिन्दुओंको कत्ल करनेका कोई मतलब न था। मेरा तो यही दृढ़ विश्वास है कि ९ तारीखको गोली चलाना, मकान जलाना इत्यादि काम इत्तफाकसे ही हुआ था। वहाँ दारु तो ढेरकी-ढेर लगी हुई थी। उसमें इत्तफाकन बत्ती लग गई और एकदम आग भड़क उठी। न मुसलमानोंका और न हिन्दुओंका ही ऐसा कुछ इरादा था। मुसलमानोंकी तो जीत हुई थी इसलिये स्वाभाविक तौरपर यह इच्छा हो ही नहीं सकती थी।

(च) हिन्दू और मुसलमान दोनोंसे यह सुनकर बड़ी खुशी होती है कि वे इस प्रश्नको फिर उठाना नहीं चाहते, क्योंकि इससे कुछ भी लाभ न होगा। इसीसे दोनों दलोंके लोगोंने यह बार-बार कहा है और मेरा भी ख्याल है कि किसीपर दोष लगाए बिना बाइज्जत और मित्रतायुक्त सुलह अब भी हो सकती है। मुसलमान कहते हैं कि १ सितम्बरको वे यह हरगिज नहीं चाहते थे कि हिन्दू कोहाट छोड़कर चले जाँय और न उन्होंने उन्हें कोहाट छोड़नेके लिये मजबूर ही किया था। पुलिस, सरहदकी पुलिस और तमाम ब्रिटिश अधिकारी वहाँ मौजूद थे और १० ता० की लूट और लड़ाईके वे ही जिम्मेवार थे। यदि वे चाहते तो सब बन्द करा सकते थे लेकिन वे इसे बन्द कराना नहीं चाहते थे। सीमा प्रान्तपर हिन्दू-मुसलमानोंकी यह लड़ाई उनके लिए ईश्वर-प्रेरित लड़ाई थी, ताकि उससे सीमा प्रान्तके मुसलमान और पंजाबके तथा सारे हिन्दुस्तानके हिन्दुओंमें वैमनस्य अधिक बढ़ जाय और वे दुनियाँमें यह एलान कर सकें कि हिन्दू और मुसलमान अब खुले तौरपर लड़ रहे हैं और सुलह शान्तिकी रक्षाके लिए तो ब्रिटिश सरकारके मजबूत हाथोंकी ही जरूरत होगी।

(छ) मुसलमानोंकी यह शिकायत है कि प्रभावशाली हिन्दू नेताओंकी मददसे हिन्दूओंने ब्रिटिश सरकारको उनके साथ कुछ रियायतें करनेके लिए मजबूर किया है। भविष्यमें अब पुलिसमें आधे हिन्दू रहेंगे। मुसलमान स्त्री या पुरुष हिन्दुओंके मुहल्लेमें होकर न जा सकेंगे। कूचाबन्दीकी जायगी। अधिकारियोंमें एक-तिहाई हिन्दू अधिकारी रहेंगे ही। कुछ और रियायतें उन्हें मिली हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि हिन्दुओंकी मददसे सरकार ९७ फी सैकड़ा मुसलमानोंकी बस्तीकी आजादी छीन लेना चाहती है। सैयद पीर कमाल जेलानी और दूसरे तीन शख्सोंको सरकारने ८०,००० रुपयेके मुचल्के मांगे हैं और केवल इसलिए कि पीर साहब और उनके दोस्त कोहाटकी मुस्लिम कार्यवाहक समितिको मुसलमानोंकी प्रतिनिधि समिति नहीं मानते। सीमा प्रान्तके मुसलमानोंकी हालत गुलामसे कुछ ही ज्यादह अच्छी होगी और हिन्दुस्तानके दूसरे विभागोंके समान अधिकार प्राप्त करनेमें उन्हें राष्ट्रीय हिन्दुस्तानकी मदद दरकार है। उन्हें प्रतिनिधित्ववाली और चुनावसे पसन्द किये गए सदस्योंकी संस्थाएँ जैसे धारा सभा, म्यूनिसिपैल्टी, जिला बोर्ड और युनिवरसिटी इत्यादि सब कुछ चाहिए। उनकी शिक्षाके लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं किया जाता है और उनकी जहालत तो दिलको दहलाने वाली है। कोहाटमें, पेशावरमें और तमाम सीमा प्रान्तकी म्यूनिसिपैल्टीमें सरकार-नियुक्त सदस्य होते हैं और ९७फी सैकड़ा मुसलमानोंकी बस्तीको उतना ही प्रतिनिधित्व मिलता है जितना है कि जितना तीन प्रति सैकड़ा हिन्दुओंको मिलता है अर्थात् सरकारकी तरफसे ४० फी सैकड़ा प्रत्येक कौमके सदस्य चुने जाते हैं।

(ज) मेरी रायमें बाइज्जत सुलह करना मुश्किल नहीं है और दोनों कौमें यह चाहती भी हैं। तमाम देशको इन बहादुर लोगोंको स्वतंत्र करनेके लिए अपनी आवाज उठानी चाहिए और जहालताएं और जंगली तौरपर काम करनेके तरीकोंसे, जो उन्हें और सारे देशको नुकसान करनेवाला है, उनकी रक्षाके लिए प्रयत्न करना चाहिए। हिन्दुस्तानके मुसलमानोंका इस बातपर ध्यान न देना दरअसल एक जुर्म है।

दंगेके दिनोंमें जिन लोगोंका कहने भरको ही धर्मान्तर हुआ है उसके सबंन्धमें मेरी स्थिति स्पष्ट है। जबरदस्ती धर्मान्तर करनेके कामको मैं नफरतकी दृष्टिसे देखता हूँ। यह इस्लामके तत्वके खिलाफ है। यदि ऐसे धर्मान्तर हुए हों तो उनकी सब तरहसे निन्दा करनी चाहिए। लेकिन ऐसे धर्मान्तर होनेके संतोषकारक प्रमाण मुझे नहीं मिले हैं। मालूम होता है कि यह हुआ होगा कि कुछ हिन्दू अपनी जान बचानेके लिए अपने मुसलमान मित्रोंके पास गए और उन्होंने अपनी चोटी काट डालनेको और दूसरे हिन्दू बाह्य-चिन्हको निकाल डालनेको कहा होगा। मुसलमान गवाहोंने सही तौरपर हिन्दुओंका धर्मान्तर होना स्वीकार नहीं किया है। बहुतसे मुसलमानोंने अपने हिन्दू पड़ोसीको बचानेके लिए झूठ-मूठ भीड़के लोगोंसे यह भी कह दिया था कि वे मुसलमान हो गये हैं।

ऐसे धर्मान्तरोंको सीमा प्रान्तमें भी धर्मान्तर नहीं माना गया है और वे वास्तविक धर्मान्तर हैं भी नहीं। सैयद पीरकमाल जेलानी और मौलवी अहमद गुल दोनोंने यह कहा था कि धर्मान्तर करनेकी सच्ची इच्छा होनेपर भी जबतक अमनके दिनोंमें और किसी प्रकारका खतरा न हो, उस समय वह फिर दुहरायी न जाय तबतक उसपर विश्वास नहीं किया जा सकता।

बेगुनाह और बेहथियारवाले दो शख्स कत्ल कर दिए गए थे। पीर साहबको जो उनकी खबर मिली उससे यह मालूम होता है कि वे इस्लाम कबूल नहीं करते थे इसलिये उन्हें कत्ल किया गया था। यह बड़े ही दुःखकी बात थी और इस कामको करनेवालोंकी जितनी भी निन्दा की जाय वह थोड़ी है। विवाहित स्त्रियों और दूसरोंके धर्मान्तरके सामान्य प्रश्नके संबंधमें अधिकारी मुसलिम उलेमा और दूसरे नेताओंसे ही निर्णय करा लेना चाहिये। मुझे इसमें अपनी राय देनेकी जरूरत नहीं है। लेकिन इसको तो सब लोग स्वीकार करते हैं कि इस दंगेके दिनोंमें विवाहित या दूसरा किसी भी स्त्रीने जानकर या जबरदस्तीसे इस्लामको अंगीकार नहीं किया है। कोहाटके मुसलमानोंसे, जिनकी संख्या बहुत बड़ी है, मेरा अर्ज है कि वे अपने हिन्दू भाइयोंसे मेल कर लें। हिन्दू-भाइयोंसे भी यही अर्ज करूंगा कि वे भी अपने मुसलमान पड़ोसियोंका साथ दें और उन्हें यह दिखा दें कि वे उन्हें अपना सच्चा पड़ोसी और मित्र मानते हैं।

जैसा कि मैं पहले कह गया हूँ यह एकतरफा मामला न था। मैं हिन्दू और मुसलमान दोनोंका कसूर निकालता हूँ। फिर भी मुसलमान होनेके कारण मैं मुसलमानोंका ही अधिक दोष निकालूंगा। वे संख्यामें और ताकतमें भी हिन्दुओंसे अधिक हैं। उन्हें कितने ही क्यों न चिढ़ाया गया हो उन्हें तो सब्र रखना चाहिए था और सब बरदाश्त कर लेना चाहिए था। मुझे अफसोस है कि उन्होंने इस कमबख्त लड़ाईके जोशमें आकर ऐसा नहीं किया। आखिर मुझे यह कहना चाहिए कि इस मामलेमें महात्माजी और मेरे जैसे निष्पक्ष शख्सोंके फैसलेमें भी जब इतना फर्क पड़ता है तो फिर दूसरे लोग इससे अधिक क्या कर सकते हैं। इसलिए हमें तो काजी बननेके बजाय सिर्फ सुलहके सिपाही बनना चाहिए।

हिन्दी-नवजीवन
२६ मार्च, १९२५

३४

'सहभोज'

एक महाशय लिखते हैं—

"मान लीजिए कि कोई सद्भाववाले मनुष्य सब वर्गोंमें सद्भाव पैदा करनेके लिए अंतर्वर्गीय, अंतर्जातीय और अन्तर्राष्ट्रीय भोजका निमंत्रण दे और उसमें शाकाहार

और अ-मादक वस्तुओंका ही उपयोग किया जाय तो क्या कोई हिन्दू आपकी जातिका हो या कुटुम्बी हो—इस भोजनमें निमंत्रण मिलने पर (और बेशक जबर्दस्ती नहीं) शामिल हो और आपसे राय मांगी जाय तो सनातन धर्मकी दृष्टिसे आपको इतराज होगा ? उसी प्रकार आप ही किसी सनातन (या मर्यादा) धर्मकी दृष्टि रखनेवाले ब्राह्मणोंको निर्जन स्थानमें थका हुआ भूखा और प्यासा (यह कहें कि मूर्छित हो जानेकी तैयारीमें हो) पाकर यदि कोई चाण्डाल या मुसलमान या ईसाई स्वच्छ चावलका खाना और पानी दे तो उसे वह स्वीकार करना चाहिए या नहीं ? संक्षेपमें प्रश्न यह है कि एक सार्वजनिक भोज देकर अपनी सदिच्छाका प्रकट करना और एक अस्पृश्यका स्पृश्य हिन्दूको खाना देना एवं उसका स्वीकार करना आपके सनातन, वर्णाश्रम और मर्यादा धर्मके अनुकूल है या नहीं ?”

यदि कोई ब्राह्मण संकटमें है और यदि वह चाहे कि मेरा शरीर कायम रहे, तो किसीका भी दिया स्वच्छ भोजन कर लेगा। मैं न तो सहभोजकी हिमायत करता हूँ न उसपर एतराज ही। क्योंकि ऐसे कार्योंसे मित्रता या सद्भावकी वृद्धि अवश्य ही होती हो सो बात नहीं। आज हिन्दू और मुसलमानके सहभोजकी तजवीज की जा रही है। पर मैं साहसके साथ कहता हूँ कि ऐसे भोजसे इन दोनों जातियोंमें एकता न हो सकेगी। क्योंकि ऐसे भोजके अभावके ही कारण ये एक-दूसरेसे दूर नहीं हैं। मैं ऐसे जानी दुश्मनोंको जानता हूँ जो एक साथ खाना खाते हैं, गप-शप लड़ाते हैं और फिर भी दुश्मन बने हुए हैं। लेखक दोनों विभाजक रेखा कहाँ खींचेगा ? वे शाकाहार और अ-मादक वस्तुओंके भोजन तक ही क्यों ठहरते हैं ? जो शख्स मांस खाना अच्छा समझता है और शराब चखना एक निर्दोष और आनन्दमयी तफरीह समझता है उसे तो अपने गो-माँसके टुकड़े शराबके प्यालेका सारी दुनियाके साथ लेन-देनका और खान-पान करनेमें सिवा सद्भावके और कुछ न दिखाई देगा। लेखक महाशयके प्रश्नमें गर्भित दलीलोंके आधारपर कोई विभाजक रेखा नहीं हो सकती। इसलिए मैं अन्तर्भोजको सद्भावकी वृद्धिमें सहायक नहीं मानता। मैं खुद तो इन खान-पानके बन्धनोंको नहीं मानता हूँ और मैं ऐसा खाना जो कि अभक्ष्य और निषिद्ध न हो, साफ-सुथरा होकर हर शख्सके हाथका खाता हूँ। पर जो लोग इन बन्धनोंको मानते हैं उनके मनोभावोंका लिहाज मैं जरूर रखता हूँ और न मैं इसलिए अपने पीठपर 'उदारता' की और दूसरेके मुह पर 'संकुचितता' की मुहर ही लगाता हूँ। यों जाहिर तौरपर मेरे उदार और व्यवहारिक होते हुए हो सकता है कि मैं संकुचित और स्वर्थी होऊँ और मेरे दूसरे मित्र जाहिरा तौरपर संकुचित दिखाई देते हुए भी उदार और निःस्वार्थ हों। सो इसका गुण और दोष हेतु पर अवलम्बित रहता है। सुहृदय-भावके वृद्धि करनेके साधनके तौर पर अन्तर्भोजके उदाहरणसे मेरी रायमें सद्भावकी वृद्धिकी गति कुन्ठित होगी क्योंकि उसके द्वारा एक तो मिथ्या प्रश्न खड़े होंगे और दूसरे मिथ्या आशाएं भी उदय होंगी। मैं जिस बातको दूर करनेका उद्योग कर रहा हूँ वह है श्रेष्ठता या उच्चताकी

धारणा। आरोग्यकी तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे इन बन्धनोंका महत्व है। परन्तु उनके पालन न करनेसे मनुष्य रसातलको नहीं चला जा सकता। जिस तरहकी उनके पालन करनेसे वह सातवें आसमानपर नहीं चढ़ सकता। यह भी हो सकता है कि खान-पानके बन्धनोंका पालन बड़े नियम पूर्वक करनेवाला मनुष्य अधम, पापी और एक सहभोजी तथा सर्वभक्षी मनुष्य सदा पाप भीरु हो और उसकी संगत्ति करना एक सौभाग्यकी बात हो।

हिन्दी-नवजीवन
३० अप्रैल, १९२५

❀

मेरी अक्षमता

यदि मैं सहायकाके अभिलाषी हर व्यक्तिको उनके इच्छानुसार सन्तुष्ट कर पाता तो इससे मेरे अभिमानको बड़ी ही तसल्ली होती। पर मेरी आशातीत अक्षमताका यह नमूना लीजिये।

"यदि आप लोग मुसलमानोंसे गो-वध बन्द कराके गो-रक्षा नहीं कर सकते तो फिर आपका नेतापन और महात्मापन किस गर्जकी दवा है? जरा देखिये, अलवरके अत्याचारोंके सम्बन्धमें आप किस तरह जान-बूझकर चुप हैं। और पण्डित मालवीयजीको जो निजाम सरकारने अपनी रियासतमें आनेसे रोक दिया है उसके सम्बन्धमें आपकी चुपकी तो दण्डनीय सी है। पं० मालवीयजीको आप लोग आदरणीय बड़ा भाई मानते हैं। उन्हें पहले दर्जेका लोक-सेवक कहते हैं और खुद आपहीने उन्हें मुसलमानोंके प्रति किसी प्रकारका मत्सर या वैर-भाव रखनेके दपसे बरी किया है।"

एक नहीं अनेक लोगोंने यह दलील पेश की है। जिसमें पहली फटकार अन्तको मिली और वह आग 'धधकानेवाली आखिरी लकड़ी हो साबित हुई है। मेरे सामने एक तार पड़ा है जिसमें कहा गया है कि मैं मुसलमानोंसे अनुरोध करूँ कि आगामी बकरीदपर गायकी कुर्बानी न करें। मैंने सोचा कि यह समय है कि मैं कमसे कम अपनी खामोशीकी कैफियत तो दे दूँ। पण्डितजी सम्बन्धी इल्जामको तो मैं हजम कर जानेको तैयार था, हालाँकि उसके लगानेवाले मेरे एक प्रिय मित्र हैं। उन्हें मेरी कीर्तिको धक्का पहुंचानेका बड़ा डर था। उन्होंने सोचा इससे मुझे लोग मुसलमानोंसे डर जानेका दोषी ठहरावेंगे और क्या न कहेंगे। परन्तु मैं अपने इस विचारपर दृढ़ रहा कि पण्डितजीके प्रवेश-निषेधपर अपने पत्रोंमें कुछ न लिखूँ। मुझे इस बातका जरा भी डर न था कि पण्डितजीको इससे गलतफहमी होगी और मैं जानता था कि पण्डितजीको मेरी रक्षाकी कोई आवश्यकता नहीं है। दुनियावी शक्तिके द्वारा की गयी तमाम निषेध आज्ञाओंको वे पारकर जायंगे। उनका

तत्वज्ञान उनका जीवट है। मैंने कितने ही कठिन अवसरोंपर उन्हें बहुत नजदीकसे देखा है। वे क्योंके त्यों अविचल रहे। अपने कामको जानते हैं। और उसे करते हुए न अनुकूल समयमें फूल उठते हैं न प्रतिकूल समयमें विचलित होते हैं। इसलिये जब मैंने उस निषेध आज्ञाको सुना तो पेट भरकर हँसा। राजाओंके ढंग अनोखे होते हैं। मैं जानता था कि मेरे 'यंग इंडिया' में कुछ लिखनेसे श्रीमान निजाम अपने फरमानको वापस न कर लेंगे। यदि मेरी उनसे जान-पहचान होती तो मैं हैदराबादके नवाब साहबको सीधा पत्र लिखता और उनसे विनयपूर्वक कहता कि पंडितजीको रोकनेसे आपकी रियासतका कोई फायदा नहीं हो सकता और इस्लामका तो और भी नहीं। मैं तो उन्हें यह भी सलाह देता कि यदि पण्डितजी हैदराबाद जाँय तो उनको अपना मेहमान बनाइयेगा। और हजरत पैगम्बर और उनके साथियोंके जीवनसे ऐसी मिसालें पेश करता। परन्तु मुझे उनसे परिचयका सौभाग्य प्राप्त नहीं। और मैं जानता था कि पत्रोंमें लिखी बात शायद उनके कानतक न पहुंच पावे। ऐसी अवस्थामें सिवा मौजूदा मनमुटाव बढ़ानेके उससे और कुछ हासिल नहीं होता और यदि मैं उस मनमुटावको घटा नहीं सकता तो उसे बढ़ाना भी नहीं चाहता था, सो मैंने चुप रहना ही उचित समझा और इस समय जो मैं लिख रहा हूं, उसका उद्देश्य उन हिन्दुओंको जो कि मेरी बात सुनना चाहते हों यह सलाह देना है कि वे इस घटनापर चिढ़ न उठें और इसे इस्लाम या मुसलमानोंके खिलाफ शिकायत करनेका साधन न बनावें। इस निषेध आज्ञाका जिम्मेवार निजाम साहबका मुसलमानपन नहीं है। मनमानी कार्रवाई स्वेच्छाचारका एक गुण है—वह फिर हिन्दू हो या मुसलमान—देशी राज्योंको नष्ट करनेका प्रयत्न न करते हुए हमें उनकी मनमानी तरङ्गोंको रोकनेका उपाय अवश्य सोचना चाहिये। वह यह है कि प्रबुद्ध और प्रबल लोकमत तैयार किया जाय। जिस तरह ब्रूटिश भारतमें यह कार्य आरम्भ हुआ है उसी तरह वहाँ भी आरम्भ होना चाहिये। यहाँ देशी राज्योंमें स्वभावतः ज्यादा आजादी है। क्योंकि यहाँका कार्य सीधा पार्लमेन्टके द्वारा होता है। देशी राज्योंकी तरह सम्राटके माण्डलिकोंके द्वारा नहीं। इस कारण वे ब्रूटिश प्रणालीके दोष तो अपने यहाँ ले लेते हैं पर सीधा ब्रूटिश शासन अपने लिये जो खिड़कियां रख लेता है उसे वे नहीं ले पाते। इसलिये भारतके देशी राज्योंमें सुव्यवस्थाका आधार रहता है ज्यादहतर राजाके चरित्र और लहरपर—बनिस्बत शासन-प्रधानके या यों कहें कि देशी राज्योंकी सरकारके नियम विधानोंके। इससे हम इस नतीजेपर पहुंचते हैं कि देशी राज्यमें सच्चा सुधार तभी हो सकता है कि जब कि ब्रूटिश भारतमें लोगोंकी सुव्यवस्थित शक्तिके द्वारा प्राप्त आजादीके द्वारा ब्रूटिश सरकारके ठण्डे नियंत्रणमें कमसे कम हस्तक्षेप तो हो। पर इसलिये यह आवश्यक नहीं कि सब पत्रवाले अपना मुँह बन्द कर लें। राज्योंके दोषोंका उल्लेख पत्र-संपादनका एक आवश्यक अंग है और वह लोकमत उत्पन्न करनेका एक साधन है। पर हाँ, मेरा

क्षेत्र बहुत मर्यादित है। मैंने पत्रोंका संपादन-भार पत्र-संचालनके लिये नहीं ग्रहण किया है। बल्कि जिसे मैंने अपना जीवन-कार्य समझा है उसकी सहायताके लिये। मेरा जीवन कार्य है—अत्यन्त संयम, उपदेश और संयमपूर्ण जीवनके द्वारा सत्याग्रहके अद्भुत अस्त्रका व्यवहार सिखाना जो कि सीधा, सत्य और अहिंसासे फलित होनेवाला सिद्धान्त है। मैं यह प्रत्यक्ष दिखलानेके लिये उत्सुक हूँ, नहीं अधीर हूँ कि अहिंसाके सिवा जीवनकी कितनी ही बुराइयोंकी कोई दवा नहीं है। यह एक ऐसा प्रबल द्रावक रस है कि जिसमें वज्रातिवज्र हृदय भी पानी-पानी हुए बिना नहीं रह सकता। इसलिये मुझे अपनी श्रद्धाकी रक्षाके लिये क्रोध या मत्सरसे प्रेरित होकर कुछ न लिखना चाहिये। मुझे यों ही कोई बात न लिखनी चाहिये। मुझे केवल लोगोंके मनोविकारोंको जाग्रत करनेके लिये कुछ न लिखना चाहिए। पाठकोंको इस बातकी कल्पना नहीं हो सकती कि हर सप्ताह विषयों और शब्दोंके चुनावमें मुझे कितना संयमसे काम लेना पड़ता है। यह मेरे लिये खासी तालीम है। इसके द्वारा मुझे अपने अन्तःकरणमें झाँकने और अपनी कमजोरियोंको देखनेका अवसर मिलता है। अक्सर मेरा मिथ्याभिमान मुझे तेज लिखनेकी और क्रोधसे कड़ा विशेषण लगानेकी प्रेरणा करता है। यह एक भयंकर अग्नि-परीक्षा है। पर साथ ही इन गन्दगियोंको दूर करनेका बढ़िया मुहाविरा भी है। पाठक 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंको सुलिखित देखते हैं और रोमां रोलाके साथ शायद कहना भी चाहते हों कि 'वाह! बूढ़ा क्या ही बढ़िया आदमी होगा।' अच्छा तो दुनियाँ इस बातको जान ले कि यह बढ़ियापन बड़ी चिन्ता और प्रार्थनाके साथ लाया गया है और यदि इसे कुछ लोगोंने, जिनकी रायको मैं अपने हृदयमें रखता हूँ स्वीकार किया है तो पाठक इस बातको समझ रखें कि जब यह बढ़ियापन बिल्कुल एक स्वभाविक वस्तु हो जायगी अर्थात् जब मैं किसी भी बुराईके लिये अक्षम हो जाऊँगा और जब किसी तरहकी कठोरता या मगरूरी—फिर वह क्षण भरके लिये ही क्यों न हो—मेरे विचार संसारमें न रह जायगी तब और तभी मेरी अहिंसा दुनियाँके तमाम लोगोंके हृदयोंको द्रवित कर देगी। मैंने अपने या पाठकोंके सामने कोई असंभव आदर्श या अग्नि-परीक्षा नहीं रखी है। यह तो मनुष्यका विशेषाधिकार और जन्मसिद्ध अधिकार है। हमने उस स्वर्गको खो दिया है, पर उसे फिर प्राप्त कर सकते हैं। यदि इसमें बहुत समय लगता है तो वह सारे मन्वन्तरका एक अणु मात्र है। गीतामें भगवान श्री कृष्णने यह कहकर कि हमारे करोड़ों दिन ब्रह्माके सिर्फ एक दिनके बराबर हैं, इसी बातको प्रकट किया है। इसीलिये हमें चाहिये कि हम अधीर न हों और अपनी कमजोरीके कारण यह न ख्याल करें कि अहिंसा दिमागकी नरमीका चिन्ह है। नहीं यह बात नहीं।

अब मुझे यह लेख जल्दी समाप्त करना चाहिये। अब पाठक समझ गये होंगे कि मैं क्यों अलवरके विषयमें चुप था। मेरे पास इतना ब्यौरा नहीं है कि मैं

कुछ लिखूँ। मेरी बात या लेखपर नियाज साहबकी तरह अलवर महाराज भी तिरस्कारके साथ हँस सकते हैं। अबतक जो बातें प्रकाशित हुई हैं वे यदि सच हैं तो दुहेरी छनी डायरशाही ही समझनी चाहिये। पर मैं जानता हूँ कि फिलहाल मेरे पास इसकी कोई दवा नहीं है। इन भीषण आरोपोंके संबन्धमें कमसे-कम उत्तम जाँच करनेके निमित्त पत्रवाले जो उद्योग कर रहे हैं उसे मैं आदरकी दृष्टिसे देख रहा हूँ। मैं पण्डितजीकी राजनीतिपूर्ण कार्रवाईको भी धीरे-धीरे कदम बढ़ाते देख रहा हूँ। तब फिर मुझे चिन्ता करनेकी क्या जरूरत है? जो सज्जन मेरे पास नुस्खेके लिये आते हैं वे इस बातको जान लें कि मैं कोई अमोघ कविराज नहीं हूँ और न मेरे पास भारी औषधि भण्डार ही है। मैं तो एक टटोलते हुये जानेवाला विशेषज्ञ हूँ और मेरी छोटी सी जेबमें मुश्किलसे दो रसायन हैं जो कि एक दूसरेसे भिन्न नहीं हो सकतीं, और वह विशेषज्ञ फिलहाल इन बुराइयोंको दूर करनेकी अपनी अक्षमताको स्वीकार करता है।

और गौ-प्रेमियोंको तो मैंने पहले ही कह दिया है कि अब मैं हिन्दुओं और मुसलमानोंपर अपना प्रभाव रखनेका कोई दावा नहीं करता जैसा कि कुछ समय पहले करता था। जबतक मैं उसे पुनः प्राप्त न कर लूं, गो-माता अपने इस बच्चेको माफ कर देगी। उसके प्राणके साथ ही मेरा भी प्राण जख्मी होता है। वह जानती है कि मैं उसके साथ विश्वासघात नहीं कर सकता। पर उसके दूसरे भक्त नहीं समझाते हैं तो वह अवश्य मेरी अक्षमताको समझती है।

हिन्दी-नवजीवन
२ जुलाई, १९२५

'त्याग-शास्त्र'

कलकत्तेकी सभामें मैंने कहा था कि देशबन्धुने मुझे मुसलमानोंके सम्बन्धमें 'त्याग-शास्त्र' को पराकाष्ठापर पहुंचा दिया था। मेरे इन उद्गारोंपर आपत्ति की गई है। इस आपत्तिका कारण यह है कि मेरे त्याग शब्दका आशय यह समझा गया है कि देशबन्धुने मुसलमानोंपर वह अनुग्रह किया जिसके लायक वे न थे। आक्षेपकर्त्ताने अपनी यह राय बना ली है कि हिन्दूलोग मुसलमानोंके साथ वैसा ही बर्ताव करते हैं जैसा कि अंग्रेज लोग हम लोगोंके साथ करते हैं। अर्थात् पहले तो हमसे सब कुछ छीन लिया और अब उसे अनुग्रहके नामपर भिक्षाके रूपमें दे देते हैं।

मैंने उस दिन सभामें जो कुछ कहा था उसका मुझे ज्ञान है। मैंने अपने उस भाषणकी रिपोर्ट नहीं पढ़ी है, तो भी उस सभामें मैंने जो कुछ कहा है उसपर मैं दृढ़ हूँ। मैं साहसके साथ कहता हूँ कि बिना पारस्परिक त्यागके इस छिन्न भिन्न देशके लिये कोई आशा नहीं है। हमें चाहिये कि हद दर्जेतक अपने दिलको छुई-मुई न बना लें, कल्पना-शक्तिसे हाथ न धो लें। त्याग—किसीके लिये कुछ छोड़ देनेका अर्थ अनुग्रह करना नहीं। प्रेम जिस न्यायको प्रदान करता है वह है त्याग और कानून जिस न्यायको प्रदान करता है वह है सजा। प्रेमीकी दी हुई वस्तु न्यायकी मर्यादाको लांघ जाती है और फिर भी हमेशा उससे कम होती है जितनी कि वह देना चाहता है। क्योंकि वह इस बातके लिये उत्सुक रहता है कि और दूँ और अफसोस करता है कि अब ज्यादह नहीं है। यह कहना कि हिन्दूलोग अंग्रेजोंकी तरह बर्तते हैं, उनकी मानहानि करना है। हिन्दू यदि चाहें भी तो ऐसा नहीं कर सकते और मैं यह कहता हूँ कि खिदिर-पुरके मजदूरोंकी पशुताके होते हुये भी क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, दोनों एक ही एक नावमें बैठे हुये हैं। दोनों गिरे हुये हैं और वे प्रेमियोंकी हालतमें हैं—उन्हें होना होगा—वे चाहें या न चाहें। इसलिये हरएक हिन्दू और मुसलमानका कार्य एक दूसरेके प्रति त्यागकी भावनाका होना चाहिये, न कि इन्साफकी भावनासे। वे अपने कार्योंको सोनेके कांटेमें तौलकर उसपर दूसरेसे विचार नहीं करा सकते। हमेशा एकको अपनेको दूसरेका देनदार समझना होगा। इन्साफके नातेसे तो क्यों किसी मुसलमानको रोज मेरी आँखोंके सामने एक गाय न मारनी चाहिये? पर मेरे साथ जो उनका प्रेम है वह उसे ऐसा नहीं करने देता और यहाँतक कि वह तो अपनी हदसे आगे बढ़कर मेरी मुहब्बतके खातिर गो-मांस भी खानेसे बाज आता है और फिर भी समझता है कि मैंने सिर्फ वह काम किया है जो कि करना उचित था। इन्साफ तो मुझे इजाजत देता है कि मैं मुहम्मद अलीके कानमें जाकर, जब कि वे नमाज पढ़ रहे हों, बाजे बजाऊँ और गाना गाऊँ; पर मैं अपनी हदसे आगे बढ़कर उनके जजबातका ख्याल करता हूँ और फिर भी समझता हूँ कि यह मैंने मौलाना साहबपर कोई मेहरबानी नहीं की है। बल्कि इसके प्रतिकूल यदि मैं खासकर उनके नमाजके समय अपने घंटा-घोपके न्याय-हकका प्रयोग करूं तो मैं एक घृणित आदमी समझा जाऊँगा। यदि देशबन्धुने कुछ जगहोंपर मुसलमानोंको नियत न किया होता तो न्यायको संतोष हो गया होता, पर उन्होंने अपनी हदसे आगे बढ़कर मुसलमानोंकी इच्छाका विचार किया और उनके मनोभाव जो देशबन्धुके दिलमें थे वही उनको मृत्युकी ओर जल्दी ले जानेका कारण हुआ क्योंकि मैं जानता हूँ कि जब उन्होंने देखा कि अनाधिकृत जमीनपर गाड़े गये मुर्दोंको न गाड़ने देनेपर न्याय उन्हें मजबूर कर रहा है तब उनके दिलको कितना धक्का लगा था और वे मुसलमानोंके भावोंको जरा भी धक्का पहुँचने देना न चाहते थे, फिर भले ही वह युक्तिसंगत न भी हो। यह सब वे हदसे बाहर जाकर कर

रहे थे। अपनी हदसे नहीं, बल्कि दुनियाँकी हदसे। और फिर भी उन्होंने कभी ख्याल न किया कि मुसलमानोंके भावोंका इतनी कोमलताके साथ विचार करके मैं उनके साथ कोई मेहरबानी या एहसान कर रहा हूँ। प्रेम कभी दावा नहीं करता वह तो हमेशा देता है। प्रेम हमेशा कष्ट सहता है। न कभी झुंझलाता है, न बदला लेता है।

इसलिये यह न्याय और कई न्यायकी बातें एक दिलका उफान है, विचार-हीन, क्रोधयुक्त और अज्ञानपूर्ण उफान है, फिर वह चाहे हिन्दुओंकी तरफसे हो चाहे मुसलमानोंकी तरफसे। जबतक हिन्दू और मुसलमान इन्साफके गीत गाते रहेंगे तबतक वे कभी एक दूसरेके नजदीक, नहीं आ सकते। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' यह न्यायका और महज न्यायका आखिरी वचन है। अंगरेजोंने जिस चीजको विजयके द्वारा हासिल किया है उसे एक इंच भी वे क्यों छोड़ दें? और क्यों हिन्दुस्तानी लोग जब उनके हाथमें राज्यकी बागडोर आ जाय, अंग्रेजोंसे वे तमाम चीजें न छीन लें जो उनके बाप-दादोंने उनसे छीन ली है? फिर भी जब कि हम आपसमें निपटारा करने बैठेंगे और किसी दिन हमें बैठना ही होगा, तो इस न्यायके नामसे पुकारी जानेवाली तुलापर नाप-जोख न करेंगे। बल्कि हमें 'त्याग' का यह भड़कानेवाला अंश, जिसे कि दूसरे शब्दोंमें प्रेम, सौहार्द या भ्रातृभाव कहते हैं, अपने सामने नजर रखना पड़ेगा और यही बात करनी होगी। हम हिन्दुओं और मुसलमानोंको भी जब कि हम एक-दूसरेका सिर काफी फोड़ चुकेंगे, निर्दोषोंका खून बहा चुकेंगे और अपनी बेवकूफीको समझ लेंगे तब यह तराजूकी और बांटकी बात हमारी नजरोंसे गिर जायगी और हम समझेंगे कि न तो बदला निकालना न न्याय, मित्रताका नियम है कि बल्कि त्याग, अकेला त्याग, उसका नियम है। तब हिन्दू गो-कुशीको अपनी आँखोंके सामने बरदाश्त करना सीख जायंगे। तब मुसलमानोंको मालूम होगा कि हिन्दुओंका दिल दुखानेके लिये गो-कुशी करना इस्लामकी शरीयतके खिलाफ है। जब वह सुदिन आवेगा तब दोनों एक दूसरेके गुण ही देखेंगे। हमारे दोष, हमारे दृष्टि-पथको न रोकेंगे। वह दिन बहुत दूर हो, चाहे बहुत नजदीक मेरा दिल कहता है कि वह जल्दी आ रहा है। मैं तो सिर्फ उसी दिनके लिये काम करूंगा। दूसरेके लिये नहीं।

मेरे लिये, सावधानीके तौरपर यह कहनेकी शायद ही आवश्यकता होगी कि मेरे त्यागका अर्थ सिद्धान्तका त्याग नहीं है। मैंने उस सभामें इस बातको साफ कर दिया था और फिर यहाँ उस बातपर जोर देता हूं। पर अभी हम जिस बातके लिये लड़ रहे हैं वह सिद्धान्त किसी हालतमें नहीं है; बल्कि मिथ्याभिमान और पूर्व संचित कलुषित विचार है। हम बूंदके लिये मरते हैं और समुद्रको खो देते हैं।

हिन्दी-नवजीवन

९ जुलाई, १९२५

सत्यपर कायम रहो

बकरीदके दिन खिदिरपुरमें जो हिन्दू-मुसलमानोंका दंगा हुआ उसका हाल सुननेकी झंझटमें मैंने पाठकोंको नहीं डाला, हालांकि मैं दंगेके कुछ घंटे बाद खुद मौकेपर पहुँच गया था। पर हाँ, रसा रोडको वापस लौटते ही एसोशियेटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे मैंने उसका वर्णन किया था। उसमें मैंने विचारके उपरान्त अपनी यह राय दी थी हिन्दू कुलियोंका सारा दोष था। उस समाचारको पढ़कर कुछ हिन्दू सज्जन मुझपर बहुत बिगड़े हैं और इस बातपर कि मैंने हिन्दुओंका दोष बताया है, मुझे बहुत बुरा-भला कहा है। चिट्ठियोंमें मुझे खूब गालियाँ दी गयी हैं और उनका स्वर और ढंग क्रोधोत्पादक भी है। यहाँतक कि एकने तो मुझे मुसलमान नाम भी प्रदान की है। मैं इन पत्रोंका उल्लेख यहाँ यह दिखानेके लिये करता हूँ कि हमारे कुछ लोग अपने मजहबके अन्धाधुंध जोशमें किस हदतक पहुँच गये हैं। हम इस बातको देखना और सुनना ही नहीं चाहते कि हमारे अन्दर भी, हमारा भी कुछ दोष है। जब किसी धर्म-विशेषके बहुसंख्यक अनुयायियोंकी यह रोजमर्राकी हालत हो जाती है तब समझ लेना चाहिये कि वह धर्म डूब रहा है; क्योंकि असत्यकी नींवपर स्थित कोई बात अधिक समयतक नहीं टिक सकती।

मैं तो यह कहनेका साहस करता हूँ कि मैंने बिना किसी रू-रियायतके हिन्दू कुलियोंके दोष प्रकट करके हिन्दू धर्मकी सेवा की है। मेरी इस स्पष्टोक्तिपर खुद कुलियोंने भी अपनी नाराजगी न प्रकट की। बल्कि उलटा वे तो उसके लिये कृतज्ञ होते हुए दिखाई दिये। उनके दिलमें पश्चातापकी प्रेरणा हुई, उन्होंने कसूरको कबूल किया और सच्चे दिलसे उसके लिये माफी मांगी।

अच्छा तो अब मैंने जो कुछ अपनी आँखोंसे देखा और अपने दिलमें अनुभव किया उसे न कहता तो क्या करता? क्या मैं गुनहगार लोगोंको छिपानेके लिये झूठ बोलता? जब कि आधी रातको हर वक्त हर जगह जो पहुँचनेवाले संवाददाता मेरे पास पहुँचे तो क्या मैं बात-चीत करनेसे इन्कार कर देता? उस समय भी जब कि कहनेका प्रसंग था, यदि मैं सच-सच कहनेमें आगा-पीछा करता तो मेरा अपनेको हिन्दू कहलानेका अधिकार नष्ट हो गया होता। मैं महासभाके सभापतिके पदके अयोग्य अपनेको साबित करता और एक सत्याग्रहीके तौरपर अपने नामको धब्बा लगवाता। हिन्दुओंको चाहिये कि वे खुद अपने उस इल्जामके अपराधी अपनेको न बनावें जो कि बिना झिझकके मुसलमानोंपर लगाते हैं—अर्थात् यह कि पहले तो बुरा काम करना और फिर झूठ बोलकर उसे छिपाना।

एक पत्र-लेखक कहते हैं कि जब कि देहलीमें हिन्दुओंने आपकी सहायता चाही तब तो आपने कह दिया, क्या करूँ, निरुपाय हूँ, कुछ बस नहीं है; जब

लखनऊमें आपको बुलाया गया तो आपने टाल-टूल कर दिया और जब कि हिन्दुओंपर छी: थू: करनेका मौका आया तो आप फौरन मौकेपर जा पहुँचे और उनके सम्बन्धमें बिना विचारे राय कायम कर डाली। सो पाठक इस बातको जान लें कि मैं हिन्दुओंकी तरफसे, एक हिन्दूके द्वारा निमत्रंण मिलनेपर तथा श्री सेनगुप्तके बुलाए जानेपर, वहाँ गया था। मेरी बेबसीके रहते हुए भी जब कि खास लड़ाई हो रही हो, और खासकर जब किसी भी एक पक्षकी तरफसे मुझे बुलावा आवे तो मुझे अवश्य उनकी सहायताके लिये वहाँ पहुँच जाना चाहिये। मैं अपनी लाचारी तो उस हालतमें प्रकट करता हूँ कि एक पक्षके लोग मुझे किसी झगड़ेको निपटानेके लिये या उसे रोकनेके लिये बुलाते हैं। क्योंकि कुछ किस्मके हिन्दू और मुसलमानोंपर अब मेरा प्रभाव नहीं रह गया है। मैं समझता हूँ कि इन दोनों हालतोंका अन्तर इतना साफ है कि उसे खोलकर बतलानेकी आवश्यकता नहीं है।

परन्तु पत्र-लेखक कहते हैं और हिन्दुओंके एक शिष्ट-मण्डलने भी, जो कि मुझसे मिलने आया था, कहा था कि आपने हिन्दुओंको जो बुरी तरहसे फटकारा है, उससे मुसलमानोंको निर्दोष लोगोंपर हमला करनेका बड़ा उत्साह मिल गया है और मैं मानता मुसलमान गुण्डोंको बाजारमें हिन्दू-दूकानोंको लूटनेका मौका मिल गया है। सो यदि मेरे हिन्दुओंके कु-कृत्योंकी निन्दा-फटकार करनेका फल यह हो कि मुसलमान लोग कु-कृत्य करने लगें, तो इससे मुझे बड़ा रंज होगा। पर इतना होते हुये भी मैं उचित काम करनेसे पीछे न हटूँगा। हिन्दू लोग मुसलमानोंके हमलोंसे डरें क्यों? यदि हिन्दू लोग मेरे अहिंसात्मक और त्यागात्मक उपायका अवलम्बन न कर सकें, और मैं मानता हूँ कि धन-दौलत रखनेवालोंके लिये मुश्किल है, तो हिन्दुओंके लिये अवश्य ही यह ठीक होगा कि अपनी आत्मरक्षाका हर तरहसे उपाय करें। हम चाहे हिन्दू हों या मुसलमान जबतक अपनी भीरुता न छोड़ेंगे और आत्म-रक्षा करनेकी विद्या न सीख लेंगे तबतक हम मनुष्य नहीं कहला सकते। जो लोग खुद अपनी रक्षा करना नहीं सीखते, लेकिन औरोंके द्वारा कराना पसन्द करते हैं उनके सिरपर जो निश्चित खतरा मँडराता रहता है उसे लुक-छिपकर किसी तरह नहीं टाल सकते। खिदिरपुरके हिन्दुओंकी जो मैंने भर्त्सना की है, उसमें उन लोगोंकी भर्त्सना अवश्य ही नहीं है जो कि अपने होनेवाले आक्रमणोंसे अपनी रक्षा करते हैं। यदि हिन्दु लोगोंने एक होकर मार-पीट करनेके बजाय, आत्म-रक्षाके लिए हर तरहके संकटका मुकाबिला किया होता और उसमें प्राण भी दे दिये होते तो मैंने उनके वीरताकी तारीफ की होती। परन्तु खिदिरपुरमें, जहाँ मुझे पता है, उनकी तादाद बहुत ही भारी थी और खुद आगे होकर उन्होंने हाथ चलाया था। मुसलमानोंकी ओरसे मार-पीटका कोई कारण नहीं दिया गया था। जिस तरहकी मैंने गुलबर्गा और कोहाटमें किये मुसलमानोंके कु-कृत्योंको, जो कि मेरी रायमें बिल्कुल अनावश्यक थे, बिला हिचकत धिक्कारी था उसी प्रकार

मैं उत्तेजनाका कारण मिले बिना की गई मार-पीटको जरूर बिला झिझके बुरा कहूँगा। एक बार पर दो बार करनेको भी मैं समझ सकता हूं, परन्तु बिना किसी किस्म की उत्तेजना या खास मौकेके लिये पैदाकी गई उत्तेजनाके की गई खून-खराबीके हकमें मैं अपनी राय कैसे बना सकता हूँ ?

हिन्दी-नवजीवन
१६ जुलाई, १९२५

मैं अंग्रेजोंसे द्वेष करता हूँ ?

९ जुलाई, १९२५ के 'यंग-इंडिया' में त्याग-शास्त्र नामक लेख प्रकाशित हुआ है। उसके नीचे लिखे वाक्योंपर कुछ आदरणीय अंग्रेज मित्रोंने आपत्ति की है—

"मैं साहसके साथ कहता हूं कि बिना पारस्परिक त्यागके इस छिन्न-भिन्न देशके लिए कोई आशा नहीं है। हमें चाहिये कि हम हद दरजेतक अपने दिलको छुई-मुई न बना लें, कल्पना-शक्तिसे हाथ न धोलें। त्याग—किसीके लिये कुछ छोड़ देनेका अर्थ अनुग्रह करना नहीं। प्रेम जिस न्यायको प्रदान करता है वह है त्याग और कानून जिस न्यायको प्रदान करता है वह है राजा। प्रेमीकी दी हुई वस्तु न्याय की मर्यादाको लांघ जाती है और फिर भी हमेशा उससे कम होती है जितनी कि वह देना चाहता है। क्योंकि वह इस बातके लिये उत्सुक रहता है कि और दूँ और अफसोस करता है कि ज्यादह नहीं है। यह कहना है कि हिन्दूलोग अंग्रेजोंकी तरह बर्तते हैं उनकी मानिहानि करना है। हिन्दू यदि चाहें भी तो ऐसा नहीं कर सकते और यह मैं कहता हूँ कि खिदिरपुरके मजदूरोंकी पशुता होते हुए भी क्या हिन्दू और क्या मुसलमान दोनों एक ही नावमें बैठे हुए हैं। दोनों गिरे हुए हैं और वे प्रेमियोंकी हालतमें हैं—उन्हें होना होगा —वे चाहें या न चाहें।"

वे मित्र समझते हैं कि इन वचनोंको लिखकर मैंने अंग्रेजोंके साथ भारी अन्याय किया है। क्योंकि वे कहते हैं कि इसमें जो निन्दा गर्भित है वह तमाम अंग्रेजोंपर घटाई गई है। मुझे दुःख है यदि इन वचनोंसे किसी तरह ऐसा अर्थ निकल सकता है। मेरा यह आशय हरगिज न था। मैं उन मित्रोंको यकीन दिलाता हूँ कि मेरा यह भाव न था। संदर्भसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मेरे उद्गार सारे अंग्रेज जातिपर नहीं घट सकते जिन्होंने कि भारतवासियोंके लिए अपनेको खपा दिया है।

मुसलमानोंका इल्जाम यह था कि हिन्दू लोग मुसलमानोंको उसी तरह दबाते हैं और गुलामीमें रखते हैं जिस तरहकी अंग्रेजोंने हिन्दू और मुसलमानों दोनोंको रख छोड़ा है—इसमें जरूर उनका आशय अधिकांश हिन्दुओं और अंग्रेजों से था। उद्धृत वाक्योंमें मैंने यह दिखलानेकी कोशिश की थी कि हिन्दू यदि मुसलमानोंको दबाना चाहें तो भी उनके पास शक्ति नहीं है। यदि मेरी यह उक्ति सिर्फ उन अंग्रेजोंके लिये हो जो कि हिन्दुस्तानमें रहते हैं तो उन्हें उसपर आपत्ति नहीं है, इसलिये नहीं कि वे इस दरजे तक भी मेरी रायकी पुष्टि करते हैं, बल्कि इसलिये कि उसमें उनको धक्का नहीं लगता, क्योंकि वे बरसोंसे मेरी इस रायको जानते हैं। पर उन्हें धक्का इसलिये पहुँचा कि उन्होंने समझा कि मैंने धिक्कारमें तमाम अंग्रेजोंको और उन मित्रोंको भी शामिल कर लिया है जो कि सचाईके साथ अपनी पूरी शक्ति भर भारतकी सेवा करनेकी कोशिश कर रहे हैं। उन्होंने समझा कि वह अंश द्वेष और क्रोधसे प्रेरित होकर लिखा गया है। पर सच बात तो यह है कि उस वाक्यांशको लिखते समय न तो मेरे दिलमें द्वेष भाव था और न रोष ही था। और यदि उस अंशसे यह अर्थ निकलता हो जिसे मैं अब भी मानता हूँ कि मैं अंग्रेजी भाषा लिखना नहीं जानता, क्योंकि वह मेरी मातृ-भाषा नहीं और उसकी बारीकियों और उलझनोंपर मेरा काबू नहीं हो पाया है। मैं मानता हूँ कि मुझे दुनियाँमें किसीसे द्वेषभाव नहीं हो सकता है। बरसोंके संयम और साधनके फल स्वरूप मैंने कोई ४० सालसे किसीसे द्वेष रखना छोड़ दिया है। मैं जानता हूँ कि यह एक भारी दावा है। फिर भी मैं इसे पूरी नम्रताके साथ पेश करता हूँ पर हाँ, बुराईसे, वह जहाँ कहीं हो, मैं द्वेष अवश्य करता हूँ। मैं उस शासन प्रणालीसे द्वेष करता हूं जिसे अंग्रेजोंने भारतवर्षमें स्थापित किया है। अंग्रेज वर्ग जो भारतमें अपनेको बड़ा लगाते हैं उसके इस ढंगसे मैं द्वेष करता हूँ। भारतकी जो बेतहाशा लूट हो रही है उससे मैं द्वेष करता हूँ। जिस तरह कि मैं सड़े दिलसे हिन्दुओंकी अछूतपनकी घृणित प्रथासे द्वेष करता हूं परन्तु मैं उन अंग्रेजोंसे द्वेष नहीं करता जो यहाँ बड़े बने हुए हैं जिस तरह कि ऊंचे बने बैठे हिन्दुओंसे द्वेष नहीं करता। मैं हर-तरहके प्रेम-पूर्ण साधनोंसे ही उनका सुधार करना चाहता हूँ। असहयोगका मूल द्वेष नहीं, प्रेम है। मेरा व्यक्तिगत धर्म मुझे जोरसे मना करता है कि किसीसे द्वेष न करो। अपनी एक पाठ्य पुस्तकसे मैंने यह सरल परन्तु भव्य सिद्धान्त सीखा था जब कि मेरी उम्र १२ सालकी थी और वह विश्वास अब तक बना हुआ है। वह दिन-दिन मुझ पर रंग जमाता जा रहा है। मुझ पर उसकी धुन सवार है। अतएव मैं उन अंग्रेज भाईको यकीन दिलाता हूँ जिनकी कि गलतफहमी इन मित्रोंकी तरह हुई हो कि मैं कभी अंग्रेजोंसे द्वेष रखनेका अपराधी न होऊंगा। फिर भले ही १९२१की तरह मुझे उनसे नम्रताके साथ क्यों न लड़ना पड़े। वह लड़ाई होगी शान्तिमय, वह लड़ाई होगी स्वच्छतासे, और वह लड़ाई होगी सत्यमय।

मेरा प्रेम परिमित नहीं! मैं अंग्रेजोंसे द्वेष रखते हुये हिन्दुओं और मुसलमानोंसे

प्रेम नहीं कर सकता क्योंकि यदि मैं सिर्फ हिन्दुओं और मुसलमानोंसे प्रेम करूँ—इसलिये कि उनका रंग-ढंग मुझे यों खुश करता है तो मैं उनसे उसी क्षण द्वेष करने लगूँगा, जिस क्षण उनके तौर-तरीके मुझे नाराज कर देंगे और यह किसी भी समय हो सकता है। जो प्रेम आपके प्रेम-पात्र लोगों की भलाईपर अवलम्बित रहता है वह किरायेकी चीज होती है। सच्चा प्रेम तो वह है जो अपने आपको खपा देता है और फिर भी नहीं चाहता कि उसका कोई ख्याल करे। वह एक आदर्श हिन्दू पत्नी, जैसे सीताके प्रेमकी तरह होता है। रामने सीताकी अग्नि-परीक्षा की। फिर भी रामके साथ उनका प्रेम कम न हुआ और सीताका उससे कल्याण ही हुआ। क्योंकि सीता जानती थी कि मैं क्या कर रही हूँ। उनका आत्म-यज्ञ बल-मूलक था अशक्ति मूलक नहीं। प्रेम संसारमें प्रबलसे प्रबल शक्ति है और फिर भी उसके ऐसा नम्र कोई नहीं है।

हिन्दी-नवजीवन
६ अगस्त, १९२५

४४

वह कहाँ है ?

"वह कहां है ? लोहानी कहां है ? प्रतिध्वनी अब भी जवाब देती है, कहां ? कृपया ३०-८-२५ का 'यंग इंडिया' देखिये। इससे पहले दो या तीन अंकोंपर, मुझे याद है, आपने कुछ मुसलमानोंकी शिकायतें छापी थीं। जिनमें उन्होंने यह इलजाम लगाया था कि हिन्दुओंने अपने अपवित्र हाथ उनकी मसजिदोंपर उठाये थे, पर अन्तमें आपको यह मानना पड़ा कि वे शिकायतें निराधार थीं। फिर भी आपने उन इलजामोंको पाठकोंके सामने पूरा वापस नहीं लिया या भूल गये। अब मुझे अन्देशा है कि यह 'लोहानी' भी ऐसी ही मनगढ़न्त है। यदि आप १२-३-२५ का 'यंग इंडिया' देखेंगे तो आपको याद हो जायगा कि लोहानीवाली शिकायत ही आपने अपने मुस्लिम संवाददाताके दूसरे कितने ही इल्जामोंसे लेकर जिन्हें आपने 'अ-पुष्ट' कहकर नामंजूर कर दिया था, प्रकाशित की थी। पर अब इस आपके चुने हुए इल्जामका क्या हाल है ? लोहानीका कहीं पता है ? यदि हां, तो क्या वह साधार है ? यदि नहीं तो क्या आप कृपा करके इस बातको कमसे कम उतने ही प्रधान रूपसे प्रकाशित करके, जितना कि आपने असली शिकायतको किया था, इस पातकसे अपने हाथ धो लेंगे, और सो भी जितना हो सके, जल्दी ?"

मैंने आखिरी दो-तीन वाक्योंको निकाल दिया है। जो कि लेखककी मामूली शैलीसे अधिक जोशीले थे। मुझे पाठकोंको यह जरूर सूचित कर देना चाहिए कि मैंने असली शिकायत करनेवाले महाशयसे तथा उन लोगोंसे जिन्होंने उनका नाम मुझे लिखा खूब पूछ-ताछ की, पर मुझे भारतके नक्शेमें वह मुकाम कहीं न मिला।

चूँकि मैंने अपनेको हिन्दू-मुस्लिमका विशेषज्ञ या उसपर प्रमाण-रूप मानना छोड़ दिया है, मुझे लेखककी उठाई अन्य बातोंपर कुछ लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। इस पत्रके लिए भी मैंने बहुत अनिच्छापूर्वक स्थान निकाला है। मैंने महसूस किया कि लोहानीके बारेमें अपनी जाँचका फल पाठकोंके सामने प्रकट करनेके लिए बाध्य हूँ।

हिन्दी-नवजीवन
२७ अगस्त, १९२५

❀

पाठकोंसे

मैंने उन्हें क्या लिखूं? मेरा और तुम्हारा सम्बन्ध, मेरी दृष्टिसे असाधारण है। 'नवजीवन' के सम्पादकका पद मैंने न तो धन-लोभसे और न कीर्ति-लोभसे ग्रहण किया। मैंने तो अपने शब्दोंके द्वारा तुम्हारे हृदयको हिलानेके लिये यह पद स्वीकार किया है। मेरे सिर तो वह अनायास आ पड़ा है। परन्तु जबसे आया है तभीसे मैं तुम्हारा ही चिन्तन करता रहा हूँ। प्रति सप्ताह 'नवजीवन' में मैंने अपनी आत्मा उडेलनेका प्रयत्न किया है। एक भी शब्द ईश्वरको साक्षी रखे बिना मैंने नहीं लिखा है। तुम्हें जो प्रसादी पसन्द हो वही देना मैंने अपना धर्म नहीं समझा। कितनी ही बार मैंने कड़वी घूंट भी पिलाई है। किन्तु कड़वी या मीठी हर एक घूंटमें मैंने वही बतानेकी कोशिश की है जिसे मैंने निर्मल धर्म माना है, जिसे मैंने स्वच्छ देश-सेवा मानी है।

आज जो मैं उपवास कर रहा हूँ सो संपादक-पदके अधिक योग्य होनेके लिए। मैं जानता हूँ कि 'नवजीवन' के अनेक पाठक भाई-बहन मेरे लेखोंको देखकर चलते हैं। कहीं मैंने उन्हें गलत रास्ता दिखाकर हानि पहुंचाई हो तो? यह खयाल मुझे बराबर खटकता रहता था

अस्पृश्यताके बारेमें मुझे कभी लेश-मात्र सन्देह न हुआ। चरखेके विषयमें तो सन्देहके लिए जगह ही नहीं। वह लंगड़ेकी लाठी है—सहारा है। भूखेको खाना देनेका साधन है। निर्धन स्त्रियोंके सतीत्वकी रक्षा करनेवाला किला है। सब लोगोंके द्वारा उसके स्वीकृत हुए बिना हिन्दुस्तानकी फाकेकशी मिटाना असंभव मानता हूँ। इस कारण चरखा चलानेमें अथवा उसका प्रचार करनेमें भूलके लिए कहीं भी गुंजाइश नहीं है। हिन्दू-मुसलमान-ऐक्यकी आवश्यकताके विषयमें कहीं संशयके लिए स्थान नहीं। उसके बिना स्वराज्य आकाश-पुष्पवत है।

परन्तु विशाल अहिंसाको ग्रहण करनेके लिए तुम तैयार हो या नहीं, इसके विषयमें मुझे सदा सन्देह रहा है। मैंने तो पुकार कर कहा है कि अहिंसा-क्षमा

वीरका लक्षण है। जिसे मरनेकी शक्ति है वही मारनेसे अपनेको रोक सकता है। मेरे लेखनीसे तुम भीरुताको अहिंसा मान लो तो ? अपने लोगोंकी रक्षा करनेके धर्मको खो बैठो तो ? मेरी अधोगति हुए बिना न रहे। मैंने कितनी ही बार लिखा है और कहा है कि कायरता कभी धर्म हो ही नहीं सकता। संसारमें तलवारके लिए जगह जरूर है। कायरका तो क्षय हो ही सकता है। उसका क्षय ही योग्य भी है। परन्तु मैंने तो यह लिखनेका प्रयत्न किया है कि तलवार चलानेवालेका भी क्षय ही होगा। तलवारसे मनुष्य किसको बचावेगा और किसको मारेगा ? आत्म-बलके सामने तलवार-बल तृणवत है। अहिंसा आत्माका बल है। तलवारका उपयोग करके आत्मा शरीरवत् बनती है। अहिंसाका उपयोग करके आत्मा आत्म-वत् बनती है। जो इस बातको न समझ सके उसे तो तलवार हाथमें लेकर भी अपने आश्रितोंकी रक्षा जरूर करनी चाहिए।

ऐसे अनमोल अहिंसा-धर्म को मैं शब्दोंके द्वारा प्रकट नहीं कर सकता। खुद पालन करके ही उसका पालन कराया जा सकता है। इससे इस समय मैं उसका पालन कर रहा हूँ। मन्दिरोंको तोड़नेवाले मुसलमानको भी मैं तलवारसे न मारूँगा। उसपर मैं क्रोध भी न करूँगा। उसे भी मैं केवल प्रेमके ही द्वारा जीतूंगा।

मैंने लिखा है कि हिन्दुस्तानमें यदि एक ही शुद्ध प्रेमी पैदा हो जाय तो वह स्वधर्मकी रक्षा कर सकता है। मैं चाहता हूं कि ऐसा बनूं। मैं हमेशा लिखता रहा हूँ कि तुम भी ऐसे बनो।

मैं जानता हूँ कि मेरे अन्दर बहुत प्रेम है। पर प्रेमकी तो सीमा ही नहीं होती। मैं यह भी जानता हूँ कि मेरा प्रेम असीम नहीं है। मैं सांपके साथ कहां खेल सकता हूँ ? जो अहिंसा-मूर्ति हो उसके सामने सांप भी ठंडा हो जाता है। मुझे इसपर पूरा-पूरा विश्वास है।

उपवास करके मैं अपनी जाँच कर रहा हूँ, विशेष प्रेम उत्पन्न कर रहा हूँ। मैं अपना कर्तव्य पूरा करके तुम्हें तुम्हारा कर्तव्य बतानेकी इच्छा रखता हूँ। तुम यदि मेरे साथ उपवास करोगे तो वह निरर्थक है। उसके लिए समय, अधिकार आदिकी जरूरत रहती है। तुम्हारा कर्तव्य तो यही है कि जो तीन चीजें मैं भिन्न-भिन्न रूपमें तुम्हारे सामने पेश कर रहा हूँ उनको साधो। उनके द्वारा दूसरी सब बातें अपने आप सध जायँगी। यह मेरा विश्वास है।

मेरे उपवासके औचित्यपर शंका करनेके बदले तुम ईश्वरसे यही माँगो कि मेरे उपवास निर्विघ्न पूरे हों। मैं फिर 'नवजीवन' के द्वारा तुम्हारी सेवा करने लगूँ और मेरे शब्दों में अधिक बल आये।

हिन्दी-नवजीवन
२८ सितम्बर, १९२४

❀

हृदयका पलटा

अबतक उन अंग्रेजोंके जिनसे भारत सरकार बनी हुई है हृदय बदल देनेकी उत्कण्ठा रक्खी गई थी और उसीके लिए प्रयत्न भी हो रहा था। परन्तु अभी वह तो होना बाकी ही था कि यह प्रयत्न अब हिन्दू और मुसलमानोंके परस्पर दिल बदलनेके लिए करना होगा। स्वतंत्रता-स्वराज्य-का विचार करनेके भी पहले उन्हें इतना बहादुर जरूर बनना पड़ेगा कि वे एक दूसरेसे प्रेम कर सकें, एक दूसरेके धर्मको सहन कर सकें, धार्मिक दुर्भाव और वहमको भी दरगुजर कर सकें और और एक दूसरे पर विश्वास रख सकें। इसके लिए आत्म-विश्वास होना जरूरी है। यदि हमारे अन्दर आत्म-विश्वास है तो हम एक दूसरेसे डरना छोड़ देंगे।

हिन्दी-नवजीवन
५ अक्तूबर, १९२४

१४

एकता-परिषद्

सभापतिके द्वारा उपस्थित किये जानेपर नीचे लिखा प्रस्ताव 'एकता परिषद्'में सर्व-सम्मतिसे पास हुआ—

महात्मा गांधीके उपवाससे इस परिषद्को बहुत दुःख और चिन्ता हुई है।

इस परिषद्की यह दृढ़ राय है, कि अन्तरात्मा और धर्मको अत्याधिक स्वतन्त्रता परम आवश्यक है और यह पूजा-स्थानोंके, फिर वे किसी धर्म-सम्प्रदायके हों, भ्रष्ट किये जाने और किसी भी मनुष्यके अन्य धर्म ग्रहण करने या पुनः स्वधर्ममें आनेके कारण उसके दिल को दण्डित करनेकी निन्दा करती है और जबरदस्ती किसीको अपने धर्म मतमें मिलाने या दूसरोंके हकों पर पदाघात करके अपने धार्मिक रीति रिवाजोंको दूसरोंपर लादने या उनकी रक्षा करनेके प्रयत्नोंकी भी निन्दा करती है।

इस परिषद्के सदस्य महात्मा गांधीको यकीन दिलाते हैं कि हम इन सिद्धान्तोंका परिपालन कराने और इनके जोश तथा उत्तेजनाकी अवस्थामें भी उल्लंघन करनेपर उसकी निन्दा करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं।

यह परिषद् अपने सभापतिको इस बातका अधिकार देती है कि वे खुद जाकर महात्मा गांधीपर इस परिषद्का यह गम्भीर आश्वासन प्रकट करें और परिषद्की यह अभिलाषा भी उनपर जाहिर करें कि महात्मा गांधी तुरन्त अपना उपवास छोड़कर देशमें तेजीके साथ फैलनेवाली इस बुराईको तत्काल भली भाँति रोकनेके तेज उपायोंका अवलंबन करनेमें परिषद्को अपने सहयोग, सलाह और रहनुमाईका लाभ प्रदान करें।

मोतीलाल नेहरू

गांधीजीने अपनी उपवास-शय्यासे यह स्वहस्त-लिखित उत्तर भेजा—

प्रिय मोतीलालजी,

आपकी रहनुमाईमें प्रेम और दयासे प्रेरित होकर परिषद्‌ने जो प्रस्ताव पास किया है उसे आपने कृपा-पूर्वक कल रातको मुझे पढ़कर सुनाया है। मैं आपसे निवेदन करूँगा कि आप सभाको इस बातका यकीन दिलावें कि यदि मुझसे हो सकता तो मैं खुशीसे उसकी इच्छाके अनुसार उपवास छोड़ देता। पर मैंने अपने दिलमें फिर-फिर कर इस बातपर विचार किया है और देखा कि उपवास छोड़ना मेरे लिये संभवनीय नहीं है। मेरा धर्म मुझे शिक्षा देता है कि किसी शुभ और उच्च कार्यके लिये जो प्रतिज्ञा एक बार की जाय या जो व्रत एक दफा ले लिया जाय उसे तोड़ना न चाहिये। और आप जानते हैं कि ४० सालसे ज्यादह हुए मेरा जीवन इसी सिद्धान्तके आधार-पर बना हुआ है।

इस पत्र में जितना खुलासा कर सकता हूँ उससे भी अधिक गहरे कारण मेरे उपवासके हैं। इस उपवासके द्वारा मैं एक बातके लिये अपनी श्रद्धा प्रकट कर रहा हूँ। असहयोग-आन्दोलनका विचार किसी भी अंग्रेजके प्रति द्वेष या दुर्भावसे प्रेरित हो कर नहीं किया गया था। उसके अहिंसात्मक रखनेका उद्देश्य यही था कि हम अंगरेजोंको अपने प्रेमके बलके द्वारा जीते। पर इसका परिणाम केवल वैसा ही नहीं हुआ, बल्कि उसके द्वारा उत्पन्न शक्तिने खुद हमारे ही अन्दर एक दूसरेके प्रति द्वेष और दुर्भाव पैदा कर दिया। इस बातके ज्ञान होनेके कारण ही मेरा सिर झुक गया है, और मुझे यह अदम्य प्रायश्चित अपने ऊपर लादना पड़ा है।

इसलिये यह उपवास मेरे और ईश्वरके बीचकी बात है। सो मैं आपसे केवल यही निवेदन न करूंगा कि उसे न छोड़ सकने लिये आप मुझे माफ करें, बल्कि यह भी करूंगा कि मुझे इसके लिये उत्साहित करें और मेरे लिए ईश्वरसे प्रार्थना करें कि वह निर्विघ्न समाप्त हो।

मैंने यह उपवास मरनेके लिए नहीं, बल्कि और भी अच्छी और शुद्ध जिन्दगी देशकी सेवाके लिए बसर करनेके उद्देशसे किया है। सो यदि ऐसी नाजुक हालत हो जाय (जिसकी मुझे कोई संभावना नहीं दिखाई देती है) जब मृत्यु और भोजन दोमेंसे किसी बातकी पसन्दगी करनेका सवाल खड़ा हो तो मैं जरूर उपवास छोड़ दूंगा। लेकिन डा० अनसारी और डा० अब्दुल रहमान जो कि बड़ी सावधानी और चिन्ताके साथ मेरी शुश्रूषामें हैं आपसे कहेंगे कि मैं इतना तरोताजा रहता हूँ कि जिसपर ताज्जुब होता है।

इसलिए सभासे मैं सविनय प्रार्थना करता हूँ कि वह मेरे प्रति अपना तमाम प्रेम, जिसका कि चिन्ह यह प्रस्ताव है, एकताके लिए ठोस, सच्चे और सरगर्म कामके रूप-में परिणत करे जिसके लिए यह परिषद हो रही है।

हिन्दी-नवजीवन
५ अक्टूबर १९२४

लोहानी कहां है ?

लोहानीका जब पता न चला और मैं आखिर निराश हो गया तब मुझे जिसकी तरफसे कुछ भी आशा न थी ऐसे ही एक स्थानसे इसमें मदद मिली है और अब वर्तमान पत्रोंके अवतरणोंके रूपमें उससे संबंध रखनेवाली सब बातें मेरे सामने मौजूद हैं। मैं देखता हूँ कि इन अवतरणोंका आधार 'यंग इंडिया' में पहले-पहल लोहानीके सम्बन्धमें मेरी टिप्पणी है। इन वर्तमान पत्रके संवाददाताओंसे मालूम होता है कि यह समझ लिया गया था कि मैं उनके लिखे हुए लेखोंको पढ़ूँगा। मालूम होता है कि इस बातको लोग नहीं जानते कि यंग इन्डिया या नवजीवनके—परिवर्तनमें जितने पत्र आते हैं उन सबको पढ़नेका मुझे समय नहीं होता है। मैंने कई बार यह प्रार्थना की है और आज फिर वही प्रार्थना करता हूँ कि जो लोग वर्तमान पत्रोंमें लेख लिखकर मुझे कुछ संवाद देना चाहते हैं, मेरी भूल सुधारना चाहते हैं या मुझे सलाह देना चाहते हैं वे उसमेंसे उस भागको काटकर मेरे पास अवश्य भेज दें। अपने एक संवादपत्रमें लेखक मुझे लोहानी कहां है यह न मालूम होनेके कारण बड़ा आश्चर्य प्रकट करते हैं। इसके लिए रंज तो मुझे भी है। लेकिन उन्हें आश्चर्य क्यों है ? मैंने इसके पहले ही इस बातको स्वीकार कर लिया है कि मुझे अपने देशकी भूगोलका बराबर ज्ञान नहीं है। जब मैं गुजराती शालामें पढ़ता था तब हिन्दुस्तानकी भूगोलसे मेरा कुछ योंही परिचय कराया गया था और ज्योंही मैं अंग्रेजी पढ़ने लगा कि पहले ही दर्जेमें मुझे बेंतका डर दिखाकर विलायतके प्रान्तोंका नाम और दूसरे विदेशी नाम रटनेको कहा गया। उनका उच्चारण करनेमें और उन्हें याद करनेमें मेरा सर दर्द करने लगता था। किसीने भी मुझे यह नहीं सिखाया कि लोहानी कहां है। मुझे यकीन है कि मेरे अध्यापक भी यह नहीं जानते थे। मैं पंजाब जानेके पहले भी बानीको भी जिसके कि नजदीक लोहानी है नहीं जानता था। मेरे पास जो वर्तमान पत्रोंके अवतरण हैं उसपरसे यह मालूम होता है कि लोहानी हिन्दुओं का एक छोटा गांव है। उसपरसे यह भी पता चलता है कि लोहानीके हिन्दू जमींदारोंने मुसलमानोंको वहां बुलाया था। अब हिन्दु मुसलमान जमीनके एक टुकड़ेके लिए लड़ रहे हैं। मुसलमानोंका दावा है कि वह भूमि उनके लिए पवित्र है और हिन्दुओंका दावा है कि वह जमीन हमेशासे उन्हींके अधिकारमें रही है। यह मामला अभी अदालतमें पेश है। और मुझे उसे वहीं छोड़ देना चाहिये। वर्तमान पत्रमें लेख लिखनेवाले वे महाशय मुझे इस मामलेकी आंच करनेके लिए और अपनी राय जाहिर करनेके लिए निमंत्रण देते हैं। यदि मुझे यह अधिकार होता, मैं मानता हूँ कि एक समय मुझे यह अधिकार था, तो मैं अवश्य ही इस मामलेकी आंच करता और इस झगड़ेको अदालतमें जानेसे रोकता। लेकिन मुझे अब तो यही स्वीकार करना होगा कि मैं इसकी आंच करनेके

लिए असमर्थ हूँ। फिर भी मैं दोनों पक्षोंको यही सलाह दूँगा कि वे उनलोगोंके पास जाय जिनपर कि उन्हें विश्वास हो और उन्हें इसमें पड़नेके लिए प्रार्थना करें।

हिन्दी-नवजीवन
२२ अक्टूबर, १९२५

शाश्वत समस्या

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नको मैं चाहे कितना भी टाल देना क्यों न चाहूं वह प्रश्न तो मुझे छोड़ता ही नहीं है। मुसलमान मित्र इसका निपटारा करनेके लिए मुझसे आग्रह कर रहे हैं और हिन्दू मित्र इस प्रश्नको लेकर मुझसे बहस करना चाहते हैं। कुछ तो यह भी कहते हैं कि मैंने वायूको संचारित किया है तो अब मुझे तूफानका भी सामना करना चाहिए। जब मैं कलकत्तेमें था उस समय एक बिहारी मित्रने मुझे गुस्सेमें और रंजमें आकर एक पत्र लिखा था और उसमें हिन्दू लड़कों और खास कर लड़कियोंको भगा ले जानेकी कहानी बयान की थी। मैंने उन्हें तो टका सा जवाब दे दिया और कहा कि मुझे उस कहानीमें विश्वास नहीं है और उनके पास उसके सबूत हों तो वे भेजें, मैं बड़ी खुशीसे उनकी जाँच करूँगा और यदि मुझे यकीन हो गया तो चाहे और कुछ न कर सकूँ तो भी मैं उसकी निन्दा अवश्य ही करूँगा। उसके बाद उन्होंने वर्तमान पत्रोंमेंसे काट-काट कर भगा ले जानेके मामलोंका दिल दहलानेवाले वर्णन मेरे पास भेजें हैं। मैंने उन्हें लिख दिया है कि पत्रोंके वर्णनोंको जुर्मका सुबूत नहीं माना जा सकता है। ऐसे बहुतसे मामलोंमें वर्तमान पत्र तो ज्यादातर भड़कानेवाले, गुमराह करनेवाले और झूठे होते हैं। हिन्दू और मुसलमानोंके ऐसे कुछ पत्र हैं जो एक दूसरोंको बुरा कहनेका ही काम करते हैं। मुझे तो इसके काफी संतोष जनक प्रमाण मिले हैं कि बहुत सी बातें यदि झूठ नहीं हैं तो बड़ी अतिशयोक्तिपूर्ण अवश्य होती हैं। इसलिए मैंने उसके ऐसे ही अकाट्य प्रमाण मांगे जो किसी भी अदालतमें स्वीकार किये जा सकते हैं। टीटागढ़का मामला सचमुच ऐसा ही है। मुसलमान एक लड़कीको भगा ले गये हैं। यह कहा जाता है कि उसने इस्लामका स्वीकार कर लिया है। और अदालतका हुक्म हो गया है फिर भी अभी तक मुझे ख्याल जहाँतक है वह वापिस नहीं लाई गई है। और उसमें विशेपता तो यह है कि लड़कीको वापिस न लानेमें बड़े-बड़े इज्जतवालोंका भी हाथ है। जिस वक्त मैं टीटागढ़में था इस लड़कीके बारेमें किसीने भी अपने ऊपर उसकी जवाबदेही होना स्वीकार नहीं किया। पटनेमें भी मुझे कुछ ऐसी ही चौंका देनेवाली खबरें मिली थीं। उसके सुबूत भी मेरे सामने पेश किये गए थे। इस समय मैं उसमें अधिक गहरा उतरना नहीं चाहता हूँ क्योंकि

उसकी तमाम बातें मेरे सामने पेश नहीं की गयी हैं। ऐसे मामलोंको सुनकर सभीको विचार करना पड़ता है और देश हितैपियोंको, सबको उसपर ध्यान देना परम आवश्यक है।

अब मस्जिदोंके सामने बाजा बजानेका सवाल रहा। मैंने यह सुना है कि मुसलमानोंकी यह मांग है कि मस्जिदोंके सामने किसी भी समय, धीरे या जोरसे कैसा भी बाजा न बजाया जाय। उनकी यह भी एक मांग है कि मस्जिदोंके पास जो मन्दिर हों उनमें नमाजके वक्तपर आरती भी बन्द कर देनी चाहिये। मैंने यह भी सुना है कि कलकत्तेमें प्रातःकालके समय कुछ लड़के रामनाम रटते हुए मस्जिदके पाससे जा रहे थे, उन्हें रोका गया था।

तो अब किया क्या जाय? ऐसे मामलोंमें अदालतोंपर आधार रखना सड़े बांसपर आधार रखनेके बराबर है। यदि मैं अपनी लड़कीको भगा ले जाने दूँ और फिर अदालतमें जाऊं तो अदालत मुझे क्या मदद करेगी, कैसे मदद करेगी? वह तो खुद ही लाचार हो जायगी। और यदि मजिस्ट्रेट मेरी कायरताको देखकर नाराज हो जाय तो वह मुझे घृणाके साथ जिसके कि लायक मैं हूंगा अपने सामनेसे हट जानेको ही कहेगा। अदालत साधारण जुर्मोंका ही न्याय करती है। लड़कोंको और लड़कियोंको आमतौरपर भगा ले जानेका जुर्म साधारण जुर्म नहीं है। ऐसे मामलोंमें तो लोगोंको अपने ही ऊपर आधार रखना चाहिये। अदालत तो उन्हीं लोगोंकी मदद करती है जो कि अक्सर अपने आप अपनी मदद कर सकते हैं। इसमें अदालतकी तरफसे जो रक्षा होती है वह सिर्फ सहायक होती है। जबतक मनुष्य निर्बल बने रहेंगे तबतक उनकी निर्बलतासे लाभ उठानेवाले भी कोई न कोई अवश्य ही निकल पड़ेंगे। इसलिए अब आत्म-रक्षाके लिए अपना संगठन करना ही एकमात्र उपाय है। ऐसे मामलोंमें जिनका कि इससे सम्बन्ध है वे यदि शांतिमय प्रतिकार करनेमें असमर्थ हों तो वे अपनी रक्षाके लिए कैसे भी हिंसात्मक साधनोंका उपयोग क्यों न करें मैं उसे ठीक ही समझूंगा। अवश्य, जहाँ गरीब और लाचार मां बापके लड़कियां और लड़के भगा लिये जाते हैं वहाँ बात बड़ी पेचीदा हो जाती है। वहाँ उसका उपाय किसी एक व्यक्तिको ही नहीं ढूंढ़ना पड़ता है, लेकिन सारी जातिको ही, एक सारे वर्गको ही उसका उपाय ढूंढ़ निकालना चाहिये। लेकिन आम जनताकी राय इसके लिए संगठित करनेके पहले यह परम आवश्यक है कि लड़के लड़कियोंको भगा ले जानेके सच्चे और प्रामाणिक मामलोंको लोगोंके सामने रक्खा जाय।

बाजेका सवाल तो बड़ा ही सीधा है। बाजाका लगातार बजाना, आरती और रामनामका रटना क्या सचमुच धार्मिक आवश्यकताएं हैं या नहीं? यदि वह धार्मिक आवश्यकता है तो अदालतकी मनाहीका हुक्म भी उसके लिए बन्धन-कर्त्ता नहीं है। परिणाम चाहे कुछ भी क्यों न आवे बाजा बजाना ही चाहिये,

आरती करनी ही चाहिये और रामनामकी धुन लगानी ही चाहिये । यदि मेरा अहिंसाका धर्म स्वीकार किया जाय तो मैं नम्र और विनीत निःशस्त्र स्त्री-पुरुषोंका, जिनके पास एक लाठी भी न हो एक जुलूस निकालनेकी सलाह दूँगा । वे रामनामको रटते जायँगे और यदि यही झगड़ेका विषय है तो वे मुसलमानोंका सारा गुस्सा अपने सिर उठा लेंगे । यदि वे मेरे सूत्रको स्वीकार न करना चाहते भी हों तो उन्हें रामनामकी रट लगाते रहना चाहिये और अंततक लड़ लेना चाहिये । परन्तु दंगा हो जानेके डरसे या अदालतके हुक्मसे बाजा रोक देना धर्मको ही इनकार करना है ।

लेकिन इस प्रश्नका दूसरा पहलू भी है। लगातार बाजा बजाना, और नमाजके वक्त मस्जिदके पाससे जाते हुए भी हमेशा बाजा बजाना क्या यह धार्मिक आवश्यकता है ? क्या रामनामकी रट लगाना भी ऐसी ही आवश्यक वस्तु है ? आजकल सिर्फ मुसलमानोंको चिढ़ानेके लिए ही बहुतसे जुलूस निकालनेका रिवाज हो गया है, नमाजके वक्तपर ही आरती की जाती है और रामनामकी धुन लगायी जाती है और वह भी इसलिए नहीं, क्योंकि वह धार्मिक आवश्यकता है बल्कि इसलिए कि लड़नेका अवसर प्राप्त हो; यह जो आक्षेप किया जाता है उसका क्या जवाब है ? यदि ऐसा ही होता है, तो उससे तो अपने ही मतलबकी हानि पहुंचेगी और धार्मिक उत्साह न होनेके कारण अदालतका हुक्म, फौजी सिपाहियोंका आना या ईटोंकी वर्षाके कारण उस धार्मिक क्रियाका जरामें ही अंत हो जायगा ।

इसलिए पहले यह स्पष्ट कर लेना चाहिये कि उसकी आवश्यकता है या नहीं । जरासी भी उत्तेजना न दिखानी चाहिये । आपसमें समझौता करनेके लिए भरसक कोशिश करनी चाहिये । और जहाँ समझौता होना संभव नहीं है वहाँ विपक्षियोंका और उनके भावोंका ख्याल करके हमें अदालतकी मददके बिना ही एक ऐसी हद बांध लेनी चाहिये कि उससे फिर हम किसी प्रकारसे भी पीछे न हटें । अदालतका मनाही हुक्म होनेपर भी हमें उस हदपर कायम रहनेके लिए लड़ना चाहिये । कोई कभी भी मुझपर यह दोष न लगावे कि मैं कमजोर बननेकी सलाह देता हूँ । या कमजोरोंको उत्तेजना दे रहा हूँ या किसीसे सिद्धान्त छोड़ देनेके लिए कहता हूँ । लेकिन मैंने यह अवश्य कहा है और आज भी कहता हूँ कि हरएक मोटी-मोटी बातको सिद्धान्तका रूप देकर उसे बड़ा महत्त्व नहीं दे देना चाहिये ।

हिन्दी-नवजीवन
२२ अक्टूबर, १९२५

एक प्रश्न-माला

जब मैं लखनऊमें था वहाँके 'इंडियन डेली टेलीग्राफ' के सहायक संपादकने मुझे उत्तर देनेके लिए एक प्रश्नमाला दी थी। उनके प्रश्न बड़े दिलचस्प हैं इसलिए मैं उनमेंसे बड़े महत्त्वके प्रश्नोंको मेरी तरफसे उनका उत्तर देकर यहाँ प्रकाशित कर रहा हूँ।

१—"क्या आप एक सालके भीतर या किसी निश्चित समयके अंदर ही अंदर सामुदायिक सविनय-भंग आरंभ करनेका कोई विचार रखते हैं?"

वर्तमान समयमें मैं ऐसी कोई आशा नहीं रखता हूँ कि किसी मर्यादित समयके अंदर ही मैं सामुदायिक सविनय-भंगका आरंभ कर सकूँगा।

२—"क्या आप इस कहावतको मानते हैं कि परिणामसे ही साधनोंकी उचितता समझी जाती है?"

मैंने इस कहावतको कभी भी नहीं माना है।

३—"एक सालके पहले आपके बारेमें यह कहा गया था कि आप सविनय भंग आरंभ करना चाहते थे और एक मरतबा आप उसका आरंभ कर चुके कि फिर कहीं कहीं अशांत दंगे हो भी जाँय तो भी आप उसको बन्द न करेंगे। जनताके लिए सम्पूर्ण अहिंसाका पालन असम्भव होनेके कारण क्या आप हिंसाका भी, कुछ अंशोंमें, जोखिम (उतना कम जितना कि आपसे हो सकता है) उठा लेंगे और सविनय-भंगका आरम्भ करेंगे?"

एक साल पहले मैंने जो कहा था और आज जो फिर दुबारा कहना चाहता हूँ वह यह है कि अब मैं जिस किसीका कुछ भी आरम्भ करूँगा उसका आरम्भ मुझे आशा है कि अब शर्तिया आरम्भ न होगा लेकिन स्वतंत्र होगा और फिर उसमें जरा भी पीछे हटना न होगा। मैंने सविनय-भंगको जब भी रोक दिया है उस समय उसे सिर्फ किसी अशांत दंगेके हो जानेके कारण ही नहीं रोक दिया है। मैंने इस बातको जान लेनेके बाद ही उसे रोक दिया है कि महासभाके लोगोंने ही, जिन्हें इस बारेमें अधिक विचारशील होना चाहिये था, ऐसी ज्यादतीका आरम्भ किया था और उसे उत्साहित किया था। किसी भी प्रकारकी अशांतिके कारण, जैसे कि मोपला-कांडके कारण, सविनय-भंग रुक नहीं सकता था। लेकिन चौरी-चौराके कारण उसे रुकना पड़ा क्योंकि महासभावादियोंका उसमें हाथ था।

४. "कलकत्तेके दंगोंमें आपने सारा दोष हिन्दुओंके मत्थे मढ़ा था। लेकिन मारवाड़ियोंके मण्डलने या किसी हिन्दू-संस्थाने आपकी रायके खिलाफ उज्र किया था और हिन्दुओंको जोश दिलानेमें मुसलमानोंका काफी दोष था यह साबित करनेके लिए प्रमाण भी

पेश किये थे। आपने यह वचन दिया था कि आपको यदि अपनी रायमें भूल मालूम होगी तो आप उसे जाहिरा तौरपर स्वीकार कर लेंगे। तो क्या आप अब अपनी पहलेकी रायको बदलकर उसे जाहिर करेंगे ?"

मुझे अपनी पहली राय बदलनेके लिए अबतक कोई कारण नहीं मिला है।

५. "आप म्युनिसिपल्टी (जो आजकल स्वराज-दलके हाथोंमें है) के दिये हुए अभिनन्दन-पत्रको तो स्वीकार करनेके लिए राजी हो गये, लेकिन आपने हिन्दू-सभाके अभिनन्दन-पत्रको क्यों टाल दिया ? आप हिन्दू होकर भी हिन्दू जनताके प्रतिनिधि संस्थाके प्रति ऐसा अनुचित भेद-भाव क्यों रख रहे हैं?"

मैंने लखनऊकी हिन्दू-सभाके अभिनन्दन-पत्रको टाल नहीं दिया है बल्कि मैंने तो उनसे यह कहा था कि जब मैं लखनऊकी मुलाकातको आऊँगा तब मैं उनके अभिनन्दन-पत्रको खुशीसे स्वीकार करूँगा। म्युनिसिपल्टीके स्वराजी सभासद इसके बाद मुझे मिले और लखनऊ होकर मैं जा रहा था उस दरम्यान ही उनके अभिनन्दन-पत्रको स्वीकार करनेके लिए मुझसे आग्रह करने लगे। हिन्दू-सभा भी वैसा कर सकती थी। उसमें टाल देनेकी तो कोई बात थी ही नहीं। मैंने तो सिर्फ यही ख्याल किया था कि जब लखनऊ से होकर सिर्फ जा ही रहा था उस समय वे मुझे अभिनन्दन-पत्र देना नहीं चाहेंगे, खास करके क्योंकि जब वे लखनऊमें हिन्दू-मुस्लिमोंके तनाजेके बारेमें मुझसे चर्चा करना चाहते थे। सीतापुरमें मैंने हिन्दू-सभाके अभिनन्दन-पत्रको बड़ी खुशीसे स्वीकार किया था।

६. "अमीनाबाद पार्कके आरती-नमाजके प्रश्नकी तलवार एक सालसे ज्यादा अरसा हुआ लटक रही है। यदि दोनों दल आपके निर्णयको कुबूल करनेका वचन दें तो क्या आप उस प्रश्नपर अपना निर्णय जाहिर करनेकी कृपा करेंगे ?"

मैंने अपने संयुक्त प्रान्तकी यात्राके वर्णनमें इस मामलेकी चर्चा की है।

७. "एक हिन्दूकी हैसियतसे इस मामलेमें आपकी क्या राय है?"

मुझे सब बातें मालूम नहीं हैं इसलिए मैं कोई राय नहीं दे सकता हूँ। यदि मैंने पहले हीसे अपनी राय कायम कर ली होती तो मैं, दोनों दल मेरा निर्णय कुबूल करनेके लिए राजी भी होते तो भी, उनका पंच बननेके लिए कभी भी राजी नहीं हो सकता था।

८. "मोहर्रमके दिनोंमें या ऐसे ही दूसरे अवसरोंपर मुसलमानोंके बाजा बजानेका हिन्दू लोग तो कभी विरोध नहीं करते हैं, तो फिर हिन्दुओंके बाजोंका मुसलमानोंको क्यों विरोध करना चाहिये ? क्या हिन्दुओंको हर उपायसे अपने धार्मिक हकोंका रक्षण करनेका हक नहीं है ?"

इस प्रश्नमें दो प्रश्न ऐसे हैं जिनका असल हाल मुझे मालूम नहीं है । रहा तीसरा प्रश्न । हिन्दुओंको अपने धार्मिक हकोंकी हर एक प्रकारसे नहीं, लेकिन प्रत्येक सत्ययुक्त और मेरी रायमें अहिंसात्मक साधनोंसे ही उनकी रक्षा करनेका हक है ।

९. "पटनामें दो भगायी गयी लड़कियां आपके सामने लायी गयी थीं । एक हिन्दूकी हैसियतसे सारे हिन्दुस्तानमें लड़के, लड़कियोंको भगा ले जानेकी जो बदी फैल रही है उसके खिलाफ आप हिन्दुओंको क्या करनेकी सलाह देंगे ?"

मैंने गत सप्ताहमें इस नाजुक प्रश्नकी चर्चा की है ।

१०. "क्या हिन्दुओंका, मुस्लिमोंके खिलाफ कोई आक्रमणात्मक कार्य करनेके लिए नहीं लेकिन अपने धार्मिक हकोंकी रक्षा करनेके लिए और उनके लड़के लड़कियोंको भगा ले जानेकी बदी जैसी बदियोंको दूर करनेके लिए और हिन्दू जातिकी शारीरिक, सामाजिक, नैतिक और भौतिक उन्नतिके लिए उनका अपना संगठन करना ठीक न होगा ?"

मुझे यह ख्याल नहीं होता है कि कोई भी शख्स इस प्रश्नमें जिस प्रकारके संगठनकी बात कही गयी है वैसे संगठनका विरोध कर सकता है । मैं तो अवश्य उसका विरोध नहीं कर रहा हूँ ।

११. "मौलाना शौकतअलीने आपके द्वारा बिहार खिलाफत कान्फरेन्सको एक संदेशा भेजा था । यदि लाला लाजपतराय और पं० मालवीयजी किसी हिन्दू-सभाको आपके द्वारा कोई संदेशा भेजना चाहें तो क्या आपको उसमें कोई आपत्ति होगी ?"

मौलाना शौकतअलीने मेरे द्वारा कोई भी सन्देशा बिहार खिलाफत कान्फरेन्सको नहीं भेजा है । यदि उन्होंने ऐसा किया भी होता तो भी यदि वह सन्देशा आपत्तिजनक न होता तो मैं अवश्य ही उनके सन्देशेको पहुँचा देता । यदि पं० मालवीयजी और लाला लाजपतराय मुझे ऐसा ही काम सौंपें तो मैं उसे भी अवश्य ही करूँगा ।

हिन्दी-नवजीवन
२९ अक्टूबर, १९२५

❀

हमारी दुर्बलता

हकीम साहब अजमल खाँ और डा० अन्सारी यूरपकी और उसके साथ सीरियाकी भी लम्बी यात्रा पूरी करके अभी ही लौटे हैं । उन्होंने मुझे नीचे लिखा पत्र भेजा है—

"दक्षिण सीरियामें जहाँ कि ड्रूस लोग रहते हैं और जहाँ इन पीड़ित लोगोंके द्वारा फ्रांसीसियोंका अर्थात् राष्ट्रसंघकी आज्ञासे अधिकार प्राप्त राज्यका, सशस्त्र विरोध

किया जा रहा है, वहां अभी जो घटनाएं हुई हैं, उनसे फ्रांसीसी अधिकारियोंकी भयंकरता प्रकट होती है। दो दिन पहले पेलेस्टीनसे वहाँके लोगोंकी प्रसिद्ध और प्रभावशाली संस्था लजनातूल तन्फीभीयाके मंत्री सैयद जलालुद्दीन अलहुसैनीकी तरफसे जो तार मिला है उसमें लिखा है कि दमिश्कके शहरको फ्रांसीसियोंके आक्रमणसे और बारुद गोलेसे बड़ा नुकसान पहुंचा है और उससे असंख्य मनुष्य मर गये हैं। ब्रिटेनके वर्तमान-पत्रोंमें जो खबरें इसके मुतल्लिक छपतीं थीं उससे भी यह पता चलता था कि सीरियाकी हालत खराब है, लेकिन पेलेस्टीनके इस तारसे और काहिरासे रूटरके तारसे, उसके बाद मिला है, यह मालूम होता है कि डूस लोगोंके देशपर और दमिश्कके लोगोंपर फ्रांसीसी लोग बड़ा ही अमानुष जुल्म कर रहे हैं।

इन भयंकर जुल्मोंके अलावा सीरियाकी हमारी यात्रामें भी हमने कितनी ही बातें ऐसी देखीं जिससे कि फ्रान्सीसियोंकी निर्दयता और सीरियाके अपने अधिकारके प्रान्तके लोगोंके प्राथमिक हकोंके प्रति उनकी निष्ठुरता साबित होती है। हमने अपने अनुभवोंका वर्णन हिंदुस्तानी छापोंमें प्रकाशित किया है लेकिन हमदर्दमें छपे उन उर्दू रिपोर्टोंको पढ़नेकी आपकी तकलीफको बचानेके लिए हम उनमेंसे सीरियाकी वर्तमान स्थितिसे संबंध रखनेवाली महत्वकी बातोंका सारांश ही यहां देते हैं। जब सीरियाके संबंधमें राष्ट्र-संघने फ्रेंच सरकारको आज्ञा पत्र दिया उस समय फ्रेंच सरकारने और हाई कमिश्नरने जाहिरा तौरपर यह जाहिर किया था कि वे सीरियाको उसकी आंतर्व्यवस्थाके संबंधमें पूर्ण स्वतंत्रता देंगे। सीरियाको कितने ही स्वतंत्र प्रान्तोंमें बांट दिया जानेको था और उनमें हर एकमें एक गवर्नर जो लोगोंकी तरफसे चुना गया हो रहनेवाला था। उसको सलाह देनेके लिए लोगोंकी तरफसे चुना गया प्रतिनिधि मंडल भी रक्खा जाने वाला था। लेकिन बाहर दिखानेके लिए लिबेनन और डेमास्कके प्रान्तोंमें इन वादोंपर अंशतः अमल किया गया लेकिन डूस लोगोंके देश होरनको न तो प्रान्तिक स्वतंत्रता दी गयी और वहां लोगोंकी तरफसे चुना गया कोई प्रतिनिधि मंडल और उसका प्रमुख ही रखा गया। लेकिन उनकी इच्छाके विरुद्ध उनपर एक फ्रान्सीसी अफसर कैप्टन कारबियोलेटको रक्खा गया था और जब लोगोंने उसके विरुद्ध अपने भाव प्रकट किये और अपने प्रतिनिधियोंको उनके पास भेजा तो उनका अपमान किया गया और उनके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध लोगोंको जाहिरा तौरपर कोड़े मारे गये और उन्हें कैद कर लिया गया और उनकी औरतोंके साथ भी बुरी तरहसे पेश आये।

कैप्टन कारबियोलेट जो फ्रेन्च कांगोसे आये थे उन्होंने, फ्रेन्च कांगोके गरीब निवासियोंपर फ्रान्सीसी लोगोंने जो-जो जुल्म किये थे वे सब जुल्म यहांपर भी किये। लेकिन डूस जाति पुरानी है स्वाभिमान रखती है और बहादुर और लड़ायक है इसलिए उन्होंने उसका विरोध किया और हथियार उठानेके लिए भी मजबूर हुए। उन्होंने फ्रेन्च लश्करको बड़ा नुकसान पहुंचाया है और अबतक उनके देशपर किये गये फ्रान्सीसियोंके आक्रमणको रोकनेके प्रयत्नमें सफल भी हुए हैं। लेकिन सीरियाके दूसरे विभागोंमें जैसे कि डेमास्क और अलेप्पोमें फ्रान्सीसियोंकी तरफसे जो कार्य किये जाते हैं उनसे इन देशोंमें भी गदरके भाव

फैल रहे हैं। ऊपर जिस तौर बात कही गयी है उसमें डेमास्कके लोगोंपर अभी अभी जो जुल्म किये गये हैं उनका वर्णन है।

फ्रेन्च सरकार अनुचित और अप्रमाणिक साधनोंका भी उपयोग कर रही है और इस देशमें कागजके नोट चलाकर उसका सुवर्ण और सारा धन छीने ले जा रही है। वह धीरे-धीरे उस देशके आर्थिक साधनोंका महत्त्व घटा रही है और उसका नाश कर रही है जिसका परिणाम यह होता है कि लोग बेचारे गरीब और साधन-हीन बन रहे है। और इस लूटको पूरा करनेके लिए वे शहर और गावोंके लोगोंसे, उनको सजा और जुर्माना करके भी सुवर्ण छीन रहे हैं।

हम आपको यह इसलिए लिख रहे हैं कि इन एशियावासी भाइयोंके लिए आपकी सहानुभूति प्राप्त हो और महासभाके प्रमुखकी हैसियतसे आपसे हमलोग यह प्रार्थना करें कि राष्ट्र संघको, जिसने फ्रान्सको सीरियाकी हुकूमतके सबंधमें आज्ञा-पत्र दिया है, आप एक तार भेजें और दूसरी महासभा समितियोंको भी ऐसा ही करनेके लिए कहें। हमलोग यह जानते हैं कि भारतकी वर्तमान स्थिति ऐसे किसी कार्यके लिए अनुकूल नहीं है फिर भी सम्पूर्ण विचारके बाद हमारी यह राय कायम हुई है कि भारतवासी, मुसलमान और एशिया निवासी होनेके कारण हमें तमाम कष्टपीड़ित एशियानिवासियोंके प्रति सहानुभूति दिखानी चाहिये और उनके साथ मित्रताका संबंध जोड़ना चाहिये जिससे हमें भी लाभ हो और उन्हें भी।"

महासभाकी तरफसे राष्ट्रसंघको तार भेजनेकी उनकी सलाहको मैं किसी प्रकार भी स्वीकार न कर सका इसलिए मैंने उन्हें निम्नलिखित उत्तर भेजा है।

"आपका पत्र, जिसपर आपके और हकीम साहबके दस्तखत हैं, मुझे मिला है। महासभाका प्रमुख राष्ट्रसंघको तार भेजें तो इससे क्या लाभ होगा? पिंजड़ेमें बन्द सिंहकासा मेरा हाल है, फर्क सिर्फ इतना ही है कि सिंह व्यर्थ ही स्वतंत्र होनेके लिए हाथ-पैर पछाड़ता है, दांत पीसता है और लोहेके सीकचोंको तोड़ डालनेका प्रयत्न करता है लेकिन मैं अपनी मर्य्यादाओंको जानता हूं और इसलिए इस प्रकार हाथ-पैर पछाड़नेसे और दांत पीसनेसे इनकार करता हूं। यदि हमारी मददके लिए हमारेमें ऐसी कोई शक्ति होती तो मैं आपकी सूचनाके अनुसार अवश्य ही तार भेज देता। 'यं० इं०'में जिन बातोंका उल्लेख मैं नहीं करता हूं वे मेरे हृदयमें पड़ी गहरी हैं और वे जिन बातोंको मैं विज्ञापित करता हूं उनसे कहीं अधिक वजनदार और महत्त्व-की हैं। लेकिन मैं उस अदृश्य शक्तिके सामने उन्हें रोजाना जाहिर करना कभी भी नहीं भूलता हूं। जब मैं चारों ओरके वायुमण्डलका विचार करता हूं तब मैं दुःखी होता हूं और ऊब जाता हूं और फिर जब हृदयके अन्दरके शांत गम्भीर नादको सुनता हूं उस समय मुझे आशा दिखायी देती है और मेरे चारों ओर भीषण ज्वालाएं दिखायी देती हैं फिर भी मैं मुस्कुराता रहता हूं। कृपया हमारी असहायावस्थाका विज्ञापन करनेसे आप मुझे बचा लेंगे।

लेकिन इस मामलेमें दूसरा अच्छा कार्य जो मैं कर सकता हूँ वह उनके पत्रको और मेरे उत्तरको प्रकाशित करना है। जबतक किसी नैतिक या भौतिक शक्तिकी सहायता न हो तबतक मैं यह नहीं मानता कि प्रार्थना करनेसे कुछ भी लाभ न होगा। अपनी प्रार्थनाको सफल करनेके लिए प्रार्थना या अर्जी करनेवाला जब कुछ कार्य करनेका और उसके लिए कुछ त्याग करनेका निश्चय कर लेता है तभी नैतिक शक्ति उत्पन्न होती है। बच्चे भी सहज ही इस सिद्धान्तको समझ लेते हैं। वे रोते हैं और चिल्लाते हैं और शैतान बच्चे तो अपनी माँको मारनेमें भी नहीं हिचकिचाते। जबतक हम इस सिद्धान्तको समझकर उसपर अमल करनेके लिए तैयार नहीं हैं तबतक प्रार्थना करके हम यदि और कुछ नहीं तो महासभाकी ओर अपनी हंसी अवश्य ही करावेंगे।

यदि हम चाहें तो भी शैतान बच्चोंकी तरह शैतान नहीं हो सकते हैं। लेकिन यदि हम चाहें तो दुःख अवश्य सहन कर सकते हैं। मैं चाहता हूँ कि सीरियापर जो जुल्म और डायरशाही चलायी गयी है उसके संबंधमें हमलोग भारतवासी, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी और एशियानिवासीकी हैसियतसे कैसे लाचार हैं इसका अनुभव करें। हमारी लाचारीका जब हमें निश्चयात्मक ज्ञान होगा तब हम शायद उन जानवरोंका अनुकरण करना सीखेंगे जो कि तूफान और वर्षाके समय एक जगह इकट्ठे होते हैं और एक दूसरेसे गरमी और हिम्मत पाते हैं। वे उस तूफानके देवतासे उसे रोकनेके लिए व्यर्थ प्रार्थना नहीं करते हैं किन्तु सिर्फ उसका उपाय ही कर लेते हैं।

और हम हिन्दू मुसलमान तो एक दूसरेसे लड़ते हैं और दिनबदिन दोनोंका भेद बढ़ता ही जा रहा है। हमलोगोंने अभी चरखेके रहस्यको नहीं समझा है और जो समझते हैं वे न कातनेके लिए कुछ न कुछ बहाने ढूंढ़ निकालते हैं। हमारे चारों ओर तूफान है और फिर भी हम एक दूसरेसे हिम्मत और गर्मी (सहानुभूति) प्राप्त करनेके बजाय तूफानके देवताओंसे अपना हाथ रोक लेनेके लिए प्रार्थना करना और केवल कांपते ही रहना पसंद करते हैं। यदि मैं हिन्दू-मुसलमानोंमें ऐक्य नहीं स्थापित कर सकता हूं तो कमसे कम मुझे इतनी बुद्धि अवश्य है कि मैं दयाकी भिक्षा मांगनेके लिए किसी प्रार्थना-पत्रपर दस्तखत भी नहीं करता हूँ।

और राष्ट्र-संघ क्या है? सच पूछा जाय तो क्या वह सिर्फ फ्रान्स और इंगलैण्ड ही नहीं है? क्या दूसरी शक्तियोंका कुछ भी वजन पड़ता है? क्या फ्रान्ससे, जिसने समानता, न्याय और भ्रातृ-भावके अपने आदर्शोंको त्याग दिया है, प्रार्थना करनेसे कुछ भी लाभ होगा? उसने जरमनीका न्याय नहीं किया है, रीफोंमें और उनमें भ्रातृ-भाव नहीं है और सीरियामें वह समानताके सिद्धान्तको कुचल रही है। यदि हमें इंगलैण्डसे प्रार्थना करनी है तो राष्ट्र-संघ तक जानेकी हमें कोई जरूरत नहीं है। वह तो हमारे घरके ही पास है। वह तो सिधा इसके

कि कुछ दिनोंके लिए देहलीमें उतर आये शिमलाकी ऊंची पहाड़ियोंपर बैठी रहती है। लेकिन उससे प्रार्थना करना वैसा ही है जैसा कि आगस्टसके खिलाफ सीजरके पास प्रार्थना करना।

इसलिए हमें सत्यको उसके खुले रूपमें देखना चाहिये और राष्ट्रसे अपना फर्ज अदा करनेके लिए प्रार्थना करना सीखना चाहिये। भारतके जरिये ही सीरियाका दुःख दूर होगा। यदि हम अपनी बड़ाईकी कीमत नहीं कर सकते हैं तो हमें अपना छोटापन स्वीकार कर लेना चाहिये और चुप रहना चाहिये। लेकिन हमें छोटे बननेकी जरूरत नहीं है। हमें एक काम तो अच्छी तरह करना चाहिये या तो अपने भाईसे पशुओंकी तरह आखिर तक लड़ लेना चाहिये या हमें मनुष्योंकी तरह विशाल सहयोगके आधार पर दुनियांको यह सिखाना चाहिये कि अपनेसे जो कमजोर हैं उन्हें चूसना अनुपयोगी है, इतना ही नहीं वह पाप है। और ऐसा करोड़ोंका सहयोग केवल चर्खेसे ही संभव हो सकता है।

हिन्दी-नवजीवन
१२ नवम्बर, १९२५

❋

हिन्दू-मुसलिम ऐक्य दल

हाल ही में बेगम मुहम्मद जहुद्दीन मकाईने, बंगलोरकी नारी-शारदा-समितिमें एक भाषण दिया था। एक भाईने उनके मनोरंजक भाषणकी एक प्रति मेरे पास भेजनेकी कृपा की है। मैं उसका कुछ अंश नीचे देता हूं—

"हिन्दू-मुसलिम ऐक्यके लिए की हुई सेवाके समान पवित्र दूसरी समाज-सेवा नहीं है, क्योंकि इससे केवल भारतमाताको ही लाभ नहीं पहुंचता है, बल्कि मानव जातिको भी। भारतवर्षकी इन दो बड़ी-बड़ी कौमोंमें अनैक्य और घृणाके बीज बोनेसे बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं हो सकता।

"यदि हिन्दुओं और मुसलमानोंके ईश्वर अलग-अलग होते तो इन नीचे गिरानेवाले अपमान-जनक दंगोंकी बात समझमें भी आती, परन्तु ईश्वर अलग-अलग तो है नहीं। दोनों उसी एक ईश्वरकी पूजा करते हैं और तो भी उसी ईश्वरके नामसे, मसजिदोंके आगे बाजा बजानेकीसी तुच्छ बातको लेकर अपना कर्त्तव्य भूल जाते और एक दूसरेको मार डालनेको तैयार हो जाते हैं।

"किसी पहुंचे हुए सूफी फकीरने गाकर ईश्वरसे कहा है—'हिन्दुओंने कोशिश की और तुम्हें मूर्तिमें पाया। पारसी, पवित्र अग्निके सामने तुम्हारा ही गुणानुवाद करता है। नास्तिकने भी तुम्हें प्रकृतिमें देखा है। कोई भी तुम्हारी हस्तीसे इंकार अबतक नहीं कर सका

है।' इसलिए, हिन्दू और मुसलमान आज जिस प्रकार लड़ रहे हैं, यह पागलपन नहीं तो मूर्खता जरूर है। यह जान लेना ही होगा कि इस्लाम, सलामत और तरक्कीका पैगाम लेकर आया था, लड़ाईका डंका बजाता हुआ नहीं। खुदाके सभी पैगम्बरों और नबियोंको यह जानता है। यह अकेला ही मजहब है जिसने "खुदाकी रब्बानियत और इन्सानकी अखवत"के उसूलोंको अमली शक्ल दी है और सारी इन्सानियतको मद्देनजर रखा है और सब किसीको एक ही जिस्मके अलग-अलग अजो समझा है और बतलाया है कि किसी दूरके अजोंको भी तकलीफ पहुंचनेसे सारे जिस्मको बेचैनी हो जाती है। संसारके किसी भी हिस्सेमें कोई भी मुसलमान इन पाक उसूलोंके खिलाफ यदि कोई काम करे तो उससे हरएक सच्चे मुसलमानको शर्मिन्दा होना चाहिये और वह शर्मिन्दा होता ही है।

"पवित्र हिन्दू-शास्त्र भी इन्हीं सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते हैं और हिन्दू-धर्म, उनके अभ्यास और पालनकी आज्ञा देता है। हिन्दुओं और मुसलमानोंको चाहिये कि वे संगठित होवें, किन्तु आत्मरक्षाके लिए नहीं—यह बहुत ही तुच्छ आदर्श है जो गिरते गिरते, आक्रमण, असहनशीलता और उकसानेका रूप धारण कर लेता है—किन्तु उनके अपने सहधर्मियोंके, दूसरे धर्मवालोंपर आक्रमण तथा अत्याचार करके, अपने-अपने धर्मोंके उच्च सिद्धान्तोंकी अवहेलनाको रोकनेके लिए। बस, आजसे हिन्दू-मुसलिम-ऐक्यका पवित्र दल बन जाय और उसके सदस्य हिन्दू और मुसलमान-स्त्री पुरुष बनें, जिसमें गड़बड़ीके पहले लक्षणके प्रकट होते ही मुसलमान अपने कुटुम्बी और मसजिदोंकी चिन्ता न करें, बल्कि अपने सहधर्मियोंके हाथों अपनी जान देकर भी, हिन्दुओंके घरों और मन्दिरोंकी हिफाजतकी फिक्र करें और हिन्दू भी मुसलमानोंके घरों और मसजिदोंकी रक्षाके लिए ठीक यही करें। हर एक हिन्दुस्तानी माताको यह देखना चाहिये कि उसके बच्चे इस पवित्र कामके लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दें। सभानेत्री महोदयाको इसका विश्वास था कि यह कठिन समस्या हल हो सकेगी और इन नामधारी नेताओं और साम्प्रदायिक हितके रक्षकोंका पेशा बन्द हो जायगा।"

ये भाव सराहनीय हैं, परन्तु इन महानुभाव महिलाके बताये हुए दलके बनाने लायक वातावरण तो आज कहीं नहीं दिखायी देता है।

हिन्दी-नवजीवन
२ सितम्बर, १९२६

अकर्ममें कर्म

यदि जरा भी मुमकिन होता, या मेरी रायमें ऐसा करना उचित होता तो मुझे डा० सैयद महमूद तथा अन्य मित्रोंके द्वारा प्रकाशित सार्वजनिक अपीलकी बात मान लेनेमें सबसे अधिक प्रसन्नता होती। उस अपीलमें दस्तखत करनेवालोंका यह सोचना भूल है कि मैं किनाराकशी कर बैठा हूं। मैंने तो एक सालके वास्ते उन सार्वजनिक कामोंके लिए अहमदाबादसे बाहर जाना बन्द किया है जिनमें मेरे बिना काम चल सकता है, और वह साल तो अब खत्म होनेपर आया। इस किनाराकशीकी वजूहात तो मैंने सालके शुरूमें ही पूरे तौरपर बयान कर दी थी। उस वक्त मेरी सेहत और आश्रमकी जरूरतने यह लाजिमी कर दिया था कि मैं तकलीफदेह सफर और मशक्कततलब मुआमलातसे कुछ फुरसत लूँ। यदि मैंने कांउसिलके कामोंमें दखल नहीं दिया, तो वह इसलिए कि कदाचित् मेरी रुचि उस ओर नहीं है। और कांउसिलोंके द्वारा हमको स्वराज मिल सकता है—मेरी ऐसी श्रद्धा है ही नहीं। मैंने हिन्दू-मुसलिम झगड़ोंमें हाथ डालना इसलिए बन्द कर दिया कि मेरा पक्का यकीन है कि ऐसे मौकेपर हाथ डालनेसे नुकसान ही पहुंच सकता है। अब रहे अस्पृश्यता, राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थायें और चरखा। इन तीनोंके लिये मैं जितना कर सकता हूं उतना कर ही रहा हूँ।

इसलिये मैं उन मित्रोंसे यह कहनेका साहस करता हूँ कि जो उन्हें मेरा अकर्म प्रतीत हो रहा है, वह वास्तवमें एकाग्र कर्म है। इन मित्रोंकी निराशा मुझे किसी भी रूपमें पसन्द नहीं है। ये हिन्दू-मुसलमानके झगड़े किसी अगम्य रीतिसे स्वराजके लिये लड़ते ही हैं। उन दोनोंमेंसे हर एक फरीक स्वराज्यकी आमदसे आगाह है। इन दोनोंमेंसे हर एककी यह कोशिश है कि वह स्वराजके आनेके समय तक तैयार और लायक निकले। हिन्दू सोचते हैं कि हम मुसलमानोंकी बनिस्बत जिस्मानी ताकतमें कमजोर हैं और मुसलमान ख्याल करते हैं कि हम शिक्षा और भौतिक ऐश्वर्यमें कम हैं। वे दोनों वही कर रहे हैं जो कि आजतक कमजोर लोगोंने किया है। यह लड़ाई चाहे जितनी अशुभ क्यों न हो, पनपनेकी निशानी है। यह अंग्रेजोंके 'वार्स आफ दी रोजेज' की तरह घरेलू लड़ाई है। उससे एक बड़ा शक्तिशाली राष्ट्र तैयार होगा। खूँरेजीसे एक बेहतर दवा सन् १९२० में बतायी गयी थी, लेकिन हम उसे जज्ब न कर सके। लेकिन लाचारी और गैर मर्दानगीसे तो खूँरेजी अच्छी ही है।

यहाँ तक कि मोतीलालजी तथा लालाजीके बीचमें जो भद्दा द्वन्द्वयुद्ध चल रहा है, वह भी उसी लड़तका एक खंड है। हिन्दुस्तानकी आजादीके दुश्मनोंको इन नफरतकातपर फूले न समाने दो। इसके बहुत कब्ल कि उनका यह खुशियाँ मनाना

खत्म हो, ये देश-भक्त फिर एक ही झंडेके नीचे काम करते हुए दिखायी देंगे। ये दोनों सज्जन देशके प्रेमी हैं। लालाजीको जातीय दृष्टिसे काम करनेसे बढ़कर और कुछ चारा नहीं दिखायी देता। पंडितजीको इसकी बू तकसे चिढ़ है। यह कौन कहेगा कि इनमेंसे फलां ठीक कह रहा है ? दोनों प्रवृत्तियाँ प्रचलित वायुमंडलकी प्रतिध्वनि मात्र हैं। लालाजी, जो कि राजकीय क्षेत्रमें उतरते ही स्वराज शब्द जिह्वा-पर रक्खे हुए आये थे, आज उससे घृणा कैसे कर सकते हैं ? उनका विचार जातीय दृष्टि रखकर ही स्वराजतक पहुंचनेका है, क्योंकि उनकी धारणा है कि यह हमारे विकासमें अनिवार्य श्रेणी है। पंडितजीका ख्याल यह है कि यह राष्ट्रीयताके रास्तेको बन्द करनेवाली चीज है और इस कारण वे उसपर तवज्जोह देना नहीं चाहते।

ठीक इसी भांति जिस भांति कि मनोविचारपर प्रभाव डालकर उपचार करनेवाले, यह देखते हुए कि नीरोगता न कि रुग्णता जीवनका नियम है, रोगपर ध्यान नहीं देते। राष्ट्रका काम न तो सर अब्दुर रहीम और न हकीम साहेब अज-मलखाँके बिना चल सकता है।

सर अब्दुर रहीम जिन्होंने गोखलेके साथ-साथ जब कि वे इस लिंग्टन कमीशनके सदस्य थे, गुरुतापूर्ण नोट लिखा था, अपने देशके दुश्मन नहीं हैं। यदि उनका यह ख्याल है कि हिन्दुओंके साथ मुसलमानोंका बराबरी दर्जेपर स्पर्धा किये बिना मुल्क तरक्की नहीं कर सकता, तो उनको कौन दोषी ठहरा सकता है ? मुमकिन है कि वे गलत तरीके अख्तियार किये हुये हों, लेकिन वे आजादीके ख्वाहां जरूर हैं। इसलिये जब कि मैं इन सब प्रकारके विचारवालोंके लिये अपने मस्तिष्कमें स्थान रखता हूं, तब मेरे लिये तो केवल एक ही मार्ग खुला रह जाता है मैं जातीय दृष्टिको एक जरूरी दर्जे की हैसियतसे भी, नहीं मानता या यों कह लूँ कि उस श्रेणीसे होकर जानेकी क्षमता मुझमें नहीं है। इसलिये जबतक यह तूफान साफ नहीं हो जाता और जबतक पुनः निर्माणका काम फिरसे आरंभ नहीं हो जाता, तब-तक मुझे खामोश ही रहना चाहिए।

मैं काउंसिलके अन्दरकी जिद्दोजिहदको भी महफूज फासलेपर रहकर ही देख सकता हूं। मैं, उनपर एतकाद रखते हुए, जोशाना ढंगसे काउंसिलके कामको करने वालोंको इज्जतकी नजरसे देखता हूं। भारतका शिक्षित समाज ही भिन्न दलोंमें फूटा हुआ है। मैं इन दलोंको एक जां लानेकी अपनी अशक्ति स्वीकार करता हूँ। उनका तर्जे अमल मेरा काम करनेका ढंग नहीं है। मेरा तरीका धुर नीचेसे चलकर शिखर तक पहुंचनेका है। बाहरवालोंको यह बतानेवाली धीमी चाल मालूम होती है। वे शिखरसे पेंदीकी ओर जा रहे हैं। और यह ढंग बहुत मुश्किल तथा उलझा हुआ है। वे करोड़ों आदमी, जिनकी ओरसे उस अपीलपर हस्ताक्षर करनेवालोंने लिखनेका दावा किया है, इस दलबंदीसे बिलकुल उदासीन है। और उनको उसमें कोई रस भी नहीं है।

उनके लिये तो चरखा ही सब कुछ है। एक कहावत है कि ईश्वरका चर्खा धीमे धीमे लेकिन पक्का चलता है। मैं ईश्वरके उन्हीं छोटे-छोटे चरखोंको चलवानेमें लगा हुआ हूं। उन हस्ताक्षर-कर्ताओं तथा अन्य लोगोंको, जो चाहे, यह बात ध्यानमें रख लेनी चाहिये कि वे चर्खे अनवरत रूपसे घूम रहे हैं। उन चक्रोंकी उपयोगिता दिनपर दिन और अधिक प्रत्यक्ष रूपसे बढ़ती जा रही है। और जब यह उसके फल स्वरूप ये दल बन्दियां एक हो जायंगी और हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण-अब्राह्मण, अत्याचारी और दलित आपसमें मिल जायेंगे तब वे देखेंगे कि कुछ शान्तिसे काम करनेवालोंने देशको तैयार कर दिया है—विलायती वस्त्रका बैर मूलक या हिंसात्मक बहिष्कार करनेके लिये नहीं, बल्कि स्वास्थ्यवर्धक, अहिंसात्मक वैध बहिष्कारके लिये। कौमको अपने प्रत्येक नागरिकको कुछ न कुछ शक्तिका तो सबूत देना ही चाहिए। और वह शक्ति विदेशी वस्त्रका बहिष्कार करनेकी क्षमता है। अपीलपर हस्ताक्षर करनेवाले अपनेको मेरे अनुयायी कहते हैं। मेरी उनसे सलाह है कि वे चरखेको अपना आगे बान बनायें। मैंने उस छोटेसे चक्रको आगे बानी अबतक रक्खी है। और वह चर्खा मेरे कानोंमें नित्य गरीब जनताके कष्टोंका गीत सुनाया करता है। अच्छेके लिए हो या बुरेके लिए मैंने अपना सर्वस्व चरखे-पर लगा रक्खा है, क्योंकि मेरे लिए तो वह दरिद्रनारायणकी मूर्ति है—दरिद्र और दलितके दरिद्र और दलितमें दर्शन देनेवाले नारायणकी मूर्ति है।

हिन्दी-नवजीवन
९ सितम्बर, १९२६

शहीद श्रद्धानन्द

जिसकी उम्मेद थी वह हो गुजरा। कोई ६ महीने हुए स्वामी श्रद्धानन्दजी सत्याग्रहाश्रममें आकर दो दिन ठहरे थे। बातचीतमें उन्होंने मुझसे कहा था कि उनके पास जब-तब ऐसे पत्र आया करते थे जिनमें उन्हें मार डालनेकी धमकी दी जाती थी। किस सुधारकके सिरपर बोली नहीं बोली गयी है? इसलिये उनके ऐसे पत्र पानेमें अचम्भेकी कोई बात नहीं थी। उनका मारा जाना कुछ अनोखी बात नहीं है।

स्वामीजी सुधारक थे। कर्मवीर थे, वचन वीर नहीं। जिनमें उनका विश्वास था, उसका वे पालन करते थे। उन विश्वासोंके लिए उन्हें कष्ट झेलने पड़े। वे वीरताके अवतार थे। भयके सामने उन्होंने कभी सिर नहीं झुकाया। वे योद्धा थे

और योद्धा रोग शय्यापर मरना नहीं चाहता। वह तो युद्ध भूमिका मरण चाहता है।

कोई एक महीना हुआ कि स्वामी श्रद्धानन्दजी बहुत बीमार पड़े। डाक्टर अनसारी उनकी चिकित्सा करते थे। जितने अनुरागसे उनसे संभव था, डाक्टर अनसारी उनकी सेवा करते थे। इस महीनेके शुरूमें मेरे पूछनेपर उनके पुत्र प्रो० इन्द्रने तार दिया था कि स्वामीजी अब अच्छे है और मेरा प्रेम दुआ माँगते हैं। मैं उनके बिना मांगे ही उनपर प्रेम और उनके लिए भगवानसे प्रार्थना करता ही रहता था।

भगवानको उन्हें शहीदकी मौत देनी थी। इसलिए जब अभी वे बीमार ही थे तभी उस हत्यारेके हाथ मारे गये जो इस्लामपर धार्मिक चर्चाके नामपर उनसे मिलना चाहता था जो स्वामीजीकी प्रेरणासे आने दिया गया, जिसने प्यास मिटाने को पानी माँगनेके बहाने स्वामीजीके ईमानदार नौकर धर्म सिंहको पानी लेनेको बाहर हटा दिया, और जिसने नौकरकी गैरहाजरीमें बिस्तरपर पड़े हुए रोगीकी छातीमें दो प्राणघातक चोटें कीं। स्वामीजीके अंतिम शब्दोंकी हमें खबर नहीं। अगर मैं उन्हें कुछ भी पहचानता था तो मुझे बिलकुल सन्देह नहीं है कि उन्होंने अपने परमात्मासे उसके लिए क्षमा याचनाकी होगी जो यह नहीं जानता था कि वह पाप कर रहा है। इसलिए गीताकी भाषामें वह योद्धा धन्य है जिसे ऐसी मृत्यु प्राप्त होती है।

मृत्यु तो हमेशा ही धन्य होती है मगर उस योद्धाके लिए तो और भी अधिक जो अपने धर्मके लिए-यानी सत्यके लिए मरता है। मृत्यु कोई शैतान नहीं है। वह तो सबसे बड़ी मित्र है। वह हमें कष्टोंसे मुक्ति देती है। हमारी इच्छाके विरुद्ध भी इसे छुटकारा देती है हमें बराबर ही नयी उम्मेदें, नये रूप देती है। वह नींदके समान मीठी है किन्तु तो भी किस मित्रके मरनेपर शोक करनेकी चाल है। अगर कोई शहीद मरता है तो यह रिवाज नहीं रहता। अतएव इस मृत्युपर मैं शोक नहीं कर सकता। स्वामीजी और उनके संबंधी ईर्ष्याके पात्र हैं क्योंकि श्रद्धानंदजी मर जानेपर भी अभी जीते हैं उससे भी अधिक सच्चे रूपमें जीते हैं जब वे हमारे बीच अपने विशाल शरीरको लेकर घूमा करते थे। ऐसी महिमामय मृत्युपर जिस कुलमें उनका जन्म हुआ था, जिस जातिके वे थे, वे सभी धन्यताके पात्र हैं। वे वीर पुरुष थे, उन्होंने वीर गति पायी।

मगर इस दृश्यका एक दूसरा पट भी है। मैं अपनेको मुसलमानोंका मित्र समझता हूँ। वे मेरे सहोदर भाई हैं उनकी भूलें मेरी भूलें हैं। उनके सुखसे मैं सुखी और दुःखसे दुःखी होता हूँ। किसी मुसलमानके पापसे मुझे उतना ही दुःख होता है जितना कि अगर उसे कोई हिन्दू करता। एक मुसलमानने घोर कृत्य किया है। मुसलमानोंके मित्रकी हैसियतसे मुझे इसका बड़ा खेद है। मृत्युकी खुशी इसलिये

कम हो जाती है कि उसका कारण बना था एक भूला हुआ भाई। इसलिये धर्म बलिकी चाहना नहीं की जा सकती। वह तो आनंदकी वस्तु तभी बनती है जब बिना बुलाये आती है। हम अपने छोटेसे छोटे भाईकी भूलपर हसें नहीं। मगर बात तो यह है कि जबतक कोई भूल भयंकर रूप धारण कर नहीं लेती, उसे भूल माना ही नही जाता। जबतक उसकी यथेष्ट निन्दा नहीं हो लेती तबतक वह दूर नहीं होती।

इस कांडका बहुत बड़ा राष्ट्रीय महत्व है। जातिके जीवनको नष्ट करनेवाले दोषकी ओर यह हमारा ध्यान खींचता है। हिन्दू और मुसलमान दोनोंको ही, अपना कर्तव्य चुन लेना चाहिए। यह हम दोनोंकी ही जाँचका मौका है। क्रोध दिखलाकर हिन्दू अपने धर्मका अपमान करेंगे और उस एकताको रोक लेगें जो एक दिन जरूर हो जावेगी। आत्म-संयमके द्वारा वे अपने आपको अपनी उपनिषदों और क्षमा मूर्ति युधिष्ठिरके योग्य सिद्ध कर सकते हैं। एक व्यक्तिके पापको हम सारी जातिका पाप न मान बैठें। बदला लेनेके भाव हम न लावें। इसे हम एक हिन्दूके प्रति एक मुसलमानका पाप माननेके बदले एक वीर पुरुषके प्रति दूसरे भूले भटके भाईकी भूल मानें।

मुसलमानोंको अग्नि-परीक्षामेंसे होकर निकलना पड़ेगा। इसमें कोई शक नहीं कि छुरी और पिस्तौल चलानेमें उनके हाथ जरूरतसे अधिक साफ हैं। तलवार कुछ इस-लामका धर्म चिह्न नहीं है मगर इस्लामकी पैदाइश हुई ऐसी स्थितिमें जहाँ तलवारकी ही तूती थी और अब भी है। यीशूके सन्देशका भी कुछ असर नहीं पड़ा क्योंकि उसे ग्रहण करने लायक योग्य परिस्थिति ही उपस्थित नहीं थी। पैगम्बरके उपदेशोंके साथ भी यही बात है। मुसलमानोंके म्यानसे अब भी तलवारें बहुत निकला करती हैं। इस्लामको अगर इस्लाम यानी शक्ति बनना है तो उसे अपनी तलवार म्यानमें ही रखनी होगी। इसका खतरा है कि मुसलमानोंके मंत्री इस कृत्यका समर्थन ही करें। उनके लिए और संसारके लिए यह दुर्भाग्यकी बात होगी क्योंकि हमारा मसला सारे संसारका मसला है। अगर खुदापर भरोसा करना है तो तलवारका भरोसा छोड़ना होगा। उनकी ओरसे स्पष्ट शब्दोंमें सब ओरसे निन्दाके प्रस्ताव होने चाहिए।

मैं अब्दुल रशीदकी ओरसे भी कुछ कहना चाहता हूँ। मैं उसे जानता नहीं। मुझे इससे मतलब नहीं कि उसने क्यों मारा। दोष हमारा है। अखबारवाले चलते फिरते रोगाणु बन गये हैं। वे झूठ और शिकायतकी तिजारत करते हैं। अपनी भाषाकी गलियोंके शब्द भंडारको वे खाली कर देते और पाठकोंके संशय रहित और प्राय: ग्रहणशील मनोंमें अपने विकार घुसा देते हैं। अपने भाषाधिकारके मदसे मत्त नेताओंने अपने कलम और जबानपर लगाम लगाना सीखा ही नहीं है। गुप्त और छल-कपट-पूर्ण प्रचारको अपना काला और भयंकर काम करनेमें रोक

थामका सामना नहीं करना पड़ता। इसलिए हम शिक्षित और धर्म शिक्षित लोग ही अब्दुल रशीदकी मनोवृत्तिके लिए दोषी हैं। इसका निश्चय करना कि दो विरोधी दलोंमें किसका कितना दोष है बेकार है। धर्मराज तुलासे दोषोंका, न्याय अन्यायका, ठीक-ठीक बँटवारा कौन कर सकता है? आत्म,रक्षाके लिए झूठ बोलना या बढ़ाकर कहना जरूरी नहीं है। ऐसी आशा रखना बहुत बड़ी बात है किन्तु स्वामीजी जितने बड़े थे कि जिससे यह आशा होती है कि उनका खून हमारा पाप धो देगा, हमारे दिलोंके मैलको साफ कर, मनुष्य जातिके दो बड़े विभागोंको एक कर देगा। स्वामीजीके जीवनका मुझे जो ज्ञान है, उसके विषयमें अगले अंकमें विचार करना पड़ेगा।

हिन्दी-नवजीवन
१३ दिसम्बर, १६२६

खरी टीका

नीचे एक पत्र मैं पाठकोंसे बचा रखना नहीं चाहता।

"मैंने आपका 'शहीद श्रद्धानन्द' शीर्षक लेख यथेष्ट आदर और सावधानीसे पढ़ा है। उसपर टीका टिप्पणी करनेके पहले मैंने उसे पाँच बार पढ़ लिया है जिसमें उतावलीसे उसकी आलोचना न करने लगूं।"

"वह लेख बेशक बहुत ही सुन्दर भाषामें लिखा गया है। आपकी लेखन शैली देखकर मुझे ईर्ष्या होती है। वह आकर्षक है मगर मेरी समझमें उसका आकर्षण खतरेसे खाली नहीं है।

"यह आलोचना मैं आपको सत्य शील मानकर ही करता हूँ। जबतब कुछ मित्रोंसे इस विषयमें मैंने बहस भी की है। उनका कहना है कि सन्तके भेषमें आप नीति-चतुर पुरुष हैं और स्वदेशके लिए सत्यका जब कभी त्याग कर सकते हैं। इसके उलटे मैं मान आया हूँ कि आप सन्त हैं और अपने उद्देश्यकी ही प्राप्तिके लिए कठिनसे कठिन अवसरोंपर भी सत्यके पालनके लिए, राजनीतिमें घुसे हैं। अगर मुझे इसका पता मिल जाय कि मेरा अनुमान सही है तो मैं बड़ा आभार मानूँगा। अगर ठीक हो तो नीचे दी हुई आलोचना कौड़ी कामकी न रहेगी। मेरी सम्मतिमें नीति-वादी मनुष्यको आपने जैसा लिखा है वैसा लिखनेका पूरा अधिकार है।

"आप मुझसे सहमत होंगे कि सत्यको छिपाना भी असत्यका ही एक स्वरूप है।

जब आप स्याहको स्याह समझे तब उसे स्याह न कहना कायरता होगी। सत्य और निर्भयताका बहुत निकट संबंध है।

"महात्माजी, क्या आपके दिलमें ऐसा लगता है कि स्वामीजीका खून, एक मुसलमान गुंडेका अमानुषिक, असभ्य और क्रूर कार्य था जिसके लिये मुसलमान समाजको शर्मिंदा होना चाहिए? आप इसे ऐसा माननेसे इनकार क्यों करते हैं? उसकी और उसके कामकी और इसके लिए जिम्मेदार लोगोंकी, उनकी जो हिन्दू नेताओंको काफिर कहते हैं यानी उन गर्म दिमाग मुसलमान धर्म-प्रचारकों और पगले मौलवियोंकी निन्दा करनेके बदले आप खूनीका बचाव करने लगे हैं और मुसलमानोंकी ओरसे दर गुजरी पेश करते हैं। आपने डायरका तो बचाव नहीं किया था। क्यों यूरोपियन भाई नहीं हैं?

"आगे आप कहते हैं कि इस्लामका अर्थ है शान्ति। क्या यही सत्य है? कुरानमें इस्लामकी जो शिक्षा दी जाती है और उसके जन्मसे आजतक मुसलमान लोग इसका जैसा पालन करते आये, उसका अर्थ शान्ति कभी नहीं है। ऐसी साफ-साफ गलत बात आप क्यों लिखते हैं। बौद्ध, इसाई और हिन्दू धर्म भले ही शान्ति सिखलाते हों मगर इस्लाम नहीं। क्या आप बतलावेंगे कि आप ऐसा क्यों सोचते और लिखते हैं।

"सरकारकी निंदा करते समय तो आपने सवालोंको कभी उलझाया नहीं। आर्यसमाजकी निन्दा करते समय भी आपने सवालोंको नहीं उलझाया, सिद्ध दोषोंके लिए भी मुसलमानोंकी निन्दा करते हुए आप क्यों डरते हैं?

"मुझे निश्चय है कि अगर किसी मुसलमान नेताके साथ किसी हिन्दूने ऐसा काला काम किया होता तो (भगवान् न करें कि ऐसा हो) आपने खूनी और हिन्दू जातिकी निन्दा करनेमें कुछ उठा न रक्खा होता। आप हिन्दुओंसे मातम मनाने, उपवास करने, हड़ताल करने, मृतात्माके लिए स्मारक खड़ा करने और कितनी बातें करनेको कहते। अपने सगे भाई मुसलमानोंसे आप पक्षपातका व्यवहार क्यों करते हैं? *

"सत्य वक्ता किसी वस्तुका भय नहीं करता, इस्लामकी तलवारका भी खौफ नहीं खाता। मैं आशा करता हूँ कि अपने प्रसिद्ध पत्रमें आप इनका जवाब देंगे।"

लेखक साफगो है। उसके पत्रसे उसकी सरगर्मी टपकती है और उसका पत्र लोगोंके वर्तमान भावका द्योतक है।

अगर मुझे सन्त कहा भी जा सकता हो तो भी अभी सन्त कहनेमें बहुत देर है। मैं सन्त हूँ, ऐसा तो मुझे अपने आप किसी प्रकार नहीं मालूम होता। मगर मुझे मालूम होता है कि अनजाने चाहे मैं लाखों न करने योग्य काम कर लूँ या करने योग्य करनेमें चूक भले ही जाऊँ मगर सत्यका सेवक हूँ। पत्र लेखक ने ठीक अनुमान किया है कि 'सन्तके भेसमें मैं नीति-चतुर आदमी नहीं हूँ।' मगर चूंकि सत्य ही सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता है इसलिए कभी-कभी मेरे काम सबसे बड़ी नीति-चतुराईके अनुकूल मालूम पड़ते हैं। मगर मुझे आशा है कि सत्य और अहिंसाकी नीतिके सिवाय मुझमें और कोई नीति-चातुर्य नहीं है। स्वदेश और स्वधर्मके उद्धारके लिए

भी मैं सत्य और अहिंसाको छोड़ नहीं सकता। इतना कहनेका अर्थ यह है कि दोनोंमें किसीको भी मैं नहीं छोड़ सकता।

स्वामीजीकी हत्याके विषयमें लिखते समय मैंने सत्यको छिपाया नहीं है। मैं उस कांडको हूबहू वैसा ही समझता हूँ जैसा कि पत्र-लेखकने बयान किया है। मगर हत्यारेके लिए मुझे वैसी ही दया आती है जैसी जेनरल डायरके लिए मुझे आयी थी। पत्र-लेखक यह न भूल जायँ कि जेनरल डायरके ऊपर मुकदमा चलानेका मैंने कभी नहीं समर्थन किया। मैं यह दावा जरूर रखता हूँ कि कोई यूरोपियन भी मेरे लिए वैसा ही भाई है जैसा कि कोई हिन्दुस्तानी मुसलमान या हिन्दू।

हत्यारेके विषयमें मेरे भाव ये है कि वह खुद धर्मके नामपर बुरे और अधार्मिक प्रचारका शिकार है। इसीसे मैंने इस हत्याके लिए अखबारोंको दोषी ठहराया है जिन्होंने सर्वसाधारणकी बुद्धि बिगाड़ दी है। मौलवियों और उन सब लोगोंको, जो स्वामीजीके प्रति घृणाकी आग जलानेवाले थे, इस हत्याका मैं दोषी ठहराता हूँ।

मगर मैं इस्लामको उसी अर्थमें शान्ति-धर्म मानता हूँ जिसमें ईसाई, बौद्ध या हिन्दू-धर्मको मानता हूँ। निःसन्देह शान्तिकी मात्रामें अन्तर है मगर उन धर्मोंका उद्देश्य है शान्ति। मैं कुरानके वे वाक्य जानता हूँ जो इसके विरुद्ध पेश किये जा सकते हैं मगर वेदोंसे भी तो ऐसे ही वाक्य निकालना उतना ही संभव है। अनार्योंके विरुद्ध वचनोंका और क्या अर्थ लगेगा? जरूर, उनका इस युगमें दूसरा ही अर्थ है मगर एक समय उनका भयंकर रूप अवश्य था। हम हिन्दुओंका अछूतोंके साथके व्यवहारका और क्या अर्थ है? चलनी तो भला सूपपर न हंसे। बात यह है कि हम सब किसीका विकास हो रहा है। मैंने अपना मत प्रकट कर दिया है कि इस्लामके अनुयायियोंकी तलवार और छूरी बात बातपर निकला करती है। मगर वह तो कुरानकी शिक्षाकी बदौलत नहीं है। मेरी समझमें उसका कारण है वह स्थिति जिसमें इस्लामका जन्म हुआ था। ईसाई धर्मका इतिहास खून-खराबीसे भरा पड़ा है मगर इसका कारण ईसाकी त्रुटि नहीं है, किन्तु यह है कि ईसाकी उच्च शिक्षाका जिस स्थितिमें प्रचार हुआ वह उसे ग्रहण करने योग्य न थी।

ये दोनों, क्रिस्तान धर्म और इस्लाम, अभी कलके ही धर्म हैं। अभी उनका अर्थ लगाया ही जा रहा है। मौलवियोंके इस हकको कि वे मुहम्मदकी शिक्षाओंका आखिरी अर्थ लगा सकते हैं मैं वैसे ही इनकार करता हूँ जैसे कि ईसाकी शिक्षाओंका अर्थ लगानेके पादरियोंके हकको। दोनोंका ही अर्थ लगता है उन लोगोंके जीवनमें जो उनका पालन अपने जीवनमें शान्ति और पूरे आत्म-बलिदानसे कर रहे हैं। शोर गुल कुछ धर्म नहीं है और बड़ी बुद्धिमें ही कुछ बड़ी विद्या नहीं होती। धर्मका स्थान हृदय है। हम हिन्दुओं, ईसाइयों, मुसलमानों और दूसरे धर्मवालोंको अपने अपने धर्मका भाष्य अपने हृदयके रक्तसे लिखना होगा, और किसी प्रकार नहीं।

हिन्दी-नवजीवन

२० जनवरी, १९२७

हिन्दू-मुस्लिम-एकता

महासभाके अध्यक्षने जब मुझे तारसे खबर दी कि महासमितिकी बैठकमें हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नवाला प्रस्ताव सर्वानुमतिसे मंजूर हो गया है, तब मुझे बहुत भारी आनन्द नहीं हुआ। तारमें प्रस्तावके मजमूनके बारेमें काफी खबर थी। जब अध्यक्ष साहब मुझसे मिलनेके लिए नन्दी आये और पूछने लगे कि 'क्या आप इस प्रस्तावपर लिखेंगे?' मैंने जवाब दिया कि 'मैं इसपर ऐसा कुछ भी नहीं लिख सकता जिससे कुछ सहायता हो सके।' इस मुलाकातके कुछ ही दिन बाद, मुझे एक मित्रका सन्देश मिला, जिसका भाव यह था—हमारे बीच आज तो दंगे उपद्रव आदि हो रहे हैं, उसके लिए आप जिम्मेदार हैं। अगर आप ख्वाहमख्वाह हिन्दुओंको खिलाफतके मसलेमें न घसीटते तो ये दुःखद घटनायें नहीं घटतीं। पर अब इनसे देशको बचानेकी शक्ति भी केवल आप हीके हाथोंमें है।'

इस सन्देशका अनुवाद करते हुए मैंने मूलकी भाषाकी कटुताको बहुत सौम्य कर दिया है। मालूम होता है मानो वह मुझे हिन्दू-मुस्लिम एकतामें अपनी अटल श्रद्धा घोषित करनेको बुला रहा है। मुझे इस बातपर जरा भी अफसोस नहीं हो रहा है कि मैंने खिलाफतके आन्दोलनमें भाग लिया। वह तो अपने मुसलमान देशभाइयोंके प्रति मेरा कर्तव्य था। यदि हिन्दू अपने भाइयोंकी मुसीबतमें उनकी सहायता नहीं करते, तो वह उनकी भारी गलती होती।

आजकी परिस्थिति चाहे कितनी ही खराब हो, मुसलमानोंकी आनेवाली पुश्तें हिन्दुओंके इस भाईचारेके सलूकको कृतज्ञताके साथ याद करेंगी। पर भविष्यकी बात जाने दीजिए। चूँकि इस बातमें मेरा अटल विश्वास है कि भलेका फल सदा भला ही होता है खिलाफतके बारेमें मैंने जो कुछ किया है उसका मैं तो समर्थन ही करूँगा, इसलिए इन मित्रके तानेको मैंने शक्तिपूर्वक सह लिया।

पर मैं चाहता हूँ कि इन दोनों जातियोंमें शान्ति स्थापना करनेमें अपनी शक्ति भर सहायता करके उनकी आशाको पूरी कर सकता हूँ क्योंकि मेरा तो इस एकतामें और उसकी आवश्यकतामें आज भी उतना ही अटल विश्वास है। अगर वह मेरे प्राणोंसे प्राप्त होती है तो मैं हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए अपने प्राण भी समर्पण कर देना चाहता हूँ, और मैं आशा करता हूँ कि मुझमें अपने प्राणोंको अर्पण कर देनेकी शक्ति भी है। बड़ी खुशीके साथ मैं कभी खतम न होनेवाला एक उपवास शुरू कर सकता हूँ जैसा कि मैंने दिल्लीमें सन् १९२४में करीब-करीब किया; हाँ, इससे हिन्दुओं और मुसलमानोंका पत्थरका सा दिल पसीजता और पलट सकता। परन्तु अभी इस तरहका प्रायश्चित्त करनेके लिए परमात्माकी ओरसे मुझे कोई संकेत नहीं

मिला है। अगर प्रायश्चित्त एक आत्मशुद्धिका भी काम है, तो उसके पहले एक आत्मशुद्धिका सच्चा प्रयत्न हो जाना जरूरी है। पर स्पष्ट ही अभी उस महान प्रायश्चितके योग्य मेरी आत्मशुद्धि नहीं हो पायी है।

अगर आजकल पाठक मुझे इन पृष्ठोंमें इस प्रश्नको बार-बार उल्लेख करते हुए नहीं पाते हैं, तो इसका कारण यही है कि वह दुःख इतना गहरा चला गया है कि उसे शब्दोंमें प्रकट नहीं किया जा सकता। इन लज्जाजनक उपद्रवोंके करने वाले चाहे हिन्दू हों या मुसलमान, मेरे नजदीक यह बात कोई महत्व नहीं रखती। यह जान लेना काफी है कि हम लोगोंमें कुछ लोग एक शान्तिशील परमात्माकी निन्दा कर रहे हैं, और धर्मके पवित्र नामपर अमानुष कुकर्म कर रहे हैं। मैं यह भी नहीं जानता हूँ कि न तो खून-खच्चरसे और न बदला लेनेके ख्यालसे निर्दोष मनुष्योंका वध करनेसे धर्मकी रक्षा हो सकती है। धर्मकी रक्षा तो-अगर वह धर्मके पवित्र नामके योग्य है—तो अनुयायियोंकी पवित्रता, नम्रता, और ऊँचेसे ऊँचे दर्जेकी निर्भयता द्वारा ही की जा सकती है। बस वही सच्ची शुद्धि और सच्चा धर्म-प्रचार है।

इसलिए महासमितिके प्रस्तावका मुझपर कोई असर नहीं हुआ। क्योंकि मैं जानता हूँ कि हमने अभी अपने हृदयोंको नहीं बदला है, और न हमने अभी अपने अन्दरसे एक दूसरेके प्रति भयको निकाल बाहर किया है। जो समझौता इन दोनों शर्तोंको पूरा नहीं करता, वह वृथा है।

दूसरे मेरा ख्याल है कि एक राष्ट्रके भिन्न-भिन्न अंगोंके बीच जो समझौता हो, वह पूर्ण तथा स्वेच्छापूर्वक हो और स्वेच्छापूर्वक ही उसका पालन भी हो। अगर स्वराज्यके ख्यालसे वह समझौता किया गया है तो उसे अपनी अंतिम मंजूरी और अमलके लिए किसी सरकारी कानूनपर निर्भर नहीं रहना चाहिए। अगर हमारी अपनी संस्थायें उसे मंजूर कर लें तो वह सम्पूर्ण और बाध्य समझना चाहिए। इसका अमल भिन्न-भिन्न दलोंके नेताओंकी प्रतिष्ठापर निर्भर। रहे यदि न हो और यदि हमें अहिंसामें भी श्रद्धा न हो तो खुल्लम खुल्ला युद्ध छेड़ दिया जाय जाय और भली या बुरी तरह उसमें लड़ लिया जाय, और उसका जो नतीजा हो उसके अनुसार ही यह प्रश्न तै हो जाय। पर एक विदेशी सत्ताके पास जा कर यह कहना कि हमारा निर्णय कर दो, या संगीनकी नोंकपर शान्ति कायम कर दो, स्वराज्यकी योग्यताकी नहीं, कमजोरीकी निशानी है।

अगर लड़ाकू लोगोंपर हमारा अर्थात् नेता कहे जाने वाले लोगोंका कोई प्रभाव न हो, तो हमारे समझौते झूठे और व्यर्थ हैं। सच्चे स्वराज्यकी बात सोचनेके पहले, जनताके दिलमें हमें स्थान और प्रभाव प्राप्त कर लेना जरूरी है। यह सीख लेना जरूरी है कि हम खुद कैसे बरतें। उस समझौतेका दिल्लीपर कोई असर नहीं हुआ, और हमारे लिये अत्यंत लज्जाकी बात है कि वहाँ बकरा-ईदपर शान्तिके रक्षक हम नहीं बल्कि सरकार ही रही।

मेरा अहिंसा धर्म एक महान् शक्ति है। उसमें कायरता और कमजोरीके लिये जरा भी स्थान नहीं। एक हिंसाका उपासक अहिंसाका भक्त बन सकता है, पर एक कायरसे तो कभी अहिंसक बननेकी आशा ही नहीं की जा सकती। इसलिए मैंने कई मर्तबा इन पृष्ठोंमें लिखा है कि यदि कष्ट-सहन अर्थात् अहिंसा द्वारा हम अपने स्त्रियों और पूजा-स्थानोंकी रक्षा नहीं कर सकते हों तो, और यदि हम पुरुष हों तो, कमसे कम हमें सशस्त्र प्रतिकार करके जरूर उनकी रक्षा करनी चाहिए। दो लड़ते हुए दलोंके बीच शान्ति-स्थापन करनेके लिए तथा हमारी स्त्रियोंकी रक्षा करनेके लिए सरकारसे कहना या उससे ऐसी आशा करना निरी कायरता है और जब तक हम ऐसे कायर बने रहेंगे, स्वराज्यकी आशा करना व्यर्थ है। सुव्यवस्थित समाजमें तो सरकार केवल पुलिसका काम करती है पर हाल ही में दिल्ली और लाहौरमें की गयी तैयारियोंको पुलिसका काम नहीं कहा जा सकता। मतभेद तो हमेशा बने ही रहेंगे। पर हमें उनको आपसी पंचायत द्वारा मिटाना सीख लेना चाहिए, फिर वे मतभेद धार्मिक हों या अन्य प्रकार के। यदि हम स्वराज्य चाहते हैं तो शासकोंका सामना हमें मिलकर एकतापूर्वक करना चाहिए, और संसारको दिखा देना चाहिए कि अपने मामलोंको सुलझानेकी शक्ति और बुद्धि हमारे अंदर है।

यदि हमारे बीच ऐसे कोई नेता पुरुष न हों जिन्हें हम अपने पंच बना सकें और जो हमें न्याय और पक्षपात शून्य राय दे सकते हों तो, और यदि हम इतने उद्दंड और जंगली हों कि पंचके निर्णय सुनने तक न ठहर सकते हों या उसे सुन लेनेपर उसका पालन न कर सकते हों तो हमें खूब मनमाना लड़ कर अपने दिमाग दुरुस्त कर लेना चाहिए। हाँ, हम चाहे या न चाहें, सरकार शान्ति-रक्षा या अपनी रक्षाके खयालसे जरूरही हमारी इस लड़ाईमें भी विघ्न करेगी। पर यदि लड़ाकू दल हिम्मत रक्खेंगे और उससे सहायता न माँगेंगे तो वह हमें जरा भी कमजोर नहीं कर सकती और ऐसे युद्धमें मारकाट करने वाले एक हत्यारेका बचाव क्यों किया जाय? उसे फाँसीपर लटकने दिया जाय। पूजा-स्थानोंको तोड़ने वाले निर्भयता-पूर्वक सामने आकर कहें कि हमने यह धर्मके लिए किया है, जो चाहो सजा दे दो। निर्दोष राहगीरोंकी हत्या करने वाले भी अपने आपको पुलिसको सौंप दें और कहें कि हमने यह सब खुदाके लिये किया है। निःसन्देह यह बड़ा निर्दय और हृदयहीन सुनायी देता होगा। पर मैंने तो केवल वह रास्ता बतानेका यत्न किया है जो हमारे वर्तमान तरीकोंसे अधिक सीधा और कमजोर है।

और यदि हम सभ्य आदमियोंकी तरह पंचायतोंसे काम नहीं ले सकते, या ब्रिटिश न्याय और बन्दूकोंकी बिना सहायता माँगे शूर जंगली जातिके समान युद्ध करके भी अपने झगड़ोंका निबटारा नहीं कर सकते, तो सुधारोंके रूपमें हमें केवल एक ही चीजके मिलनेकी आशा करनी चाहिए। और वह है नौकरशाहीके हाथों

मिलने वाली दलालीका बढ़ा हुआ हिस्सा। दूसरे शब्दोंमें, यों कहें कि सरकार करोड़ों मूक भारतीयोंको लूटनेमें उसका साथ देनेके बदलेमें हमारी दलालीको कुछ और बढ़ा देगी। ध्यान रहे कि हम जो कुछ भी समझौता आपसमें करें, वह ऐसा नहीं जो हमें उस खराब स्थितिमें जाकर डाल दे।

हिन्दी-नवजीवन
१६ जून, १९२७

❀

"रंगीला रसूल"

इस पत्रिकापर जो वादविवाद छिड़ा है उसमें शामिल होनेकी लालचको मैं आफिल या दूसरे पत्र-प्रेषकोंकी तरफसे प्रेरणा होनेपर भी अबतक रोक सका हूँ। मैंने ऐसे पत्र-लेखकोंको खानगी तौरपर जवाब देनेका प्रयत्न किया था, परन्तु अभी अभी इतने पत्र आने लगे हैं कि उन सबका खानगी तौरपर जवाब देना मेरी शक्तिके बाहरकी बात है। आखिरमें बिहारके एक मुसलमान प्रोफेसरका पत्र मिला है। उन्होंने मुझे किसी अखबारकी कतरन भेजी है, जिसमें मुझपर यह आक्षेप करता हुआ एक पत्र छपा है कि साधारण तौरपर हिन्दू नेताओंने खामोशी अख्त्यार करनेकी जो साजिश की है, मैंने भी उसमें शामिल होना पसंद किया है। प्रोफेसर साहब कहते हैं कि मैं इसका खरा जवाब दूँ। मैं खुशीसे इसका जवाब दूँगा, इस आशासे कि मेरे पत्र-लेखकोंको मेरे शुद्ध विश्वाससे संतोष हो और वे मेरी खामोशीका कारण समझ लें। क्योंकि मैं किसी एक स्थानिक अखबारके सिवा दूसरे अखबार नहीं पढ़ता हूँ, हिन्दू नेताओंकी 'खामोशीकी साजिश'के बारेमें कुछ भी नहीं जानता हूँ।

अभी मैं 'हिन्दू' (मद्रास) को अक्सर पढ़ता हूँ, और मुझे स्मरण है कि मैंने उसमें 'रंगीला रसूल'के विरुद्ध एक सख्त लेख पढ़ा था। जहाँ तक इससे मेरा संबंध है, जब बहुतसे मुसलमानोंको उसके अस्तित्वकी खबर भी नहीं थी, उसकी एक नकल मुझे मिली थी। मेरे संवाददाताकी सचाईकी परीक्षा करनेके लिये मैंने उसे पढ़ा और १९ वीं जून १९२४ के 'यंग इन्डिया'में उसपर यह टिप्पणी लिखी।

एक मित्रने मुझे 'रंगीला रसूल' नामकी एक उर्दू पुस्तिका भेजी है। उसपर लेखकका नाम तो नहीं दिया गया है पर वह मैनेजर आर्य पुस्तकालय लाहौरकी तरफसे प्रकाशित की गयी है। पुस्तकका खुद नाम ही दिल दुखानेके लिए काफी है, और जो बातें उसमें लिखी गई हैं वे भी वैसी ही हैं। मैं शिष्ट सभ्य पाठकोंका

दिल दुखाये बिना उसके कुछ वाक्योंका अनुवाद पेश नहीं कर सकता। मैंने अपने दिलसे पूछा कि सिवा लोगोंके उभाड़नेके ऐसी पुस्तकें लिखने और छापनेका दूसरा क्या मतलब हो सकता है? मुसलमानोंके नबीको बुरा कहनेसे या गालियाँ देनेसे क्या एक भी मुसलमान अपना मजहब छोड़ देगा और उस हिन्दूको भी जिसका यकीन ही पक्का नहीं है इससे क्या फायदा हो सकता है? इसलिए धर्म-प्रचारके कार्यमेंतो ऐसी पुस्तकसे कोई लाभ नहीं। पर इससे जो हानि होती है वह साफ है।

एक दूसरे मित्रने पब्लिक प्रिंटिंग प्रेस लाहौरमें छपी एक पत्रिका भेजी है। इसका नाम "शैतान" है। उसमें मुसलमानोंकी ऐसी बुराई की गयी है कि जिसका अनुवाद मैं यहाँ दे ही नहीं सकता। मुझे ऐसी पत्रिकाओंका भी पता है जिसमें मुसलमानोंकी तरफसे भी ऐसी ही गाली-गलौज की गयी। किन्तु इससे हिन्दुओं और आर्य-समाजियोंकी तरफसे प्रकाशित गालियोंका समर्थन नहीं हो सकता और न यह उसका कोई जवाब ही है। यदि मुझे ऐसी खबर न मिलती कि ऐसी पत्रिकायें या पुस्तकें लोग चावसे पढ़ते हैं तो मैं इनपर जरा भी ध्यान न देता। ऐसे साहित्यके प्रचारको रोकने या कमसे कम उसके घटानेका उपाय स्थानिक नेताओंको ढूढ़ निकालना चाहिए और बजाय इसके एक दूसरे धर्मके प्रति सहिष्णुता प्रकट करनेवाला शुद्ध साहित्य लोगोंमें फैलाना चाहिए।

इसपर आर्यसमाजियोंने विरोध किया और उन्होंने आर्यसमाजियोंके और उसके संस्थापक ऋषि दयानन्दके खिलाफ लिखी और भी बदतर पत्रिकायें और पर्चे भेजे। उनका यह कहना था कि 'रंगीला रसूल' और दूसरे ऐसे लेख जिनका ऊपर जिक्र हुआ है ऐसे मुसलमानोंके पर्चे और लेखोंके जवाबमें लिखे गये थे। उसपर मैंने १० वीं जुलाई १९२४ के 'यंग इंडिया' में यह दूसरी टिप्पणी लिखी।

'रंगीला रसूल' नामक न पढ़ने लायक पुस्तिका तथा 'शैतान' नामक निन्दनीय पर्चेके सम्बन्धमें मैंने जो उद्गार प्रकट किये थे उसके सिलसिलेमें आर्य-समाजियोंकी तरफसे ढेरके ढेर पत्र आये हैं। वे मेरी बातकी सचाईके तो कायल हैं पर कहते हैं, कुछ मुसलमान पर्चोंका भी यही हाल है और पहले उन्होंने यह गाली-गलौज शुरू की तब आर्य-समाजी उसका वैसा ही जवाब बतौर बदलेके देने लगे। 'पत्र-लेखकोंने मेरे पास ऐसे कुछ पर्चे भेजे भी है। उनके कुछ हिस्सोंको पढ़नेकी व्यथा मैंने सहन की है। उनके कुछ हिस्सोंकी भाषा तो दिलको दहला देती है। उन्हें यहाँ उद्धृत करके मैं इन पत्रोंको कलंकित नहीं करना चाहता। एक मुसलमान-लिखित स्वामी दयानन्दके एक जीवन-चरितकी प्रति भी मुझे मिली है। मुझे कहते हुए दुःख होता है कि यह बहुतांशमें उन महान धर्म-सुधारकका तोड़ा-मरोड़ा चरित है। उनके किये हर कामपर लेखकने जहर उगला है। एक पत्र-लेखक इस बातकी बड़ी बुरी तरह शिकायत करते हैं कि मेरे लेखोंने मुसलमान लेखकों और वक्ताओंका

हौसला इतना बढ़ा दिया है कि वे अब आर्य-समाज और समाजियोंसे और भी ज्यादह गाली-गलौज करने लगे हैं। एकने हाल ही की हुई लाहौरकी एक सभाका हाल लिखकर भेजा है जिसमें आर्यसमाजपर ऐसी ऐसी गालियोंकी वृष्टि की गई कि जिनको लिखते हुए लेखनी कांपती है। यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं कि ऐसी कार्रवाइयोंके साथ मेरी कुछ हमदर्दी नहीं हो सकती। मैंने जो कुछ अपनी राय आर्य-समाजके बारेमें प्रकाशित की है, उसके होते हुए भी मैं आर्य-समाजके संस्थापकका एक नम्र प्रशंसक होनेका दावा रखता हूँ। उन्होंने कितनी ही कुप्रथायें हमें दिखाई हैं जो हिंदू-समाजको भ्रष्ट कर रही थीं। उन्होंने संस्कृत विद्याके पठन-पाठनका शौक बढ़ाया। उन्होंने अन्धविश्वासको ललकारा। अपने शुद्ध चरित्रके द्वारा उन्होंने अपने कालके समाजका स्वर ऊँचा कर दिया। उन्होंने निर्भयता सिखायी और कितने ही निराश होनेवाले युवकोंमें नई आशाका संचार किया। और न मैं उनकी राष्ट्रीय सेवासे बेखबर हूँ। आर्य-समाजने राष्ट्रीय सेवाके लिए कितने ही सच्चे और स्वार्थत्यागी कार्यकर्ता दिये हैं। उसने हिन्दुओंमें स्त्री-शिक्षाका जितना प्रचार किया है उतना ब्रह्मसमाजको छोड़कर शायद ही किसी हिन्दू संस्थाने किया हो। कुछ अनजान लोगोंने यहाँ तक कह डाला है कि मैंने श्रद्धानन्दजीके विषयमें वे बातें इसलिए लिखी हैं कि वे मेरी बातोंकी आलोचना किया करते हैं। परन्तु उनका यह दोषारोपण मुझे उनके गुरुकुलमें किये मार्ग-दर्शक कार्यको फिरसे स्वीकार करते हुए नहीं रोक सकता। ऐसी हालतमें मैं जहाँ एक ओर समाज, सत्यार्थ प्रकाश, ऋषि दयानन्द तथा स्वामी श्रद्धानन्दजीके विषयमें प्रकाशित अपने उद्गारोंका एक भी शब्द वापस लेना नहीं चाहता, वहां दूसरी ओर फिर मैं दुहराता हूँ कि मैंने बिलकुल मित्र-भावसे वह आलोचना की है और इस अभिलाषासे की है कि समाज उन त्रुटियोंसे मुक्त होकर जिनकी ओर मैंने उसका ध्यान दिलाया है, अधिक सेवा कर सके। मैं चाहता हूँ कि वह समयके साथ कदम बढ़ाते हुए चले, खण्डन-मण्डन वृत्तिको छोड़ दे और अपनी रायपर कायम रहते हुए दूसरे संप्रदायवालोंके साथ उसी सहिष्णुताका परिचय दे जिसका दावा वह खुद अपने लिए करता है। मैं चाहता हूँ कि वह अपने कार्यकर्ताओं पर निगाह रक्खे और तमाम कलंक लगानेवाले लेखों-पत्रों आदिको बन्द कर दे। यह कोई जवाब नहीं है कि मुसलमानोंने पहले इस निन्दा-कार्यको शुरू किया है। मुझे पता नहीं कि उन्होंने ऐसा किया था नहीं। पर मैं इतना जरूर जानता हूँ कि अगर उनकी बातोंके जवाबमें वैसी ही बातें न कही जातीं तो थककर वे आप चुप हो जाते। मैंने तो समाजियोंसे शुद्धितकको छोड़ देनेको नहीं कहा है। पर मैं उनसे और मुसलमानोंसे भी यह प्रार्थना जरूर करूँगा कि वे अपने शुद्धिके वर्तमान ख्यालपर फिरसे जरूर विचार करें।

उन मुसलमान लेखकों और वक्ताओंसे जिनके निस्वत मेरे पास खत आये हैं, मैं यह कहना चाहता हूँ कि अपने प्रतिपक्षीको मनचाही गालियाँ देकर वे न तो अपनी नेकनामीको बढ़ाते हैं और न अपने मजहबकी। आर्य-समाज और समा-

जियोंको गालियाँ देकर वे न तो अपना फायदा कर सकते हैं और न इस्लामकी खिदमत कर सकते हैं।

इस प्रकार मैंने मुसलमानोंके क्रोधका अनुमान पहलेसे ही कर लिया था। परन्तु इस आन्दोलनमें हमारा और उनका मेल यहीं तक है। इस आन्दोलनने जो रूप धारण किया है उसको मैं पसंद नहीं कर सकता हूँ। मैं उसे जरूरतसे बहुत ज्यादा और उभाड़नेवाला मानता हूँ। जस्टिस दिलीपसिंह पर आक्षेप करनेकी कोई जरूरत न थी। यह अनुचित और पागलपन था। यह नहीं कि न्यायखातेपर सरकारका असर न पड़ता हो, परन्तु उसपर लोगोंके आक्षेप, अपमान और भयका भी असर होता हो तो फिर वह न्यायका काम करने योग्य नहीं है। जहाँ तक न्यायाधीशकी प्रामाणिकतासे संबंध था, इससे किसी भी मुसलमानको संतोष होना चाहिए था कि उन्होंने पत्रिकाकी काफी निन्दा की थी। परन्तु उन्होंने कानूनकी उस दफाका जो अर्थ किया उसके कारण उनपर ऐसे सख्त आक्षेप नहीं होने चाहिए थे। दूसरे न्यायाधीशोंने उसका दूसरा अर्थ किया है यह कहना यहाँ कोई सुसंगत बात नहीं है। इससे पहले भी न्यायाधीशोंने प्रामाणिकताके साथ एक ही दफाके जुदे-जुदे अर्थ किये मालूम हुए हैं। इस दफाको मजबूत करनेका आन्दोलन अक्लमन्दीका काम हो सकता है। परन्तु मुझे इसमें शक है। इस दफाको अधिक शक्तिशाली बनानेसे उसका उपयोग अपने ही खिलाफ होगा और पहलेकी तरह ब्रिटिश अधिकारको दृढ़ करनेमें उसका इस्तेमाल होगा। परन्तु हिन्दू मुसलमान ऐसे लेखोंको जाब्ता फौजदारीमें लाना चाहते हों तो इन्हें ऐसा आन्दोलन करनेका अधिकार है।

सरकारसे रक्षा पानेके संबंधमें मेरे विचार बड़े सख्त हैं। ऐसा समय था कि जब हम कुछ विशेष जानते थे और ऐसे मामलोंमें अदालतोंसे रक्षा पानेको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते थे। 'रंगीला रसूल' जैसे मुस्लिम-विरोधी लेखोंको बन्द करना हिन्दुओंका काम है और हिन्दू-विरोधी लेखोंको बन्द करना मुसलमानोंका। नेताओंका तो कीचड़ उछालने वाले इन लोगोंपर कुछ भी प्रभाव नहीं रहा है या उन्हें उनके साथ सहानुभूति है। कुछ भी हो सरकारसे रक्षा पाकर हम एक दूसरेके प्रति सहिष्णु नहीं बन सकते हैं। दूसरेके धर्मको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखने वाला शख्स कानून अधिक व्यापक और सख्त होनेपर दूसरेके धर्मपर बुरे आक्षेप करनेके लिए या क्रोध भड़काने लायक लेख लिखनेके लिए, कानूनके पंजेसे बचकर मार्ग ढूँढ़ेगा। और मैं यह भी देखता हूँ कि आजकल हम बुद्धिमान राष्ट्रवादीकी तरह या धार्मिक मनुष्यकी तरह काम नहीं कर रहे हैं। हम लोग तो धर्मके बहाने एक दूसरेपर पागलोंकी तरह वैर लेना चाहते हैं।

मेरेको पत्र लिखने वालोंको—हिन्दुओंको और मुसलमानोंको—दोनोंको यह समझना चाहिए कि आजकल वर्तमान वायुमण्डलमें मैं बह रहा हूँ। मैं यह पूरी तरह जानता हूँ कि हिन्दू हो या मुसलमान, इन लड़ने वालोंपर मेरा कुछ भी प्रभाव

नहीं पड़ता है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि इसके लिए मेरा बताया उपाय समयके अनुकूल नहीं है। इसलिए खामोश रह कर ही मैं देशकी उत्तम सेवा कर सकता हूँ। सच्ची हिन्दू-मुसलिम एकताकी आवश्यकता और उसके संभव होनेमें मुझे जितना अटल विश्वास है उतना ही अटल विश्वास मुझे अपने बताये इसके उपायमें है। इसलिए गोकि इसमें मेरी लाचारी तो स्पष्ट है परन्तु मैं निराश कतई नहीं हूँ। क्योंकि मैं यह मानता हूँ कि चुपचाप प्रार्थना करना अक्सर प्रकट कामसे अधिक परिणामजनक होता है, मैं हमेशा इस श्रद्धाके साथ प्रार्थना किया करता हूँ कि शुद्ध हृदयकी प्रार्थना कभी निष्परिणाम नहीं होती। मैं अपनी शक्ति भर यह प्रयत्न करता हूँ कि मैं प्रार्थनाका ऐसा शुद्ध साधन बनूँ कि मेरी प्रार्थना स्वीकार हो।

हिन्दी-नवजीवन
२२ सितम्बर, १९२७

हिन्दू-मुसलिम ऐक्य

हालमें जब मैं दिल्ली गया था डॉक्टर अंसारीने मुझसे कहा कि 'मैंने कलकत्तेमें विश्वस्त आदमियोंके मुँहसे सुना था कि आपको हिन्दू-मुसलिम ऐक्यमें न तो विश्वास रहा है और न दिलचस्पी ही। और आप अली बिरादरान जैसे मुसलमान दोस्तोंसे अलग ही अलग बचे फिरते हैं।' इसलिए डॉक्टर अंसारीने सुझाया कि मैं दिल्लीकी किसी सार्वजनिक सभामें अपना विश्वास जाहिर करूँ। मैं इस सलाहको और नहीं तो इसीलिए नहीं मान सका कि हकीम साहेब अजमलखाँ और स्वामी श्रद्धानन्दकी दिल्ली आज गुंडोंकी दिल्ली हो रही है जहाँ मेरे लिये ठहरना भी मोहाल है, भाषण-की तो कोई बात नहीं। खैर मैंने डॉक्टर अंसारीसे वायदा किया कि जितनी जल्दी हो सकेगी मैं अपनी स्थिति साफ करनेकी कोशिश करूँगा। अब मैं वह करता हूँ।

हिन्दू-मुसलिम एत्तहाद और दूसरे सभी समाजोंकी एकतामें मेरा विश्वास पहले ही जैसा दृढ़ है। हाँ, उसे सफल करनेका मेरा तरीका बदल गया है। पहले मैं सभाएँ करने, प्रस्ताव करनेमें शामिल होता था, और इस तरह एकता करना चाहता था। अब इन बातोंमें मेरा विश्वास नहीं रह गया है। उनके लिए हमारे यहाँ वातावरण नहीं है। अविश्वास, शक, डर और असहायपनेसे भरी हुई हवामें, मेरी समझमें इन तरीकोंसे एकता होनेके बदले, उसमें बाधा पड़ती है। मैं इसलिए परमात्मासे प्रार्थना और ऐसे व्यक्तिगत दोस्ताना कामोंपर भरोसा रखता हूँ। इस-लिए एकता पैदा करनेके लिए की गयी सभाओंमें जानेकी मुझे कोई ख्वाहिश नहीं रही है। तो भी इसके मानी यह नहीं हैं कि मैं ऐसे प्रयत्नोंको बुरा समझता हूँ। इसके उलटे, जिन्हें वैसी सभाओंमें विश्वास है, वे उन्हें जरूर करें। मैं उनकी पूरी सफलता चाहूँगा।

दोनों ही जातियोंकी मनोवृत्तिसे मेरा मेल नहीं बैठता। अपने खयालसे दोनों ही कह सकते हैं कि मेरा तरीका असफल रहा है। मैं जानता हूँ कि जिनकी रायकी कुछ कीमत है, उन लोगोंके बीच मैं अत्यन्त ही लघुसंख्यक दलमें हूँ। इन सभाओं वगैरहमें शामिल होकर मैं कोई उपयोगी सेवा तो कर नहीं सकता। और चूंकि सच्ची एकताको स्थापित देखनेके सिवाय मेरा दूसरा स्वार्थ नहीं है, इसलिए जहाँ मैं हाजिर होकर सेवा नहीं कर सकता, वहाँ मैं न जाना ही सेवा समझता हूँ।

मेरे लिए तो सत्य और अहिंसाको छोड़कर और किसी जरिये आशा नहीं है। मैं जानता हूँ कि जब सब कुछ असफल होगा, तब वे सफल होंगे। इसलिए चाहे मैं एक ही लघुसंख्यामें हो जाऊँ या मेरी ओर बहुमत हो मगर मैं तो वही रास्ता चलूँगा जो मुझे जान पड़ता है कि ईश्वर दिखलाते हैं। महज सामयिक नीतिके तौरपर आज अहिंसा किसी कामकी नहीं है। यह वैसी नीतिके तौरपर तभी कार-गर हो सकती है जब कि हमारे बीच इसके विरुद्ध चलनेवाली शक्तियाँ न होंगी। मगर जब कि हमसे उनका मुकाबिला पड़ता है जो हिंसासे खास हालतोंमें काम लेना-अपना ध्येय मानते हैं तो कामचलाऊ नीतिके तौरपर अहिंसाका सहारा टूट जाता है। अहिंसामें पूर्ण विश्वासीके विश्वासकी कसौटीका समय तभी आता है। इसलिए मैं और मेरे विश्वास दोनोंकी ही आज कसौटी हो रही है। और अगर हम सफल होते मालूम न पड़े तो आलोचक मेरे ध्येयको दोष देनेके बदले मुझे दोष देवें। मैं जानता हूँ कि कभी-कभी मैं अपने ध्येयके विरुद्ध लड़नेको लाचार हो जाता हूँ। अबतक मैं अपनेको ऐसा नहीं बना सका हूँ कि हिंसाका विचारभी न कर सकूँ। मगर परमात्माकी दी हुई सारी शक्ति लगाकर मैं प्रयत्न कर रहा हूँ।

अब शायद पाठक समझ गये होंगे कि मैं पहले जैसा अली बिरादरानके साथ क्यों नहीं रहता। अब भी मैं उनकी मुठीमें हूँ। वे अब भी मुझे सगे भाइयों जैसे प्रिय हैं। मुसलमानोंके गाढ़े दिनभर उनका साथ देनेके लिए मुझे अफसोस नहीं है। अगर फिर अवसर आया तो मैं वही करूँगा। अगर्चे हम दोनोंका उद्देश्य एक ही है मगर रास्ते एक नहीं हैं। वे तो मुझे शिमले और कलकत्तेकी सभा-ओंमें ले जाते। कोहाटके दंगेके बादसे घटनाओंको समझनेमें हम लोग एक राय नहीं हो सके हैं। मगर वह दोस्ती ही किस कामकी जो इसीपर निर्भर हो कि हर बातमें हमारी रायें मिलती रहें। सच्ची दोस्ती ऐसी होनी चाहिए जो सच्चे मतभेदको, चाहे वह कैसा ही तीव्र क्यों न हो, बरदाश्त करे। मैं मानता हूँ कि हमारे मतभेद सच्चे हैं और इसलिए जो मेरे और अली बिरादरान तथा दूसरे मुसलमान मित्रोंके बीच जिनका नाम पाठक सहज ही बूझ सकते हैं, जिन्हें दोस्तीके टूटने या उसमें कमीका शक था, जान जाँय कि वह पहले जैसी अब भी पक्की बनी हुई है।

'हिन्दी-नवजीवन'
८ दिसम्बर, १९२७

राष्ट्रीय महासभा-एकता

डॉक्टर अंसारीके भाषणकी विशेषता थी, एकताके लिए उनकी बलवती इच्छा। वे जानते थे कि एकता स्थापित करनेकी उनसे आशा की जाती थी। और अगर यह काम किसी सिर्फ एक आदमीके बूतेकी बात थी तो वह आदमी अवश्य डॉक्टर अंसारी ही थे। राष्ट्रका दिया हुआ सर्वश्रेष्ठ सम्मान उन्होंने इसलिए स्वीकार किया कि उन्हें राष्ट्रमें, इस कार्यमें और अपने आपमें विश्वास था। उन्होंने इस महत्वाकांक्षाकी पूर्तिके लिए उठा तो अवश्य ही कुछ नहीं रक्खा था। भाग्यने भी उनका साथ दिया। श्रीयुत श्रीनिवास ऐयंगरने भी उस समय अपनी साहसिकतासे उन्हें सहायता पहुंचायी। शिमलेकी आंशिक विफलताके बाद कोई सभापति उनके जैसा काम करनेका साहस नहीं कर सकता था। मगर श्रीनिवास ऐयंगर तो पीछे हटनेवाले आदमी नहीं हैं। उन्होंने अली बिरादरान, डॉक्टर अंसारी और मौलाना अबुल कलाम आजादको अपनी ओर कर लिया और अपने स्वाभाविक जोरो शोरसे अपना प्रस्ताव स्वीकार करा ही लिया। उन्होंने कोई एक ही हठ नहीं पकड़ लिया था। जब आखिर उनके प्रस्तावका बाजों और गो-कुशीवाला भाग उन्हें दिखलाया गया, जिसके कारण प्रायः सारीकी सारी ही बात बिगड़ी जा रही थी, और उन्हें उसके बदलेमें दूसरी बात सुझायी गयी, तो उन्होंने सच्चे मनसे, खूब खुलासगीसे और उदारताके साथ वह दोष स्वीकार कर लिया और कहा कि इस संशोधनसे मूल प्रस्ताव बहुत अधिक अच्छा हो जाता है। मुसलमानोंने भी अवसरको संभाल लिया। शुरूमें उन्हें कुछ हिचकिचाहट झिझक तो थी ही, मगर अन्तमें उन्होंने भी बिना किसी उज्रके इस सुधारको मान लिया। जहाँतक हो सके लोगोंकी साधारण इच्छाको माननेकी पूरी नियतसे ही मालवीयजी आये थे। वे यह बात जानते थे, और सब कोई समझते थे कि अगर वे चाहें तो एकताका रास्ता बन्द हो सकता है। मगर उन्होंने यह नहीं किया। बेशक कई संशोधन जो वे जरूरी समझते थे उन्होंने पेश किये, मगर अगर उनके संशोधन अस्वीकृत होते तो भी वे मूल प्रस्तावका विरोध करनेवाले नहीं थे। शायद पंडित मालवीजीयसे पुराना दूसरा कोई कांग्रेस-वादी नहीं है। महासभाके प्रति उनकी भक्ति अतुलनीय है। उनका देश-प्रेम ऊंचेसे ऊँचे प्रकारका है। मगर अबतक मेरे मुसलमान मित्र बराबर ही साम्प्रदायिकता बनाम राष्ट्रीयताके सम्बन्धमें उनके सदुद्देश्योंमें मेरे विश्वासकी कीमत घटाया करते थे। जहाँ कहीं हिन्दू-मुसलिम प्रश्नपर मेरा उनका मतैक्य नहीं हुआ है, तब भी मैं उन्हें शककी निगाहसे नहीं देख सका हूँ। इसलिए मेरे लिए यह बहुत बड़ी खुशीकी बात थी कि अली भाइयोंने एकताके प्रस्तावपर उनके उस महान भाषणको स्वीकार किया।

जबतक हिन्दू और मुसलमान नेता एक दूसरेकी नीयतों, भाषणों और कामोंमें अविश्वास करते हैं, तबतक सम्पूर्ण प्रस्तावोंके स्वीकृत होनेपर भी सच्ची एकता नहीं हो सकती। आइये हम आशा करें कि महासभामें जो विश्वास पैदा हुआ, वह कायम रहेगा और एक दूसरेसे फैलकर बढ़ता जायगा। मालवीयजीके भाषणकी खुशीमें मौलाना मुहम्मदअलीने कहा कि अब मुसलमान लार्ड विएटर-टनसे लघु-संख्याओंकी हिफाजतकी प्रार्थना नहीं करना चाहते क्योंकि यह काम मालवीयजी ज्यादा अच्छी तरह कर सकते है। अगर कोई एक हिन्दू अकेले ही मुसलमानोंको हिन्दुओंकी ओरसे ऐसी रक्षाका वचन दे सकता है तो वह केवल मालवीयजी ही हैं। मालवीयजी यह कहकर दिखा सके या नहीं मगर मौलाना साहेब और दूसरे मुसलमान और दूसरी लघु-संख्याएँ हमेशेके लिए यह खयाल छोड़ देवें कि कोई तीसरा हमारी रक्षा करेगा या करनेकी उससे उमेद रखनी चाहिए।

अगर बहुसंख्याएँ यह रक्षण न देवें तो उनसे यह जब्रन छीनना इसकी बनिस्बत कहीं अच्छा होगा कि कोई तीसरा बुलाया जाय जो दोनोंको कमजोर करे, जलील करे, और राष्ट्रको गुलाम बनाये रक्खे। इसलिए मेरे लिए तो महासभाका सबसे बड़ा काम था हार्दिक भावनाका यह परिवर्त्तन।

जहाँ तक अधिकांश हिन्दुओंसे मतलब है? सिर्फ बाजा और गायके सवाल-से उनका संबंध है। इस प्रस्तावका मूल रूप तो बिलकुल ही बुरा था। अंतमें विषय-समितिसे स्वीकृति होकर वह जिस रूपमें निकला, उसके बारेमें सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि वह निर्दोष है, और हमारे राष्ट्रीय विकासकी इस स्थितिमें उसका सबसे अच्छा यही रूप स्वीकृत हो सकता था। कमसे कम मैं तो उसपर खुशियाँ नहीं मना सकता हूं। मैं तो उसे सिर्फ कामचलाऊ प्रस्तावके ही रूपमें रहने दे सकता हूँ, मगर तौभी उससे बहुत कुछ हो सकता है। अगर महासभाकी अपील हिन्दुओं और मुसलमानोंके दिलमें घर कर सके और दोनों सम्प्रदाय एक दूसरेके भावोंकी उसी प्रकार रक्षा करें जैसे कि ये अपने दावे पेश करते हैं, तो शान्ति तुरन्त हो सकती है, स्वराज सहज ही मिल सकता है।

राष्ट्रके सामने अंग्रेजी साम्राज्यकी ताकतकी जो शेखी बड़ी उद्धततासे लार्ड बरकेनहेड बघार रहे हैं उसका सबसे अच्छा और गौरवपूर्ण जवाब यही होगा कि हम परस्पर सिरफुड़ौवलकी बेवकूफी समझकर उसे छोड़ देवें।

इसलिए महासभाकी अपीलको जाँच करनेसे लाभ होगा। मैं जानता हूँ कि गायोंके बारेमें हिन्दुओंके भावोंकी रक्षा करनेके लिए क्या करना होगा।

जबतक मुसलमान स्वेच्छापूर्वक खुराक या बकरीद दोनोंके ही लिए गो-वध बिलकुल ही बंद नहीं कर देते, यह होनेकी नहीं है। अगर कोई जालिम शक्तिके बलपर गायको कसाईके हाथसे बचाये रहे तो इससे हिन्दू धर्मको संतोष नहीं होगा।

हिन्दुस्तानमें हिन्दू धर्मको इस्लाम इससे अच्छा उपहार नहीं दे सकता कि वह गो-वध इस तरह स्वेच्छापूर्वक बंद कर देवे। और मैं इस्लामसे इतना अधिक परिचित हूँ कि मैं यह दावा करता हूँ कि इस्लाम गो-वधको अनिवार्य नहीं बताता मगर अपने अनुयायियोंको इसलिए लाचार जरूर करता है कि वे अपने पड़ोसियों-के भावोंका जहाँ तक संभव होवे, सम्मान करें।

मेरे लिए मस्जिदोंके आगे बाजेका सवाल गो-कुशीके बराबर महत्वपूर्ण नहीं है। मगर इसका भी महत्व इतना बढ़ गया है कि उसकी उपेक्षा करनी बेवकूफी होगी। यह तो मुसलमानोंके कहनेकी बात है कि उनके भावोंकी रक्षाके लिए क्या करना चाहिये। और अगर मस्जिदोंके आगे बाजे बजाना कतई बंद करनेसे ही मुसलमानोंके भावोंकी रक्षा हो सकेगी तो बिना एक क्षण भी सोचे हुए ऐसा करना हिन्दुओंका कर्त्तव्य है। अगर हमें हार्दिक एकता चाहिये तो हममेंसे हर एकको यथेष्ट स्वार्थ-त्याग करनेको तैयार रहना चाहिये। अगर यह अत्यंत इष्ट फल होना है तो डॉक्टर अंसारीको शान्ति-दल भेजने होंगे जो इस संदेशका प्रचार करें और जनतासे भी इसे स्वीकार करावें।

क्या हमारे पास इस संदेशका प्रचार करनेके लिए काफी इमानदार, मिहनती और इच्छुक प्रचारक हैं? आइए, हम आशा करें कि हैं।

हिन्दी-नवजीवन
५ जनवरी, १९२८

हमारा कर्त्तव्य

गोधरामें जो करुणा-जनक दुर्घटना हो गयी, और जिसके कारण भाई पुरुषोत्तम दास शाहने वीरतापूर्वक मृत्युकी भेंट की, उसके बारेमें 'नवजीवन' में मैंने एक टिप्पणी लिखी थी। उसका शीर्षक दिया था 'गोधरामें हिन्दू-मुसलमानोंके बीच लड़ाई'। यह कितने एक हिन्दू भाइयोंको न रुचा। उसमेंसे कितनोंने क्रोध भरे पत्र लिखे और शीर्षक सुधारनेको कहा। मैं उसका शीर्षक नहीं सुधार सका। एकका मरण हो या अनेकका, दो पक्ष आमने सामने लड़ें या एक मारे और दूसरा मरे, मगर तो भी अगर यह सब लड़ाईके ही कारण हुआ हो तो यह लड़ाईमें ही आवेगा। क्या गोधरामें और क्या दूसरे स्थानोंमें, किन्तु आज हिन्दू-मुसलमानोंके बीच लड़ाई ही चलती है। सौभाग्यसे अबतक गाँव उससे अछूते रहे हैं। और कुछ ही शहरोंको छोड़

कर बाकी सभी छोटे बड़े शहरोंमें, एक या दूसरे रूपमें लड़ाई ही चालू रही है। अपने पास आये पत्रोंमेंसे भी मैं यही देखता हूँ कि गोधरामें जो कुछ हुआ, वह लड़ाईका ही परिणाम है—इसे कोई इनकार करता हुआ नहीं जान पड़ता है।

इसलिए अगर महज लेखके नामकी फिरयाद करके लेखक शान्त रहते तो मैं यहाँ कुछ भी न लिखता, और उन फिरयाद करने वालोंको अलग-अलग जवाब देकर शान्त हो जाता।

किन्तु दूसरे पत्र जो आये हैं, उनमें मुझपर दूसरे ही कारणसे क्रोध फूट निकला है। किसी स्वयंसेवकने एक लम्बा पत्र लिखा है, जिसका सारांश यह है—"आप लिखते हैं कि मैंने हिन्दू-मुसलमानोंकी लड़ाईके विषयमें मौन लिया है। जब आपने हमसे खिलाफतमें मदद दिलवायी थी, तब मौन क्यों नहीं लिया था? आपने अहिंसाकी बात करते समय क्यों न मौन लिया? अब जब दोनों लड़ रहे हैं तब आप मौन धारण कर बैठे हैं। यह कहाँका न्याय है? इसमें अहिंसा कहाँ आयी? दो घटनाओंकी ओर आपका ध्यान खींचता हूँ।

एक हिन्दू व्यापारीने मुझसे कहा—

"मेरी दूकानमें आकर मुसलमान चावलके बोरे ले जाते हैं। वे दाम नहीं देते और मुझसे मांगना भी पार नहीं लगता। क्योंकि अगर मांगू तो वे मेरी बखार ही लूटेंगे। इसलिए मुझे हर महीने उससे पंद्रह बोरेतक मुफ्त देने पड़ते हैं और एक बोरेमें ५ मन चावल होता है।"

दूसरे कहते हैं—

"हमारे मुहल्लोंमें मुसलमान आकर हमारे देखते हुए ही हमारी स्त्रियोंका अपमान करते हैं। और हम एक शब्द नहीं बोल सकते। अगर हम कुछ बोलें तो अपना भोग पावें। इस बारेमें हम कुछ फिरयाद भी नहीं कर सकते।

"अब आप ऐसी घटनाओंमें क्या सलाह देंगे? अहिंसा-धर्म किस प्रकार चलावेंगे? इसका भी जवाब मौन खाते ही लिखियेगा क्या?"

इस प्रकारके प्रश्नोंके जवाब नवजीवनमें दिये जा चुके हैं। मगर तौ भी वे फिर फिर पूछे ही जाते हैं, इसलिए उनका जवाब देना उचित है।

अहिंसा कुछ डरपोकका, निर्बलका धर्म नहीं है। वह तो बहादुर और जानपर खेलनेवालेका धर्म है। तलवारसे लड़ते हुए जो मरता है, वह अवश्य बहादुर है, किन्तु जो मारे बिना धैर्यपूर्वक खड़ा-खड़ा मरता है, वह अधिक बहादुर है। इसलिए जो मारके डरके चावलके बोरे दे देता है, वह डरपोक है, कायर है, अहिंसक नहीं है, वह अहिंसाके तत्त्वको नहीं जानता है।

मारके डरसे जो अपनी स्त्रियोंका अपमान सहन करता है, वह मर्द न रहकर नामर्द बनता है। वह न है पति बनने, या पिता बनने या भाई बननेके लायक। ऐसे आदमियोंको फिरयाद करनेका अधिकार नहीं है। जहाँ नामर्द बसते हैं वहाँ बदमाश तो होंगे ही।

ऐसी घटनाएं हिन्दू-मुसलमानोंके झगड़ेसे परे हैं। जहाँ मूर्ख होंगे, वहाँ ठग भी होंगे ही। उसी तरह जहाँ नामर्द होंगे, वहाँ गुण्डे भी होंगे ही। पीछे वे भले ही हिन्दू हों चाहे या मुसलमान। झगड़ा शुरू होनेके पहले भी ऐसी घटनाएं हुआ ही करती थीं। इसलिए वहांपर प्रश्न यह नहीं है कि अमुक जातिसे कैसे बदला चुकाया जाय अथवा उसे कैसे भला बनाया जाय। किन्तु सवाल यह है कि जो नामर्द हों वे कैसे मर्द बनाये जायँ। जो चतुर हैं, स्याने हैं, वे अगर हिन्दू-मुसलमान लड़ाईके मूलमें रही हुई दोनों जातियोंकी निर्बलताको देख जायँ तो हम इन झगड़ोंका हल तुरत ही निकाल सकते हैं। दोनोंको बलवान बनना है, दोनोंको चतुर बनना है। दोनों अथवा एक समझकर होशियार बने तो यह हुआ अहिंसाका मार्ग; दोनों हारकर होशियार बनेंगे तो यह हिंसाका मार्ग होगा। मनुष्य-समाजमें यानी स्वतंत्रताको पूजनेवाले समाजमें कायरको स्थान नहीं है। स्वराज कायरके लिए नहीं है।

इसलिए ये घटनाएं लिखकर अहिंसाकी निन्दा करनी, या मुझपर रोष करना, मेरी दृष्टिमें व्यर्थ है। १९२१ के सालमें बेतियाके अनुभवके बादसे ही मैं कहता हूँ कि जो मरकर अपनी या अपनोंकी रक्षा नहीं कर सकता, उसे मारकर अपनी या अपने संगीकी रक्षा करनेका अधिकार है, यह उसका धर्म है। जिसमें इतनी शक्ति न हो, वह नपुंसक है। उसे कुटुंबका मालिक या पालक होनेका अधिकार नहीं है। उसे अरण्यका सेवन करना चाहिये अथवा वह हमेशे लाचारकी स्थितिमें रहेगा, उसे रोज चींटीके समान पेटके बलपर रेंगनेके लिए तैयारीमें रहना चाहिए।

मेरे पास एक मात्र अहिंसाका ही मार्ग है। मुझे हिंसाका मार्ग रुचता नहीं है। उसे सिखानेकी शक्ति मैं नहीं पैदा करना चाहता। आज जो वातावरण फैला हुआ है उसमें अहिंसाके प्रचारको स्थान नहीं है। इसलिए मैं चालू लड़ाइयोंके बारेमें मौन धारण कर बैठा रहा हूँ। अपनी ऐसी लाचारीका प्रदर्शन मुझे प्रिय नहीं हो सकता। मगर ईश्वरका यह कायदा नहीं है कि हमेशे हमें जो अप्रिय हो, वह न होने देवे, और प्रिय हो वही होने देवे। फिर ईश्वर निराधारका ही बेली है,

> 'निर्बलके बल राम,
> जब लगि अपनो बरत्यो, नेक सरयो नहि काम,
> निर्बल होय बलराम पुकारयो आयो आधे नाम।

यह सब जानता हूँ इसलिए अपनी लाचारीको सहन कर रहा हूँ, और विश्वास रखता हूँ कि मुझे किसी दिन ईश्वर ऐसा मार्ग बतलावेगा कि जिसे ग्रहण करके लोगोंको बता सकूँगा। यह विश्वास मैं जरा भी नहीं खो बैठा हूँ कि हिन्दू-मुसलमानको किसी न किसी दिन एक होना ही है। यह हम कैसे जाने कि ये कब और कैसे मित्र बनेंगे। भविष्यकी सरदारीका इजारा, ईश्वरने अपने ही हाथोंमें रखा है। हमें उसने विश्वास रूपी नौका दी है। उसमें हम बैठें तो सहज ही शंका रूपी समुद्रको पार कर जायेंगे।

हिन्दी-नवजीवन
११ अक्टूबर, १९२८

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न

इसके अलावा हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नपर 'एक युवक हृदय'ने जो लिखा, उसमेंसे नीचेके फिकरे उतारता हूँ—

"यह समझ कर कि हिन्दू मुसलमानोंके बीच एकता करानेके आपके प्रयत्न निष्फल जाते हैं, आप उस संबंधमें जो लगभग मौन धारण कर बैठे है, वह मुझे ठीक नहीं लगता है। भले ही इस संबंधमें आप मौनका सेवन करें। किन्तु क्या आपका यह फर्ज नहीं है कि जहां-जहां तूफान होते हों, वहांकी पूरी हकीकत मँगाकर, विचार करके दोषीको दोषी कहिए। भले ही आप कोई सक्रिय भाग न लेवें, मगर दोनों पक्षोंकी बातें निष्पक्षतासे सुननेके बाद आपकी निगाहमें जो कुसूरवार ठहरे उसे स्पष्ट शब्दोंमें कहना क्या देशके हितको नुकसान करने वाला है? गोधरा तथा सूरतमें जो झगड़े हुए हैं, उनके बारेमें जो ढंग आपने अख्तियार किया था वह सचमुच ही योग्य नहीं है। कानेको काना कहनेकी जो शूरवीरता आप और जगह दिखलाते हैं वह इस प्रसंगपर कहाँ चली जाती है? हरि! हरि! मुझे सचमुच ही आपके ढंगपर आश्चर्य होता है। अंतमें इस संबंधमें आपसे मेरी यह नम्र प्रार्थना है कि आप हिन्दुओंको अगर वे आपकी व्याख्या वाली अहिंसाका पालन न कर सकें तो, उन्हें जो लोग निष्कारण हैरान करते हों, उनका विरोध करनेकी सलाह देवें और जो मुसलमान भाई हिन्दुओंको दुश्मनके रूपमें देखते हों उनके प्रति तिरस्कारकी भावना सख्त और स्पष्ट शब्दोंमें प्रकट कीजिए।"

इस विषयकी बाबत भी मैं अपनी स्थिति बतला गया हूँ। मेरी उमेद है कि इसमें ऐसी कोई बात नहीं है कि मैं किसीके डरसे अपनी राय नहीं प्रकट करता हूं। किन्तु जहाँ मेरा लिखना प्रस्तुत न हो, या राय कायम करने लायक काफी मसाला मेरे पास न हो अथवा जहाँ मेरा क्षेत्र न हो वहाँ मैं मौनको अपना धर्म मानता हूँ। हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नके बारेमें मेरी दवा अभी दो पक्षमेंसे एक भी कुबूल करनेको तैयार नहीं है। इसलिए मेरा कहना अप्रस्तुत हो जाता है और यह प्रश्न हालमें तो मेरे क्षेत्रके बाहर गया हुआ गिना जायगा।

अब बात रही हुए और होने वाले झगड़ोंके बारेमें सम्मति दर्शानेकी। जबकि मैंने इस प्रश्नको अपने क्षेत्रके बाहर गिना, तब मुझे उसके बारेमें सम्मति देनेकी जरूरत भी नहीं रह जाती है और जबतक मैं दोनों पक्षोंका जो कुछ कहना हो, जाँच उसकी न कर लूं, तबतक मेरा राय देने बैठना अयोग्य, अविनयी गिना जायगा। इसमें अन्याय भी हो जा सकता है। जिस प्रश्नको मैं सुलझा न सकूं, उसके बारेमें अपने आप ही पूछताछ करने भी क्यों जाऊँ?

किन्तु इसके ऊपरसे कोई यह न माने कि मैंने इस प्रश्नके संबंधमें हमेशाके

लिए अपने हाथ धो लिये हैं। मैं तो एक कुशल वैद्यके समान, जिसे अपनी दवापर श्रद्धा है अपने समयकी राह देख रहा हूं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस असाध्य जैसे जान पड़ने वाले रोगोंके लिए मेरी ही दवा रामबाण है और उसका प्रयोग एक या दोनों ही पक्षोंको करना पड़ेगा।

इस बीच जिन्हें लड़ना होगा, वे मेरे कहे बिना भी लड़ लेंगे। उसमें किसीके प्रोत्साहनकी आवश्यकता नहीं रहती है। मैं यह तो नहीं चाहता कि कोई अपनी निर्बलतासे लड़े और नामर्दी दिखलावे। नामर्दीमेंसे अहिंसाकी वीरता नहीं पैदा हो सकती। हिंसा अहिंसा दोनोंमें बहादुरीकी आवश्यकता तो है ही। अहिंसा वीरताकी पराकाष्ठा है।

हिन्दी-नवजीवन
६ सितम्बर, १९२८

❀

श्री जिनासे बातचीत

बम्बईमें श्री जिनासे मेरी जो बातचीत हुई है, उसे लेकर हवामें किले बाँधनेकी कोई जरूरत नहीं देखता हूँ। पश्चिमी देशोंकी सफल और उज्वल यात्राके बाद श्रीमती सरोजिनी देवी जबसे स्वदेश आयी हैं, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यको सफल बनानेके लिए वह बराबर प्रयत्न कर रही हैं, उपाय सोच रही हैं। इसी इरादेसे वह एक दूसरेकी मुलाकातके लिए भी कोशिश कर रही थीं। चूँकि आते ही वह बम्बई ठहरी थीं, सहज ही श्री जिनासे मिलकर उन्होंने अपने कामका श्रीगणेश कर दिया और इलाहाबादमें मुझसे कहा कि मैं बम्बई जाकर शीघ्र ही श्री जिनासे और अली भाइयोंसे किसी दिन मिल लूँ। इसी कारण मैं बम्बई गया था। पहले श्री जिनासे मिला और बादमें अली भाइयोंसे। हमारी बातचीत मित्रोंका वार्तालाप थी। दोनों वार्तालापोंका एक दूसरेसे कोई सम्बन्ध न था। वास्तवमें वे मित्रोंकी आपसमें बातचीत ही थी। अतएव उन्हें कोई खास महत्व देनेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए। मुझे कोई प्रतिनिधिका अधिकार प्राप्त नहीं है, और न मैं किसी प्रतिनिधिकी हैसियतसे गया ही था। हाँ इतना जरूर है कि मैं स्वभावतः ही शान्ति और समझौतेके तमाम मार्गोंकी छानबीन कर डालना चाहता हूँ। और यही वजह है कि जिन लोगोंका भारतमें थोड़ा भी प्रभाव है, उनकी मनोदशाका परिचय पानेकी एक भी संधि खोता नहीं। अतएव जनताके लिए तो यही अच्छा है कि वह इन वार्तालापोंके परिचय या विषयको लेकर बड़ी-बड़ी आशाएं न बांधे। अगर इनका कोई परि-

नाम निकला ही तो जनता भी अवश्य उसे जानेगी। इस दर्मयान जिनका प्रार्थनामें विश्वास है, वे मेरे साथ मिलकर प्रार्थना करें कि इस देशकी हिन्दू-मुसलमान और दूसरी सब जातियोंमें शीघ्र ही एकता या सन्धि हो जाय। और जो लोग मेरे समान खुद भी हमारी उन्नतिके लिए—हमारी ही नहीं बल्कि सारी दुनियाकी प्रगतिके लिए भी—ऐसी एकताको अनिवार्य समझते हैं वे उसे पानेकी जीतोड़ मेहनत करें। सचाईके साथ किया गया प्रत्येक छोटासे छोटा प्रयत्न हमें एकताके निकट पहुँचाएगा।

हिन्दी—नवजीवन
१५ अगस्त, १९२९

❀

थोड़े सवाल-जवाब

सत्याग्रह शुरू करनेकी बातें चल रही हैं, इस बारेमें कुछ मित्रों और टीकाकारोंके पूछे हुए सामयिक प्रश्नोंका जवाब देना आवश्यक है।

प्र०—आप इतने अधीर तो नहीं न हो गये हैं कि सरकारको अपने इरादों और योजनाओंकी इत्तिला किये बिना, और उसे आपको सन्तुष्ट करने या गिरफ्तार करनेका मौका दिये बिना ही आप सत्याग्रह छेड़ देंगे?

उ०—जो लोग मेरे पिछले कामोंसे वाकिफ हैं उन्हें जानना चाहिए कि चोरीसे या अधीर होकर कोई काम करना मैं सत्याग्रहके विरुद्ध मानता हूँ। एक भी सच्चा कदम आगे बढ़ानेसे पहले मैं वाइसरायको अपने इरादेकी इत्तिला जरूर करूँगा। अपने विरोधी या नामधारी दुश्मनोंसे सत्याग्रही कोई बात छिपा नहीं रखता।

प्र०—क्या लाहोरमें आपने यह नहीं कहा था कि सविनय कानून भंगके लिए, खासकर बड़े पैमानेपर कर न देनेकी लड़ाई लड़नेके लिए देश तैयार नहीं है?

उ०—मुझे यह तो आज भी विश्वास नहीं है कि देश तैयार है। लेकिन पहले जो बात मैं साफ तौरसे नहीं देख पाता था वही आज मुझे दियेके समान स्पष्ट प्रतीत हो रही है और वह यह है कि हम यह नहीं कह सकते कि अहिंसाका जो वातावरण आज नहीं है, वह कल बन जायगा; इसके विपरीत हम देख रहे हैं कि आजकल देशमें हिंसक वातावरण बढ़ रहा है और अगर अहिंसावादी चुपचाप बैठे रहें तो शायद यह बढ़ता ही रहेगा, क्योंकि देशके नौजवान अधीर हो उठे हैं। मुझे विश्वास है कि चूँकि सन् १९२१ में महासभाने सत्याग्रह करनेका निश्चय किया था, इसलिए इनमेंसे बहुतेरे लोगोंने अपने हिंसात्मक कार्यक्रमको मुल्तवी कर दिया था। जैसे-जैसे मैं यह कहता हूँ कि देश सविनय कानून भंग करनेके लिए तैयार नहीं है, वैसे ही वैसे

नौजवान अधिक चंचल या अस्थिर चित्त बनते गये हैं। अतएव अब मैं यह महसूस करता हूं कि अगर अहिंसामें हिंसाको दबा देनेकी शक्ति है—और मुझे विश्वास है कि है—तो हिंसाकी धधकती हुई ज्वालाओंके बीच भी अहिंसाका चमत्कार सफल होना चाहिए। लेकिन इस संबंधमें एक कठिनाई यह थी कि चूंकि कांग्रेस सारे हिन्दुस्तानकी प्रतिनिधि सभा होनेका दावा करती है, इसलिए, क्या महासभा-वादियोंके और क्या औरोंके, हरएक हिंसाकाण्डकी जिम्मेदारी अपने सिर लिए बिना कांग्रेस सविनय कानून भंग नहीं कर सकती। अब इस भद्र अवज्ञाकी जिम्मेदारी अपने सिर लेकर मैंने इस मर्यादाके बंधनका तोड़ खोज निकाला है। क्योंकि मैं तो किसीका प्रतिनिधि नहीं हूँ, अतएव जिन्हें स्वयं अपने साथ लड़ाईमें शामिल करूंगा; उन्हींके लिए जिम्मेदार भी रहूँगा। इसलिए फिलहाल तो जो लोग आश्रमके नियमोंका पालन कर रहे हैं और कुछ समय पहलेसे तदनुसार बरत रहे हैं, उन्हींको मैं अपनेमें शामिल करना चाहता हूँ। यह सच है कि लड़ाईके दरम्यान देशमें मार-काट शुरू हो जानेपर, अप्रत्यक्ष रीतिसे क्यों न हो, मगर उसकी जिम्मेदारी मेरे ही सिर रहेगी। लेकिन ऐसी जिम्मेदारी तो हमेशा ही रहेगी। वैसे तो आज मैं ब्रिटिश सरकारके साथ, जितना कम और अनिच्छासे ही क्यों न हो, जो सहयोग कर रहा हूँ उसके फलस्वरूप जनतापर होनेवाले शासकोंके अत्याचारका मैं जितना भागीदार हूं उससे कुछ ही अधिक जिम्मेवार मुझे दूसरोंके हिंसाकाण्डके लिए समझा जाना चाहिए। मसलन, आज मैं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे कर देकर सरकारके साथ सह-योग कर रहा हूँ। मैं नमक खाता हूं और इतने हीसे जानबूझ कर सरकारके साथ सहयोग कर लेता हूं।

एक दूसरी बात जो मुझे पहलेकी अपेक्षा आज स्पष्टतम प्रतीत होती है, यह है: ब्रिटिश साम्राज्यका पोषण करनेके लिए इस देशमें जिस तरह राज्य किया जाता है वह हिंसाकी महामूर्ति है। यह राज्य तो जान बूझकर हिंसाकी ही बुनियाद पर खड़ा किया गया है, और दूसरी ओर हमारे अधीर देशभक्त हिंसाके जालमें फँस गये हैं। वे नहीं जानते कि उनकी भद्दी और निष्फल खूनखराबीसे वे इस राज्यकी सहायता कर रहे हैं और जिसका नाश करना चाहते हैं उसीको जड़ मजबूत बना रहे हैं। अब जब कि हिंसाके सम्पूर्णावतार इस राज्यको मेरी अहिंसा सहन कर रही है तो उन अज्ञान, अधीर युवकोंकी हिंसाको क्यों न सह लेगी? आज मैं यह स्पष्ट ही अनुभव कर हूं कि मेरी अहिंसाके प्रयोग ब्रिटिश कुराज्यके खिलाफ अपना काम कर रहे हैं और उनसे इस कुराज्यकी नींव कुछ हदतक जरूर ही हिली है। ठीक इसी तरह यदि आज मैं अपनी सारी हिम्मत इकट्ठा करके अहिंसाका प्रयोग करूँ अर्थात् सविनय कानून भंग छेड़ दूँ तो उतावले देशभक्तोंकी राज्य विरोधिनी हिंसाको भी मेरी अहिंसा झिगा देगी। लड़ाईका सारा नियंत्रण-भार अपने हाथोंमें लेकर मैं इस दूसरे प्रकारकी हिंसाके जोखमको बहुत ही कम किये देता हूं। इतना कह चुकने-पर भी 'टाइम्स ऑव इण्डिया' ने मेरे इरादोंका जो वर्णन किया है, मेरे विचारसे

उसमें सत्य है। मैं जो कदम बढ़ाया चाहता हूँ उसे वह 'जुआखोरका आखिरी दाव' कहता है—भले कहे। मैंने अपनी जिन्दगी भर एक जुआ ही खेला है। सत्यकी खोजके मेरे अकथ प्रयत्नोंमें और अपनी श्रद्धाके अनुसार निःशंक होकर अहिंसा संबंधी प्रयोग करते रहनेमें मैंने चाहे जैसे भयंकर खतरेका सामना करनेमें कसर नहीं रक्खी है। यह करते हुए अगर मैंने कोई गलती की है, तो हरएक देश और हरएक युगके सुप्रसिद्ध शास्त्रियोंने जो गलती की थी वैसी ही गलती मुझसे भी हुई होगी। उन्होंने अपने जीवनके साथ कोई कम बाजियाँ नहीं दी हैं।

प्र०—लेकिन आपको तो हिन्दू-मुस्लिम एकतामें बड़ा भारी विश्वास था न, अब वह क्या हुआ? बगैर इस एकताके आपके पूर्ण स्वराजका भी क्या होगा?

उ०—इस एकताके बारेमें मेरी श्रद्धा जैसी पहले थी वैसी ही आज भी है। मैं ऐसा स्वराज्य नहीं चाहता, जिसमें एक छोटीसे छोटी कौमके साथ भी अन्याय हो तो फिर ताकतवर मुसलमानों और उन्हींकी बराबरीके सिक्खोंके साथ अन्याय करनेवाले स्वराज्यको मैं क्यों चाहने लगा? लाहौरकी महासभामें एकताका जो प्रस्ताव पास हुआ है वह इससे पहले महासभाने इस दिशामें जितने भी प्रयत्न किये थे, उन सबका निचोड़ है। लाहौरके प्रस्तावकी मन्शा है कि महासभा कौमी सवालोंको कौमी ढंगसे हल नहीं करेगी, लेकिन अगर ऐसे सवालोंको हल करना उसके लिए लाजिमी ही हो पड़ेगा तो वह किसी ऐसे ही फैसलेका विचार करेगी, जिससे न्यायकी इच्छुक कौमको न सिर्फ न्याय मिले बल्कि वह सन्तुष्ट भी हो। यह धारणा है कि जो संग्राम मैं छेड़नेवाला हूँ उससे देशकी सारी जनतामें स्वतंत्र होनेकी शक्ति पैदा होगी। जबतक सब दल एक नहीं होंगे, स्वतंत्रताका साक्षात्कार भी नहीं होगा। सत्याग्रहका कौमी सवालसे कोई सरोकार हो नहीं सकता। फिर भी यह दलील करना कि जबतक कौमी सवालका निपटारा न हो जाय सत्याग्रह शुरू नहीं किया जाना चाहिए, तेलीके बैलको भूल-भुलैयाका-सा है—यह कहना ठीक नहीं कि जबतक कौमी सवालका निपटारा न हो सत्याग्रह न छेड़ा जायगा। यह सम्भव है कि सत्याग्रह शुरू न हो तबतक यह सवाल भी हल न हो सके। मुझे आशा है कि अगर महासभाने कौमी सवालका प्रस्ताव शुद्ध नीयतसे किया है और अगर वह इस बारेमें एकनिष्ठ बनी रही तो वह एक ताकतवर मध्यस्थ या बिचवई साबित होगी और कमजोरसे कमजोर कौमके हितकी भी भली-भाँति रक्षा कर सकेगी। ऐसी महासभाके सदस्य जनताके सच्चे सेवक होंगे, सत्ता या अधिकारके लोलुप नहीं। पूर्ण स्वराज्य या एकताकी सिद्धितक ये सरकारी ओहदों या सरकारकी कृपा पानेके लिए छोटी-छोटी कौमोंके साथ स्पर्धा नहीं करेंगे। खुशनसीबी कहिये कि धारासभाओंसे महासभाका अब कोई ताल्लुक नहीं रह गया है। इन्हीं धारासभाओंने कौमी जहरके पैदा करनेमें अधिकसे अधिक भाग लिया है। हाँ, यह एक दुःखद बात जरूर है कि आज महासभाके सदस्योंमें ज्यादातर हिन्दू ही हैं। लेकिन अगर महा-

सभाके हिन्दू कौमी या जातीय दृष्टिसे विचार करना छोड़ देंगे, और दूसरी कौमोंको जो सहूलियतें बराबरीसे नहीं मिलती हैं, उनसे आप भी मुँह मोड़ लेंगे तो उनके इस कामसे दूसरी कौमोंका अविश्वास फौरन ही मिट जायगा और अच्छेसे अच्छे मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई, यहूदी, और अपने आपको भारतीय माननेवाले दूसरे सब उनके साथ हो जायँगे । पर महासभा इस आदर्शतक किसी दिन पहुँचे या न पहुंचे, मेरा मार्ग तो सदाकी भाँति साफ ही है। सब कौमोंकी एकता मेरे लिए कोई नयी चीज, नया प्रेम नहीं है। मैं समझने लगा तभीसे मैंने इस एकताको अपने प्राणसे भी बढ़कर माना है और तदनुसार ही मैं बरतता आया हूँ। सन १८८९ में एक युवककी हैसियतसे जब मैं विलायत गया था तब भी कौमी एकताके बारेमें मेरी श्रद्धा आज ही की भाँति जागृत थी। १८९३ में जब मैं दक्षिण अफ्रीका गया तो वहाँ भी मैंने इस एकताको ही केन्द्र बनाकर अपने जीवनका एक-एक कदम आगे बढ़ाया था। इस तरहका बद्धमूल प्रेम सारे संसारका राज्य मिलनेपर भी छोड़ा नहीं जा सकता । उलटे मुझे तो विश्वास है कि आगामी संग्रामके कारण जन-साधारणका ध्यान कौमी सवालसे हटकर हरएक धर्म और हरएक पंथके भारत-वासियोंके सामूहिक कल्याणके प्रश्नकी ओर आकर्षित होगा, वहीं जाकर ठहरेगा ।

प्र०—तो क्या आप ब्रिटिश जनताका विरोध करने वाली, उसे बैर बाँधने वाली एक शक्ति खड़ी करने जा रहे हैं ?

उ०—कभी नहीं। इस लोक या परलोककी किसी भी चीजके मुकाबले मुझे अहिंसा ज्यादा प्यारी है। सत्यके प्रति भी मेरे हृदयमें इतना ही प्रेम अवश्य है, क्योंकि मेरे मनमें तो सत्य और अहिंसा दोनों एक ही अर्थके सूचक हैं। और बगैर अहिंसाके सत्यके निकट पहुँचना या सत्यका दर्शन करना अशक्य है। यदि मेरे जीवनमें भिन्न-भिन्न धर्मोंके बीच कोई भेद नहीं है, तो भिन्न-भिन्न विचार-मार्गों, पंथों अथवा जातियोंके बीच भी कोई भेद नहीं है। मैं यह मानता हूँ कि हर तरहकी विभिन्नता होते हुए भी मनुष्य आखिर मनुष्य ही है। इस लड़ाईके छेड़नेमें भारतीयोंके प्रतिका प्रेम मेरे लिए जितना प्रेरक कारण है उतना ही प्रेरक कारण अंग्रेजोंके प्रतिका प्रेम भी है। मैं स्वयं कष्ट सहकर उनका हृदय-परिवर्तन करना चाहता हूँ, उनका नाश नहीं चाहता ।

प्र०—लेकिन क्या आप यह नहीं सोचते कि हमारे इस स्थूल जगतमें आपके ये स्वप्न कभी सच्चे सिद्ध नहीं होंगे ?

उ०—अगर ऐसा ही हो तो भले हो। मैं जानता हूँ कि मुझपर ऐसे आरोप लगाये जाते हैं। भूतकालमें मेरे स्वप्न सच्चे सिद्ध हुए हैं, उपयोगी हो पड़े हैं, तो फिर यह आखिरी स्वप्न ही व्यर्थ क्यों होगा ? यदि व्यर्थ ही हुआ तो नुकसान केवल मेरा और मेरे प्रभावमें आने वालोंका ही होगा। लेकिन अगर सरकारको मेरे इस सपनेका बुरा नतीजा साफ दिखायी पड़ता हो तो वह जब चाहे तब मेरे शरीरपर

अपना अधिकार जमा सकती है। अगर मेरे सत्याग्रह छेड़नेकी धमकीके कारण किसी अंग्रेजकी जान आजकी अपेक्षा अधिक खतरेमें पड़ती हो तो कश्मीरसे कन्या-कुमारी और करांचीसे डिब्रूगढ़के बीच होने वाली तमाम खून-खराबीको दबा देनेके लिए ब्रिटिश सरकारका राजदण्ड काफी लम्बा और समर्थ है।

एक बात और। तमाम राजनीतिज्ञ और समाचारपत्रोंके सम्पादक मुझसे 'अपील' करनेके बजाय सरकारसे 'अपील' करें और वह जो अत्याचार आज सदियों से इस देशपर करती आ रही है उन्हें दूर करनेके लिए उसे समझावें, तो सत्याग्रह संग्रामको छेड़नेकी आवश्यकता भी न रह जाय। इन अन्यायों या अत्याचारोंमेंसे कुछका जिक्र तो मैं इन पत्रोंमें एक हद तक कर चुका हूँ।

हिन्दी-नवजीवन
२७ फरवरी, १९३०

❀

हिन्दू-मुस्लिम एकता

कौमी सवालके बारेमें मेरे रुखको लेकर आजकल तरह-तरहकी गलतफहमियाँ फैलायी जा रही हैं। अतएव यहाँ किसी तरहकी दलील न करके मैं जितने स्पष्ट शब्दोंमें अपनी स्थितिको व्यक्त कर सकता हूँ, करूंगा।

१—पिछले चालीस वर्षोंसे इस बारेमें मैं जो विचार रखता आया हूँ, आज भी कायम हैं।

२—मैं मानता हूँ कि और-और बातोंकी तरह ही, जिन्हें मैं बराबर दोहराता रहा हूँ, कौमी एकताके बिना ही स्वराज्य कायम नहीं हो सकता।

३—वर्तमान आन्दोलनकी मंशा स्वराज्य या स्वतंत्रता स्थापित करना नहीं है, बल्कि लोगोंमें स्वराज्य पानेकी शक्ति उत्पन्न करना है।

४—जब यह शक्ति पैदा हो जायगी और पूर्ण स्वराज्य कायम करनेका मौका आवेगा, तब मुसलमानों और दूसरी जातिके भाइयोंको राजी करना ही होगा। मगर वे राजी न हुए तो आपसमें ही लड़ाई शुरू हो जायगी। लेकिन मैं तो इस आशा पर जी रहा हूँ कि अगर हम यह ताकत पैदा करनेमें कामयाब हुए तो हमारी आपसी फूट और एक दूसरेका अविश्वास काफूर हो जायगा।

५—नेहरू विधानके रद्द हो जानेसे, कौमी सवालके निपटारेकी बात भी स्वभावतः रद्द हो गयी है। लाहौर महासभा वाले प्रस्तावमें यह बात स्पष्ट ही कही गयी है कि चूँकि सिखों और मुसलमानोंको नेहरू विधानके अनुसार कौमी सवालके

इससे संतोष नहीं हुआ है, इसलिए सब दलोंको सन्तुष्ट करनेके लिए इस सवालपर फिरसे विचार करना होगा।

६—मेरा जाना हुआ एक अहिंसात्मक उपाय तो यह है कि हिन्दू अल्पमतवाली जातियोंको जितना वे चाहें ले लेने दें। मुझे तो अल्पमतवालोंके हाथमें देशके शासनको सौंपते हुए भी हिचकिचाहट न होगी। यह कोई कल्पना-जगत्‌की बात नहीं है। मेरे विचारसे यह उपाय सब तरहके खतरोंसे खाली है। क्योंकि स्वतंत्र राज्यमें तो शासनकी सच्ची शक्ति लोगोंके हाथमें रहेगी। इस शक्तिका परिचय आजकल मिल रहा है। अगर जनता अपनी शक्तिका अनुभव करके समयके साथ सार्वजनिक हितके लिए उसका उपयोग करे तो महान् शक्तिशाली राज्य भी उसके सामने सर्वथा निरुपाय बन सकता है। गुजरातमें आज लोग सफलताके निकट तक पहुंच चुके हैं, लेकिन शर्त इसमें यही है कि आज वे जिस संगठन और शक्तिका परिचय दे रहे हैं वह सच्ची और स्वयंस्फूर्त होनी चाहिए। यदि अन्धविश्वासके कारण वे यह सब कर रहे हैं तो सफलता नहीं मिलेगी। पाठक यह याद रक्खें कि देशके शासनमें उसकी आबादीके मुकाबिलेमें बहुत ही थोड़े लोग जिम्मेवारी और हुकूमतकी जगहोंपर काम किया करते हैं। सारी दुनियाका यही अनुभव रहा है कि सच्ची ताकत और सम्पत्ति तो उन्हीं लोगोंके हाथोंमें होती है जो शासनकी बागडोर थामे नहीं होते। हम लोग अपने देशमें हुकूमतके पीछे पागल बने हैं, क्योंकि हमारे देशवासी अज्ञान हैं और सहज ही ठगे तथा चूसे जा सकते हैं। वर्तमान शासनकी नस-नसमें सड़न पैदा हो गयी है। अहिंसात्मक शक्तिसे प्राप्त स्वतंत्रता निश्चित ही इस तरहकी बुराइयोंको प्रायः मिटा देगी। अतएव ऊपर मैंने कौमी झगड़ोंको सुलझानेका जो तरीका बताया है, वह अत्यन्त व्यावहारिक है। पर बात तो यह है कि आजकी अपनी गलितदशामें हम अपने रातदिनके अनुभवों और विरासतमें मिले ज्ञानके विरुद्ध किसी अन्य बातका विचार ही नहीं कर सकते। तथापि इससे अधिक स्पष्ट और क्या हो सकता है कि स्वतंत्र भारत हमारे वर्तमान अनुभवोंकी परिधिसे परेकी ही कोई चीज होगी? आलोचक चाहें तो कह सकते हैं कि अहिंसा और उसके द्वारा प्राप्त भारतकी स्वतंत्रता मात्र मेरे कल्पना-जगत्‌की ही चीजें हैं। इसका मैं यही जवाब दिया चाहता हूँ कि अगर इस लड़ाईके अन्तमें भी भारतवर्ष गुलाम बना ही रहा अथवा यदि नामधारी स्वतंत्रताको लोगोंने हिंसासे प्राप्त किया तो ईश्वरकी कृपासे उस समय तक मैं जिन्दा नहीं बचूँगा। मैं यह कबूल करता हूँ कि हथियार-बलसे प्राप्त की गयी स्वतंत्रतामें अल्पमतवालोंको अपनी रक्षा आप ही करनी पड़ेगी। परन्तु इसके लिए तो उन्हें इस सरकारकी कृपासे विशेष परिश्रम नहीं करना होगा। क्योंकि सरकार तो एक जातिको दूसरी जातियोंसे भिड़ाकर ही अपना उल्लू सीधा करती है। मेरे आलोचकोंकी कठिनाई यही है कि वे या तो मेरे सिद्धान्तोंकी उपेक्षा करते हैं या उनमें उन्हें श्रद्धा नहीं है।

लेकिन मैं तो अविचलित ही हूँ, क्योंकि अब अधिक समय तक वे उसकी उपेक्षा या अविश्वास नहीं कर सकेंगे।

७—जिसे लोग मेरी असंगति कहते हैं, वह उन लोगोंके लिए जो अहिंसाके रहस्यको ठीक-ठीक समझते हैं, असंगति नहीं है, फिर भले ही उनका यह समीचीन तर्क या बुद्धि सम्मत ही क्यों न हो।

८—सत्याग्रह द्वारा नमक-करको मिटाने, शराब और मादक द्रव्योंके व्यवहार-को बन्द करने तथा खादीके जरिये विदेशी कपड़ोंका बहिष्कार करनेमें किसी प्रकारके शककी गुंजाइश नहीं हो सकती। अतएव मैं निःशंक होकर सबको इस लड़ाईमें हाथ बंटानेके लिए निमन्त्रित करता हूँ। जो इस आन्दोलनमें भाग नहीं लेते वे पापी भी विचारगम्य स्थितिमें बुराईका विरोध करनेकी ताकतको अपनेमें पैदा करनेकी सन्धिसे हाथ धोते हैं।

९—एक अहिंसाको छोड़कर और बिना किसी विशेष शर्तके मैं यह संग्राम छेड़ चुका हूँ। इसका सीधा-सादा और सहज कारण यह था कि अन्यथा इस लड़ाईमें अहिंसाकी ही दुर्गति होनेकी बहुत सम्भावना थी। मैं अपनी ताकत भर इस तरहकी आपत्तिको चुपचाप बैठे सहन नहीं कर सकता था। मैंने तत्काल ही अनुभव किया कि अगर अहिंसा एक जबर्दस्त शक्ति है तो उसमें हिंसापर विजय पानेमें और उसमें से गुजर कर अपना रास्ता ढूँढ़ लेनेकी ताकत होनी चाहिए।

हिन्दी-नवजीवन
२८ अप्रैल, १९३०